बुन्देलखण्ड के धार्मिक लोकगीतों का सांस्कृतिक एवं सांगीतिक अनुशीलन
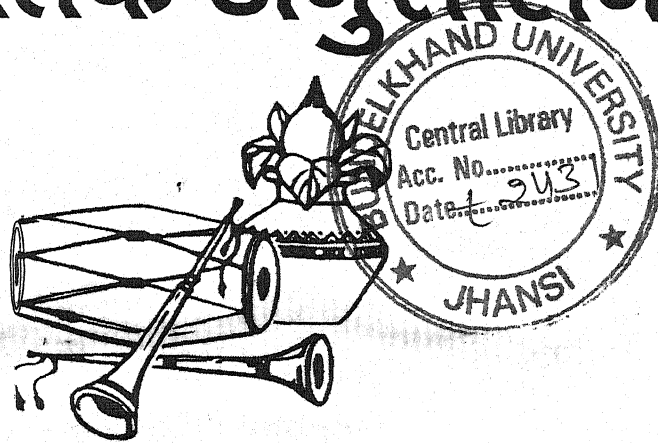
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

पी.एच.डी. (संगीत) उपाधि हेतु-प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2005

निर्देशक
प्रो0 सत्यभान शर्मा
पर्वू रीडर एवं अध्यक्ष(कंठसंगीत)
डी0ई0आई0(डीम्ड विश्वविद्यालय)
दयाल बाग,आगरा (उ0प्र0

सह निर्देशक
डॉ. (श्रीमती) वीना श्रीवास्तव
रीडर संगीत विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय
उरई (उ0प्र0)

अनुसंधित्सु
उपेन्द्र कुमार तिवारी
संगीत विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय
उरई (उ0प्र0)
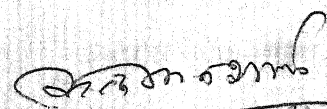
डॉ0 सत्यभान शर्मा
एम0 ए0 (साहित्य संगीत एवं चित्रकला)
पी0 एच0 डी0 संगीत
पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष (कंठसंगीत)
डी0 ई0 आई0 (डीम्ड विश्वविद्यालय)
दयाल बाग, आगरा (उ0 प्र0)

6C / 2A
गली नं0 5
आजाद नगर
खन्दारी
आगरा

निदेशक का प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया ज़ाता है कि उपेन्द्र कुमार तिवारी एम0 ए0 (संगीत) ने मेरे निर्देशन में **''बुन्देलखण्ड के धार्मिक लोक गीतों का सांगीतिक अनुशीलन''** विषय पर शोध–कार्य सम्पन्न किया है बुन्देलखण्ड के धार्मिक लोक गीतों का संकलन (रिकार्डिंग) उनकी स्वर–लिपि, अनुशीलन तथा अन्य पहलुओं द्वारा प्राप्त सांगीतिक तत्व एवं शोध सम्यक सामग्री, इनका अनुसंधानात्मक मौलिक कार्य है। बुन्देली धार्मिक लोक गीतों का सम्पूर्ण वर्गीकरण स्वरांकन एवं सांगीतिक तत्वों का उद्घाटन इनके शोध प्रबन्ध की विशेष उपलब्धि है, जो शोध परक कृतित्व का विशेष आंकलन, श्रम एवं निष्ठा पूर्वक किये गये कार्य का सूचक है।

नियमानुसार इन्होनें 200 दिन की उपस्थित पूरी करके अध्यवसाय एवं अध्येतावृत्ति का परिचय दिया है इस प्रबन्ध का कोई भी अंश अथवा सम्पूर्ण प्रबन्ध किसी अन्य विश्व–विद्यालय की शोध उपाधि के लिये विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया है मैं इस शोध प्रबन्ध को परीक्षकों के मूल्यांकन हेतु संस्तुत करता हूँ।

(प्रोफेसर सत्यभान शर्मा)

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय ''बुन्देलखण्ड के धार्मिक लोकगीतों का सांगीतिक अनुशीलन'' है।

नश्वर मानव जीवन में संगीत का विशिष्ट महत्व है। हृदय जब दुःखार्णव में निमग्न होता है। उसे संगीत के मधुर स्वर शान्ति तथा धैर्य प्रदान करते हैं। जीवन में स्फूर्ति तथा प्रसन्नता लाने का श्रेय लोक–गीतों को है। लोकगीतों का असीमित भण्डार बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्राप्त होता है।

पाश्चात्य सभ्यता तथा संगीत में आकंठ लिप्त युवा पीढ़ी को प्राचीन धार्मिक तथा सांस्कृतिक लोकगीतों से परिचित करने तथा उनकी ओर उन्मुख करने का एक प्रयत्न है जिससे लोकगीतों को उनकी गायिकी को जहां संरक्षण प्राप्त होगा वहीं अपनी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति को जीवन में जीने की स्फूर्ति भी प्राप्त होगी।

लोक, संसार रूपी गाड़ी का प्रथम पहिया है, शास्त्र में जहाँ कहीं रिक्तता आती है उसे लोक से ही पूरा किया जाता है ऐसा विद्वानों का मत है। लोकगीत महज लोकगीत ही नहीं लोकमंत्र हैं इन लोक मंत्रों के बिना उत्सव, पर्व, संस्कार अधूरे ही रहते हैं, लोक गीतों का महत्व शास्त्रीय या पौरोहित्य मंत्रों से कम नहीं है।

अपने माता –पिता की अंन्तिम संतान होने के कारण –मां का विशेष वात्सल्य मुझे प्राप्त हुआ– उनके आँचल की छाँव में लोक के प्रति अभिरूचि कब उत्पन्न हुई पता ही नहीं चला। हमारी पूज्य माँ पूर्णतः धार्मिक एवं सांस्कारिक घरेलू महिला थी उन्हें को लोकगीतों से विशेष अनुराग था व्रत पर्व उत्सव, संस्कार के अतिरिक्त उनके प्रत्येक क्रिया कलाप में लोकगीत सदैव ही मुखरित हुआ करते थे। मां के अत्यधिक सानिध्य में रहने के कारण लोक में प्रचलित रीति रिवाजों के प्रति उत्कंठा जागृत हुई लोक रीति के पीछे क्या है । ऐसा क्यूँ होता है इससे क्या होता है , इत्यादि प्रश्न करना मेरी आदत बन गयी प्रश्न के उत्तर मिल जाने से जिज्ञासा शान्त होती थी, इसी अभिरूचि ने मुझे इस शोध ''बुन्देलखण्ड के धार्मिक लोकगीतों का सांगीतिक अनुशीलन'' के लिये प्रेरित किया। प्रस्तुत शोध ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम बुन्देलखण्ड के नामकरण पर विवेचन किया गया है, तत्पश्चात सीमांकन, भाषायी तथा पौराणिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है शोध के द्वितीय अध्याय में ऐतिहासिक एवं राजनैतिक स्थित पर विचार किया गया है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत लोक–मूल्य,

लोक–विश्वास, लोकाचार, लोकदर्शन, लोक शब्द की व्याख्या, लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य पर विभिन्न विद्वानों के विचारों के आलोक में विचार किया गया है चतुर्थ अध्याय में लोक गीत के उद्‌गम और विकास, धर्म क्या है, धार्मिक स्थिति संस्कार, बुन्देलखण्ड के व्रत, पर्व, उत्सव आदि का वर्णन किया गया है। पचंम अध्याय में विभिन्न विद्वानों द्वारा लोकगीतों का वर्गीकरण देते हुए धार्मिक लोकगीतों का वर्गीकरण किया गया है। षष्ठम् अध्याय के अन्तर्गत लोक वाद्यों का वर्णन किया गया हैं सप्तम अध्याय उपसंहार के रूप में है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ के निदेशक परम स्नेही सत्य प्रतिज्ञ, प्रतिभाशाली , व्यक्तित्व के धनी सेवा–निवृत्त डॉ. सत्यभान जी शर्मा के निर्देशन में शोध कार्यानुभव से ह्रदय तन्त्री झंकृत हो उठी। मैं उनका ह्रदय से आभारी हूँ।

एक निष्ठ भाव से शोध कार्य में तत्पर रहने को धैर्य–शक्ति प्रदान करने तथा समय समय पर साहित्य एवं पुस्तकें उपलब्ध कराने वाले बुन्देलखण्ड संग्रहालय के निदेशक आदरणीय अग्रज डॉ. हरी मोहन जी पुरवार का भी मैं ह्रदय से कृतज्ञ हूँ।

शास्त्रीय संगीत की पण्डिता, लोक संगीत की मर्मज्ञा, त्याग तथा दया की साक्षात प्रतिमा स्वरूपा प्रस्तुत शोधकी सह–निदेशक डॉ. (श्रीमती) वीणा श्रीवास्तव की मैं ह्रदय से कृतज्ञता ज्ञापित करते हुये अभिनन्दन करता हूँ, जिन्होने समय–2 पर अपने अमूल्य सुझावों से लाभान्वित करते हुये शोध कार्य पथ को प्रशस्त कर सक्रिय सहयोग के साथ उलझी हुई समस्याओं का समाधान किया।

अपने परम हितैषी तथा जब मन टूटता था, उस समय धैर्य तथा आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करने वाले दयानन्द वैदिक महाविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष आदरणीय डॉ0 अरूण कुमार श्रीवास्तव जी को भी मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। अपने अनुज श्री राजेश निरंजन का मैं ह्रदय से आभारी हूँ जिनके सहयोग के बिना शोध कार्य को सम्पूर्ण करना असंम्भव सा प्रतीत होता था–शोध कार्य को पूर्ण कराने के लिये अपना अमूल्य समय दिया तथा हर संभव शोध कार्य को पूर्ण कराया मैं पुनः श्री राजेश निरंजन का आदर सहित धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

इस शोधग्रन्थ को पूर्ण करने एवं उससे सम्बन्धित कार्यो को बाधारहित बनाने वालों के प्रति यदि मैं मन से आभार व्यक्त नहीं करता हूँ तो यह नाइन्साफी होगी। लोक गीतों की माला पिरोते समय गीतों के मनकों को चुन चुन कर मुझे उपलब्ध कराने का पुनीत कार्य मेरी परम प्रिय पत्नी मन्जू ने

किया है जिसके लिये मैं हृदय से अपना स्नेहिक आभार व्यक्त करता हूँ साथ ही साथ मैं अपने पुत्र चि0 तरूण तथा चि0 वरूण का भी आभारी हूँ जिन्होने मेरे इस शोध कार्य के दौरान घर की जिम्मेदारियों को अपने स्तर से निर्वाह किया और मैं अपना यह शोध कार्य पूर्ण कर सका।

अन्त में मैं उन सभी को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होने जाने–अन्जाने में इस शोध कार्य में सहयोग प्रदान किया।

उपेन्द्र कुमार तिवारी(एम0 ए0)

अनुसंधित्सु संगीत

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

प्रथम अध्याय

नामकरण

नगाधिराज हिमालय जिसका मुकुट बन स्वयं को सुशोभित कर रहा है। सप्त सिंधु ब्रम्हपुत्र जिसकी आजानुभुजाएं है पूर्वी घाट , पश्चिमी घाट की पहाड़ियॉ जिसकी सम्पुष्ट भुजांए है रत्नाकर जिसके चरणों में लोट पोट कर स्वयं अपने को आल्हादित मानता है विन्ध्यावटी की उपत्यकायें जिसके कटि भाग में मेखला बनकर सुशोभित हो रही है ऐसे विशाल भारत, महान भारत का 'ह्दय' बुन्देलखण्ड हैं बुन्देलखण्ड अपनी चतुर्दिक परिलब्धियों के लिए विश्व–विश्रुत है इसे प्रकृति ने अपने कमनीय कोमल हाथों से सजाया और संवारा है। ब्रम्हवेत्ता ऋषि मुनि महर्षियों ने अपने ब्रम्ह ज्ञान से जिसे ब्रम्हज्ञानी बनाया है तपस्वियों ने अपनी तपस्या से इसे पुण्य पूत किया है पवित्र किया है। दार्शनिक विद्वान मनीषियों ने जिसे शास्त्र से सुज्जजित किया है कलाविद्ो ने जिसे अपनी कला से कलात्मक बनाया है, साहित्यकारों ने साहित्य रचना में अपने श्रम स्वेद को सुखाया है क्षत्रिय राजाओं एवं वीरांगनाओं ने अपनी सम्पुष्ट भुजाओं से जिसकी रक्षां की है और जिसकी आन–बान–शान में न्यौछावर कर अपने को गौरवान्वित किया है, ऐसे बुन्देलखण्ड में भूगोल अपने पूरे अवयवो के साथ जागृत है इतिहास समप्रभुता को देखकर स्वयं आश्चर्यचकित हो रहा है जहाँ आदिम युग से अध्यावधि यात्रा करने के भारतीय संस्कृति के चरण–चिन्ह पग–पग पर दिखाई देते है ऐसे अधुना प्रसिद्ध बुन्देलखण्ड में इस भूखण्ड का नाम 'बुन्देलखण्ड' सदा सर्वदा से यही रहा है अथवा कुछ और। यहाँ इस पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है। इस क्षेत्र के इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि हिमालय पर्वत के जन्म के समय तक विध्यराज पर्वत बूढ़ा हो चला था 'भारतीय संस्कृति इतिहास और पुरातत्व के प्रकाण्ड पण्डित डा0 श्री वासुदेव शरण अग्रवाल का बुन्देलखण्ड क्षेत्र के प्राचीनतम होने के सम्बन्ध में मत है । ''बिंध्य पर्वत भारतीय वन प्रकृति का वयोवृद्ध पितामह है कहते है कि जब हिमालय बाल रूप में सलिलावरण से बाहर आया उससे युग–युग पहले जरठ विध्याचल जन्म ले चुका था। भारत भूमि के उर्ध्वकाय के माध्यम में विध्याटवि की रम्य मेखला विधाता ने स्वयं सजाई है' [1] अतः यह क्षेत्र जो वर्तमान में बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाता है विध्याचल पर्वत की तराई में अवस्थित है इस कारण इस क्षेत्र का नाम विध्यइलाखण्ड पड़ा जो बाद में बुन्देलखण्ड हो गया 'बुन्देलखण्ड का वास्तविक नाम विध्यइलाखण्ड है और इसका यह नाम विध्याचल की तराई में बसने के कारण पड़ा है संस्कृत में इला का अर्थ का पृथ्वी है [2] ' वह बुन्देलखण्ड विध्यइलाखण्ड बाद में बुन्देलखण्ड कहलाया' पुराणों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि यह बुन्देलखण्ड क्षेत्र पहले ऊषर क्षेत्र के रूप में जाना जाता था

---

(1) बुन्देलखण्ड दर्शन–डॉ0 मोती लाल त्रिपाठी अशान्त प्रष्ठ सं0 12

(2) " " " " "

ऊषर एक संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका तात्पर्य है भोग एवं मोक्ष का प्रदाता । पुराण में वर्णन मिलता है

'रेणुका शूकरः काशी
काशी कालः बटेश्वरी
कालिंजर महाकालः
ऊषर नव मोक्षदाः'

उक्त श्लोक में वर्णित है, काल कालपी का द्योतक है जो कि इस बुन्देलखण्ड का उत्तरी प्रवेश द्वार कहलाता है।[1] ऊषर पुनीत में तुंगारण्य से लेकर कालिंजर एवं दशार्ण देश सम्मिलित है बुन्देलखण्ड के इस भूभाग का जब बुन्देलखण्ड नाम नहीं था उससे पहले प्राचीन काल में इस भाग का नाम दशार्ण कहा जाता था ईसा से पूर्व कात्यायन कौटिल्य ने अपने ग्रन्थों में दशार्ण नाम का उल्लेख किया है

दशार्ण नाम इस भू का भाग क्यो पड़ा? इसके अन्तर्गत दशार्ण का अर्थ
'दशार्णो देशः नदी च दशार्णाः प्रस्तर कम्बल बसर्नाण दशानाम मुले

यह बार्तिक सिद्धान्त कौमुदी में कात्यायन के नाम से लिखा है दर्शाण

(3)

शब्द का अर्थ दश जल वाला या दस दुर्ग भूमि वाला ऋण शब्द 'दुर्ग भूमि जले च इति यादवः ' इस प्रकार बुन्देलखण्ड का नाम दशार्ण दस नदियों के कारण पड़ा जो इस प्रकार है धसान पार्वती (पुष्पावती, पहूज) सिन्ध, वेतवा, चम्बल, यमुना, नर्मदा, केन, टोस और जामनेर। बुन्देलखण्ड की प्रसिद्ध नदी तथा महत्वपूर्ण नदी दशार्ण (धसान) है इसी के द्वारा अभिसिंचित क्षेत्र को दशार्ण कहा। जात है रामायण काल के इतिहास में इस क्षेत्र का नाम भगवान राम के बड़े सुपुत्र के साथ मिलता है सूर्य वंशी राम चन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र लव से बुन्देला ठाकुर की उत्पत्ति मानी गयी है। 'बुन्देला ठाकुर अपना मूल लव के ज्येष्ठ पुत्र गगन सेन , कनक सेन आदि राजाओं से मानते है। गगन सेन के वंश में गंगा ऋषि और प्रद्युम्न ऋषि उत्पन्न हुये इन्होने क्रमशः गयाजी में मन्दिर बनवाया और प्रयाग में अक्षय वट लगवाया। ' डॉ0 तिवारी का आगे कहना है कि पौराणिक काल में पुराणों की रचना हुई उन रचनाओं में या पुराणों में इस क्षेत्र को दशार्ण और चेदि कहा गया है। चेदि नाम महाभारत काल तक प्रसिद्ध रहा चूँकिः बुन्देलखण्ड भारत वर्ष के मध्य में स्थित है, अतः इसे मध्य देश भी कहा गया है। 'राजशेखर ने अपनी काव्य मीमान्सा में जिन पंच स्थलम् का उल्लेख किया है उनमें मध्य देश से बुन्देलखण्ड का सम्बन्ध इन दो के माध्यम से ही जुड़ता है। इन जनपदों को रामायण काल में महाराजा रामचन्द्रजी ने अपने पुत्रों को अयोध्या और शरावती के राज्य दिये शत्रुघ्न के दोनों पुत्रों सुबाहु और सूर्यसेन को विदिशाः और मथुरा के राज्य दिये थे शेष भाइयों के पुत्रों को तक्ष और पुष्कल भरत के पुत्र थे जिन्हे पुष्कलावती के राज्य तथा लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रकेतु को अंगदीया और मल्ल देश का राजा बनाया गया था। [2]

---

(1)गौरवशाली कालपी –डॉ हरीमोहन पुरवार पृष्ठ सं0104

(2) बुन्देली लोक काव्य–डॉ0 बलभद्र तिवारी पृष्ठ5,6 बुन्देलखण्ड

नाम से जुड़ा प्रसंग यह भी मिलता है ' पौराणिक कथा के अनुसार इस भूभाग पर महान तपस्वी दध ीचि द्वारा इन्द्रदेवता को स्वयं की अस्थियों का दान दिया गया था। जिनसे बज्र (हीरे) बना था उसी बज्र से इन्द्र ने दानव का संहार किया था (अस्थि) (हीरे) दान का श्रेय इस भूमि को मिलने के कारण इस भूभाग को बज्र देश भी कहा गया। [1] बुन्देलखण्ड का चेदि नाम होने की एक किवदन्ती इस प्रकार भी मिलती है कि प्रथमतः चेदि भाग बुन्देलखण्ड के कुछ भूभाग का नाम था तथा बाद में थोड़ा विस्तार हुआ तथा राज्य विस्तार का लोभ संवरण न कर पाने के कारण आक्रमण हुआ जिसमें कांलिजर युद्ध में हारा। 'चेदि नाम , शुरू –शुरू में चम्बल और केन नदी के बीच यमुना के दक्षिणी प्रदेश अर्थात उत्तरी बुन्देलखण्ड, का था। इस क्षेत्र का' [2] चेदि तथा शेष भूभाग का नाम इससे अन्य था विस्तार वादी राजनीति के अन्तर्गत चेदि नागों का विस्तार उत्तर तेवर (जबलपुर) तक हो गया था'। [3] 'पाल लेन्ड्रो से इसका नाम कर्णदेश या कर्णावतीं भी प्राप्त होता है। [4] बुन्देलखण्ड ने भी राजनैतिक दृष्टि से कई उतार चढ़ाव देखे जिसके फलस्वरूप उसकी सीमायें एकसी नही रह सकी। युद्ध आक्रमण हार जीत के कारण उसकी सीमायें समय –समय पर घटती बढ़ती रही है। इतिहासकारों ने विभिन्न मत व्यक्त किये है, चेदि नाम सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का था। इसी चेदि प्रदेश का राजा महाभारत कालीन शिशुपाल था। 'भारत भूमि और उसके निवासी' नामक पुस्तक देखने से इस तरह का आभास होता है कि चेदि लोग प्रारम्भ से ही यमुना प्रदेश से दूर दक्खिन तक समस्त बुन्देलखण्ड में पहुँच गये थे। मध्य काल में त्रिपुरी के राज्य ने कालिंजर का किला और समस्त उत्तरी बुन्देलखण्ड पर अपना अधिकार जमा लिया था। उस समय से समस्त बुन्देलखण्ड का नाम चेदि देश था।

वैदिक काल के दशार्ण और महाभारत काल के चेदि देश का आपस में सम्बन्ध इस प्रकार भी रहा दशार्ण देश और चेदि देश की सीमाएं आपस में मिलती हैं यदि इन दोनों की सीमाओं को जोड़ कर देखें तो अवश्य ही बुन्देलखण्ड का भूभाग सामने आता है। आज बुन्देलखण्ड की जो सीमायें हैं वह इन सीमाओं की परिधि में हैं।

---

(1)बुन्देली लोक काव्य–डॉ0 बलभद्र तिवारी — पृष्ठ 5,6

(2) बुन्देली लोक गीतों का सास्कृतिक अध्ययन–डॉ0 मोती लाल चौरासिया — पृष्ठ 20

(3) प्राचीन भारत–पण्डित हरिमंगल मिश्र — पृष्ठ 25

(4) बुन्देली लोक साहित्य–डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव — पृष्ठ 1

पुराणों की श्रँखला में दशार्ण देश का एक और नाम प्रकाश में आता है। दशार्ण देश का दूसरा नाम 'आकर' देश भी है इसकी राजधानी विदिशा थी। [1] ऐसा प्रतीत होता है चेदि और दशार्ण बुन्देलखण्ड के उत्तरी और दक्षिणी भाग है। इससे लगा हुआ अवन्ति जनपद था।दशार्ण और अवन्ति के बीच का भाग युद्ध देश के रूप में माना गया है। युद्ध देश में देवासुर संग्रामं हुआ था इसके सम्बन्ध में 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण ' में

'चैद्य नैषधियोः पूर्वे विद्यय क्षेत्राच्य पश्चिमे

रेवायमुन योमध्यिे युद्ध देश इतीयर्ते' [2]

इसके अनुसार इस क्षेत्र को बिंध्य क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता होगा'। भविष्य पुराण में इसके मध्य वर्ती भाग का नाम पदमावती भी मिलता है। [3]

वैदिक काल दशार्ण नाम अपनी यात्रा करते –2 महाभारत काल तक चेदि हो गया था। किन्तु कुछ विद्वानों को चेदि नाम को चन्देल नरेशों के समीप तक ले आये उनके मतानुसार चेदि वंशज चेदि और चेदि के वंशज बाद में चदेंल कहलाये। [4]

बुन्देलखण्ड के नामों की श्रंखला में 'बुन्देलखण्ड के नाम आने से पहले 'दर्शाण और 'चेदि' 'आकर देश' या युद्ध क्षेत्र के बाद इस प्रदेश का नाम समय–समय पर परिवर्तित होता रहा है। इस भू–भाग का नाम इतिहास में जेजाक भुक्ति, जुझौति प्रदेश या जुझार खण्ड, यजुरहोति के नाम से भी पुकारा गया है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृतान्त में भारत भ्रमण के समय इस प्रदेश को जुझौति नाम सम्बोधित किया है अतः इस क्षेत्र का नाम जैजाभुक्ति या जुझौति भी है। श्री गोरे लाल तिवारी के शब्दों में कन्नौज साम्राज्य के अन्तर्गत जेजा (जैशक्ति) नामक एक कीर्तिमान एवं सत्यशाली सामंत था। उसी के नाम पर इस प्रदेश का नाम जैजाक भुक्ति पड़ गया। क्योंकि उसके विक्रम की धूम उन दिनों चारों ओर फैली थी। [5] ह्वेनसांग सातवीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी इवन बातुतातक चीनी यात्रियों ने इस भूमि खण्ड का विवरण अपनी यात्रा वृतान्त में लिखा है।

---

(1) बुन्देली लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन –डॉ0 मोती लाल चौरसिया पृष्ठ 20प्रथम संस्करण 1989 सम्पादक बी0 के 0 तनेजा क्लासिकल पब्लिक कम्पनी नई दिल्ली

(2)बुन्देली लोकसाहित्य–डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव भूमिका पृष्ठ सं0 1 रज्जन प्रकाशन बांके विलास सिटी स्टेशन मार्ग आगरा 3 सन 1976

(3)बुन्देलखण्ड दर्शन–डॉ0 मोती लाल त्रिपाठी अशान्त पृष्ठ न0 43

(4)बुन्देलखण्ड दर्शन–डॉ0 मोती लाल त्रिपाठी अशान्त पृष्ठ नं0 43

(5) बुन्देल खण्ड दर्शन–मोती लाल त्रिपाठी अशान्त पृष्ठ 42

इस यात्री का कथन है कि जेजाभुक्ति (जजाहोति) चार हजार ली अर्थात 667 मील की परिधि में है। टालेमि ने अपने वर्णन में सन्द्रावतिश प्रान्त का विवरण दिया है, जो जेजाभुक्ति भी है। इसके वर्णन में अन्य नाम कुरपूरिना वस्तुतः खजुराहो अथवा खजुरपुर है, इसी प्रकार सर्वलोधा अथवा महोबा नदुडागर नरवर तमसिस कातपसित अथवा कालिंजर से उसका अभिप्राय रहा होगा। कालिंजर वैदिक साहित्य में तपस्या का स्थान होने के कारण तमसिसत कहा गया। [1]

'प्रसिद्ध इतिहास कार बी0 ए0 स्मिथ की धारण है, कि आधुनिक बुन्देलखण्ड से उस सम्पूर्ण क्षेत्र का बोध होता है जिसमें चन्देल शासकों ने राज्य किया था। वास्तुकला एवं मूर्ति कला मर्मज्ञ मुद्रा शास्त्री तथा पुरातत्व बेत्ता प्रो0 कृष्ण दत्त बाजपेयी अध्यक्ष प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग सागर, वि0 वि0 सागर का बुन्देलखण्ड के सम्बन्ध में कथन है 'चेदि जनपद को चन्देलों के समय जेजाक भुक्ति (यर्जुहोति =जुझौति) एवं तत्पश्चात बुन्देलखण्ड की संज्ञा से अभिहित किया गया। [2] किन्तु चन्देल नरेश परमार्दि देव के समय बुन्देलखण्ड का नाम जैजाक भुक्ति ही था इस बात का प्रमाण इस प्रकार है

'बुन्देल वैभव नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ में बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है, कि 'मदनपुर के सन 1822 ई0 के एक लेख से प्रकट है, कि पृथ्वी राज चौहान और चन्देल परमार के युद्ध के समय भी यह देश जेजाक भुक्ति या शक्ति कहलाता था मदनपुर शिला लेख इस प्रकार है।

'अरूण राज्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सुनना
जैजाक भुक्ति देलोय पृथिवी राजेने लूनितान

'समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में इस क्षेत्र का नाम 'आटव्य' दृष्टव्य होता है, तथा कहीं–2 कुछ लेखों में इसे 'वन्यदेश ' नाम से सम्बोधित किया गया है। 'चन्देल राजाओं की जेजा भुक्ति अथवा जेजाहुति साम्राज्य कभी महोत्सव नगर या महोबा के नाम से विख्यात था। बुन्देलखण्ड नाम पड़ने के सम्बन्ध में समस्त इतिहासकार एक मत नहीं है। इसमें विभिन्न मत है, पर इतना सर्वमान्य है, कि बुन्देले ठ़ाकुरों द्वारा इस क्षेत्र का नाम बुन्देलखण्ड पड़ा। बुन्देले ठाकुरों का इतिहास भी अधिक प्राचीन नहीं है। चन्देलों के बाद बुन्देला शब्द का प्रार्दुभाव हुआ है। इतिहास के मतानुसार बुन्देला राज्य का उदय ई0 शताब्दी से 14 वीं शताब्दी माना जाता है। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो यह नाम 500 – 600 वर्षो से अधिक प्राचीन नहीं है। बुन्देलखण्ड के शाब्दिक अर्थ में ' वह क्षेत्र या वह भूभाग जिस पर बुन्देले रहते हो, या वह क्षेत्र जिस पर बुन्देला ठाकुरों का शासन हो।

---

(1) बुन्देली लोकसाहित्य–डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव पृष्ठ सं0 2

(2)बुन्देलखण्ड दर्शन–डॉ0 मोतीलाल त्रिपाठी अशान्त पृष्ठ नं0 9

बुन्देले राजाओं द्वारा शासित प्रदेश को बुन्देलखण्ड कहा जाने लगा।

बुन्देलखण्ड राज्य की स्थापना सर्व प्रथम पंचम सिंह ने की।यह राज्य पहले गढ कुण्डार में स्थापित हुआ बाद में इसकी राजधानी ओरछा बनाई गई। उस समय उसे ओरछा राज्य को ही बुन्देल खण्ड का प्रमुख केन्द्र माना जाता रहा है। बुन्देलों ने अपना राज्य इस क्षेत्र मे सन् 1128 ई0 में स्थापित किया इसके संस्थापक हेम करण थे। जिन्हें पंचम सिंह के नाम से जाना जाता है।[1] किन्तु डॉ0 आर0 पी0 अग्रवाल ने बुन्देली भाषा के शास्त्रीय अध्ययन में बुन्देल शब्द की व्युत्पत्ति बूद (बिन्दु) लः बुन्देला खण्ड बुन्देलखण्ड बतलाई है।[2] कुछ इतिहास कारों का मत है, कि आर्यो के आगमन के पूर्व यहाँ शवर राउत, रामठ, पुलिन्दों का विकास था और उन्ही पुलिन्दों की सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचलन इस क्षेत्र में था। उन्ही पुलिन्दों से बुन्देलखण्ड की व्युत्पति हुई। एक विद्वान का मत है 'डॉ0 बागीश शास्त्री ने बुन्देल खण्ड की प्राचीनता नामक अपने ग्रन्थ में कहा है कि इस प्रदेश को कुछ विद्वान पुलिन्द जाति का मानते हैं। अतः पुलिन्द अपभ्रंश बोलिन्द और अपभ्रंश बुन्देल मानते है।[3] परन्तु कुछ विद्वानों ने इस वंश की उत्पत्ति बाँदी के गर्भ से मानते हुये इसे हेय दृष्टि से देखने का प्रयास किया है।

"हीकतुल अकालीन" का लेखक बुन्देला को बाँदी और गहरवार शाखा के वंशज से उत्पन्न मानता है, तथा टाड भी इसी का सर्मथन करता है।[4]

कुछ विद्वान बुन्देलों को अन्यत्र ना खोज कर चन्देलों से बुन्देलों की व्युत्पत्ति मानते है। बुन्देले कोई और नहीं है। और ना ही कहीं से उनका प्रादुर्भाव हुआ है। बल्कि चन्देले ही बाद बुन्देले कहलाये जाने लगे।

इस भूभाग के बुन्देलखण्ड नाम की सार्थकता 700– 800 वर्षो से अधिक पुरानी प्रतीत नहीं होती है। जनश्रुति के अनुसार बनारस के गहरवार वंशीय महाराज हेमकर्ण द्वितीय से जब उनके भाइयों द्वारा राज्य छीन लिया गया, तब उन्होने विन्ध्याचल पर्वत पर स्थित माँ विन्ध्यवासिनी की पूजा अर्चना की, तथा अपना सिर काटकर माँ विन्ध्यवासिनी के श्री चरणों में अर्पित करने जा रहे थे, उसी समय महाराज हेमकर्ण द्वितीय के रक्त की कुछ बूदें पृथ्वी पर गिर पड़ी थीं इसी से माँ विन्ध्यवासिनी ने प्रसन्न होकर, उन्हें राज्य प्राप्ति का वरदान दिया। अस्तु बूंद से राज्य मिलने के कारण यह क्षेत्र बुन्देल खण्ड तथा राजा बुन्देले कहलाये।[5]

---

(1) बुन्देल खण्ड का ऐति0 मूल्या,–डॉ0 राधाकृष्ण बुन्देली श्रीमती सत्यभाषा बुन्देली, बुन्देलखण्ड प्रकाशन बांदा — पृष्ठ 1

(2) बु0 ख0 का इतिहास–मोती लाल त्रिपाठी — पृष्ठ 42

(3) " " " — पृष्ठ 43

(4) टाड–4 पृ0 116 बुन्देली लोक काव्य,–डॉ0 बलभद्र तिवारी — पृष्ठ 7

(5) जालौन जनपद के मध्यकालीन प्रमुख भवनो' का ऐतिहासिक मूल्यांकन –डॉ हरी मोहन पुरवार

भौगोलिक स्थिति

किसी भी क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति में पर्वतों नदियों पठारों वनों आदि का विशेष महत्व होता है। बुन्देलखण्ड में नगाधिराज हिमालय का अग्रज होने का श्रेय पर्वत राज विन्ध्य पर्वत को है। एक किंवदन्ती के अनुसार विन्ध्य पर्वत के विस्तार को रोकने के लिए अगस्त ऋषि ने उससे दक्षिण दिशा में जाने के लिए मार्ग माँगा, जिस पर विध्य पर्वत को लेटना पड़ा तथा ऋषि ने उससे यह भी वचन लिया कि जब तक वह लौट कर उत्तर दिशा में न आ जावें तब तक वह लेटा रहे। ऋषि वर कभी लौट कर उत्तर दिशा में नही आये, ओर विन्ध्य पर्वत वचन बद्ध होने के कारण अभी भी लेटा हुआ है। अतः उसके अनुज हिमालय पर्वत को पर्वतराज की उपाधि मिली।

इसी विन्ध्य पर्वत की तराई में स्थित होने के कारण बुन्देलखण्ड नाम करण हुआ।

वैदिक पुराणों में 9 उषर क्षेत्रों का वर्णन किया है

रेणुका शूकर काशी ————————————

इन 9 क्षेत्रों में बुन्देलखण्ड को उसर पुनीत कहा जाता है। उषर पुनीत का विस्तार राजस्थान से लेकर माणिक्यपुर तक का क्षेत्र आता था, इसे उत्तम काल ऊसर कहा गया। यह उत्तम काल ऊसर चार योजन लम्बा तथा दो हजार योजन चौड़ा देवर्षि तथा मुनियों से पूरित और भव–भय नाशक भोग तथा मुक्ति को प्रदान करने वाला है।[1]

यदि भारत वर्ष के मान चित्र को मनुष्याकृति में बांटा जाय, तो यह क्षेत्र लगभग हृदय स्थल होगा। अतः बुन्देलखण्ड को "भारतवर्ष का हृदय स्थल" भी कहा गया है। इसकी सीमायें उत्तर दिशा की तरफ से आगरा तथा इटावा पड़ती है, और दक्षिण दिशा में वालाघाट छिन्दबाड़ा तक पड़ती है।पूरब मे यह छोटा नागपुर उड़ीसा से लेकर पश्चिम दिशा में राजस्थान तक जाती है। किन्तु राजनैतिक उथल–पुथल के कारण यह सीमायें अनेक बार अपना स्वरूप बदलती रहती है। ऐतिहासिक दृष्टि से विद्वानों ने मोटे तौर पर बुन्देलखण्ड की सीमा नदियों से मानी है, नदियों के अनुसार उत्तर मे यमुना नदी दक्षिण में नर्मदा पूर्व और पश्चिम में क्रमशः टोंस (तमसा) तथा चम्बल (चर्मण्यवती) के बीच के भू भाग को बुन्देलखण्ड माना है। चारों ओर से नदियों के जल से सिंचित यह भू भाग बुन्देलखण्ड आर्यावर्त का मध्य बड़ा क्षेत्र है जो दक्षिण दिशा से उत्तरोत्तर

---

(1)गौरवशाली कालपी — डॉ0 हरीमोहन पुरवार पृ0स0104

शनैः – 2 उत्तर दिशा की ओर ऊँचा होता गया है। उत्तर दिशा में विन्ध्य पर्वत क्षेत्र की पर्वत मालायें हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह जी द्वारा रचित छंद इन नदियों के सीमांकनका साक्ष्य है।

'उत्तर समतल भूमि , गंग जमुना सुबहति है।।

प्राची दिशि कैमूर सोन काशी सुलसति है।।

दक्खिन रेख विन्ध्याचल तन सीतल करनी।

पश्चिम में चम्बल चंचल सोहति मन हरनी।।

तिनि महि राजे गिरि वन, सरिता, सरित मनोहर।

कीर्ति स्थल बुन्देलन को बुन्देलखण्ड वर ।।[1]

बुन्देलखण्ड के नामकरण के विचारों में उसका नाम जेजाभुक्ति था ऐसा विचार विभिन्न विद्वानों का रहा है। जैजाक मुक्ति का सीमा विस्तार श्री केशव चन्द्र मिश्र ने निम्न प्रकार से बताया है, " उत्तर की ओर गंगा और यमुना महानद इसकी सीमा बनाते थे। दक्षिण में नर्मदा नदी जिसमें मालवा भी सम्मिलित था, और पश्चिम मे इसकी सीमा सामान्य रूप से चम्बल नदी थी, जो कि विन्ध्य मेखला तक पहुँचती है। जेजाक भुक्ति की पूर्वी सीमा इतनी स्पष्ट नहीं रखी जा सकती। उत्तर पूर्व में सोन नदी सीमस्थ थी, किन्तु दूसरा दक्षिणी भाग चन्देल साम्राज्य में घुस गया था, यदि बनारस के एक अंश पूर्व की देशान्तर रेखा. को सीमा मान लिया जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा। इधर जैजाक भुक्ति की सीमा प्रतिहारों की पूर्वी सीमा से भी पार गई थी जैजाक भुक्ति की स्थिति इस प्रकार है। मानिचित्र पर 220 और 260 अक्षांश तक 75 ओर 84 पूर्वीय भू रेखाओं के मध्य में हैं इस पूरे क्षेत्र का क्षेत्रफल 51000 वर्ग मील था।"[2]

"नर्मदा एवं चम्बल की सभ्यता विद्वानों के अनुसार बहुत पुरानी समझी जाती है किन्तु महाभारत जनपद काल में इस भूभाग को चेदि जनपद से सम्बोधित किया गया है। जिसका समीकरण पार्टीजर ने वर्तमान बुन्देलखण्ड से किया है।

---

(1)बुन्देलखण्ड दर्शन, मोतीलाल त्रिपाठी– पृष्ठ सं0 26

(2) बुन्देली लोक सहित्य – डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव पृष्ट सं0 3

उनके मतानुसार " चेदि देश उत्तर मे यमुना के दक्षिणी तट से दक्षिण मालवा में मालवा के पठार और बुन्देलखण्ड की पहाड़ियें तक, तथा दक्षिण पूर्व में चित्रकूट, उत्तर पूर्व में बहने वाली कार्वी नदी से उत्तर पश्चिम मेंचम्बल नदी तक प्रसारित विस्तृत प्रदेश का नाम था"। [1]

ऊपर दिये गये सीमांकन के अनुसार बर्तमान समय में इस प्रकार दिखायी देती है। उत्तर–प्रदेश के झांसी, जालौन, हमीरपुर, बाँदा ललितपुर,हमीरपुर, महोबा तथा मध्यप्रदेश के भिन्ड ग्वालियर गिर्द, नरबर, ईसागढ़, भेलसा, ओरछा, दतिया, समथर, पन्ना, चरखारी, विजावर, अजयगढ़, छतरपुर आदि 36 रियासतें आती हैं। जो अब विन्ध्यप्रदेश में

में विलीन हो चुकी हैं,– मध्यप्रदेश के उत्तर के जिले सागर, जबलपुर, होसंगाबाद, तथा भोपाल राज्य बुन्देलखण्ड की सीमा के अन्तर्गत आते है। [2]

प्रसिद्ध पुरातत्वविद जनरल कनिघम के अनुसार " बुन्देलखण्ड के अधिकतम विस्तार के समय इसमें गंगा और यमुना का समस्त दक्षिणी प्रदेश, जो पश्चिम में बेतवा नदी से पूर्व में चंदेरी और सागर के जिलों सहित, विन्ध्यवासिनी देवी कें मंदिर तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी के मुहाने के निकट बिलहारी तक प्रसारित रहा है"। प्रसिद्ध इतिहासकार बी0 ए0 स्मिथ ने भी उस समस्त क्षेत्र को बुन्देलखण्ड माना है जिस पर चन्देल शासकों का शासन स्थापित था। यह क्षेत्र गंगा, यमुना के दक्षिण के पूर्व विन्ध्यवासिनी देवी के पश्चिम तथा दक्षिण में नर्मदा महानद तक फैला था, आधुनिक सागर तथा बेलारी के जिले भी उसमें सम्मिलित थे।"

इस तरह इन दोनों विद्वानौ का मत बुन्देलखण्ड की सीमा चन्देल राजाओं की राज्य सीमा हैं। जो वृहत्तर बुन्देलखण्ड का चित्र ,खड़ा करती है। [3]

बुन्देलखण्ड की सीमाओं के निर्धारण के सम्बन्ध में डा0 गौरीशंकर द्विवेदी कामत इस प्रकार है श्री द्विवेदी सीमा निर्धारण इस प्रकार किया है

1–उत्तर में यमुना

2–दक्षिण में नर्मदा

3–पूर्व में टोंस

---

(1) बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति काइति–नर्मदा प्रसाद गुप्त पृष्ठ 20

(2)बुन्देली लोक गीतो का सांस्कृतिक अध्ययन–डॉ0 मोतीलाल चौरसिया पृष्ठ 18

(3) बु0 ख0 की लोक संस्कृ का इति–नर्मदा प्र0 गुप्त पृ0 22

पश्चिम मे चम्बल सीमा के अन्तर्गत आने वाले राज्यों की तालिकाइस प्रकार है।

संयुक्त प्रान्त– झाँसी , जालौन, बाँदा, हमीरपुर

म0 प्र0 – सागर, दमोह, और जबलपुर का कुछ अंश

उ0 प्र0 – मिर्जापुर , इलाहाबाद के कुछ अंश

इंदौर राज्य आंगरकपुर

ग्वालियर राज्य– भिण्ड, ग्वालियर , गिर्द, नरबर, ईसागढ़ और भेलसा

भोपाल राज्य– रायसेन, बेरसिया, सांची, राजगढ़, नरसिंहगढ़, कुरबाई, पठारी, सकसूदनगढ़ मोहम्मदगढ़ बासौदा

बुन्देल की जागीरें– ओरछा, दतिया, पन्ना; अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, छतरपुर, समथर, बाबनी कदौरा, सरीला, दुखई, जिना, ढ़ोडी, फतेहपुर, बंका पंहाड़ी, जिगनी, लुगासी, बीहट, बेरी, अलीपुरा, गौरिहार, गरौली, बिहरी, नेगवां खिई [1]

बुन्देलखण्ड के महाप्रतापी राजा महाराज छत्रसाल जो कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के इकलौते राजा थे। उनके राज्य काल में बुन्देलखण्ड की सीमायें इस प्रकार एक दोहे में इस प्रकार प्रदर्शित होती है।

"इत जमुना उत नर्मदा,

इत चम्बल इत टोंस

छत्रसाल सौं लरन की,

रही ना काहू हांेस।" [2]

सीमा के निर्धारण के सम्बन्ध में बुझौबल भी बुन्देली लोक में प्रचलित है।

भैस बंदी ओरछा, पड़ा होसंगाबाद।

लगवैया हैं सागरै, चपिया रेवा पार।।

---

(1) बुन्देली लोक गीतो का सांस्कृतिक अध्ययन–डॉ0 मोतीलाल चौरसिया पृष्ठ सं0 18

(2) जालौन जनपद में मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन–डॉ0हरीमोहन पुरवार पृष्ठ 23

इस बुझौबल का उत्तर है बुन्देलखण्ड ,

यह बुझौबल अधिक पुरानी है। क्योंकि होसंगाबाद 15 वीं शताब्दी, तथा ओरछा 16 वीं शताब्दी में बसाया गया था। ओरछा राज्य गजेटियर से पता चलता है, कि महाराज रूद्रप्रताप ने सं0 1588 वि0 के बैसाख शुक्ल पूर्णिमा को ओरछे के किले की नींव रखी थी। सं0 1596 वि0 में गढ़ कुण्डार से ओरछा में राजधानी बनाई। 'वीरमित्रोदय' ग्रन्थ के लेखक मित्र मिश्र ने ओरछा की प्रशस्ति में लिखा है–

बुन्देल क्षिति पाल वंश विलस द्रलं प्रयत्न बिना। यः पृथ्वी निखलां विधाय वंगांराज्य चकारादगतम। डॉ0 बलभद्र तिवारी अपनी पुस्तक " बुन्देली समाज और संस्कृति में बुन्देलखण्ड के सीमांकन के बारे में लिखते है। " विन्ध्य पर्वत श्रेणियों के चतुर्दिक, विभिन्न सरिताओं से आवेष्टित बुन्देलखण्ड की प्रकृति अत्यन्त रमणीय है। भारत वर्ष के ठीक मध्य में यह क्षेत्र चार प्रमुख नदियों के आयत में आबद्ध है ये चारों सरिताए यमुना, नर्मदा, चम्बल और बेतवा भी मानी जाती है। पर अक्षांशो में 230 450 ओर 260 500 उत्तरीय तथा 770 520 और 820 पूर्वी भू रेखाओं के मध्य यमुना, टोंस , नर्मदा और काली सिन्धु को भी परिगणित किया जाता है। कर्क रेखा बुन्देलखण्ड के दक्षिण में पड़ती है अतः यह समशीष्तोण कटिबन्ध के गर्भ में पड़ता है। बुन्देलखण्ड का प्रमुख पर्वत विन्ध्याचल पुराणों मे भी अपनी विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध है। समस्त प्रदेश में पर्वत श्रेणियों विद्यमान है, ये चार प्रकार की मानी जाती है।

1–दक्षिण में विन्ध्याचल श्रेणी पश्चिम से पूर्व तक फैली इसकी चौड़ाई 12 मील और समुद्र सतह से ऊँचाई दो हजार फीट या इससे अधिक है।

2–पन्ना श्रेणी

3–माडर का पहाड़

4–कैमूर श्रेणी– इसकी चौड़ाई 20 से 30 मील तक तथा समुद्र सतह से ऊँचाई एक हजार फीट से तीन हजार फीट तक है। बुन्देलखण्ड की पर्वतीय सीमाओं में उत्तर में विन्ध्याचल ओर दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत को भी माना जाता है। [1]

---

(1) बुन्देली समाज और संस्कृति–डॉ0 बलभद्र तिवारी पृष्ठ 8

श्री जयचन्द ने बुन्देलखण्ड की सीमा का निर्धारण करते हुये अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया " बुन्देलखण्ड में बेतवा (वेत्रवती) धसान (दर्शाण) और केन (शुक्तिमती) नर्मदा, की उपरली घाटी और पंच नदी के अमर कंटक तक ऋक्ष पर्वत का हिस्सा सम्मिलित है। इसकी पूर्वी सीमा टोंस (तमसा) नदी है। इस प्रकार बेतवा ओर केन के कॉठो तथानर्मदा के उपरले काठे वालाप्रदेश बुन्देलखण्ड है। [1]

श्री जयचन्द विद्यालंकार की के उपयुक्त कथन से आधुनिक बुन्देलखण्ड की सीमा स्पष्ट होती है।

इण्डियन गजेटियर में बुन्देलखण्ड की सीमायें इस प्रकार दी गई है।

1—उत्तर प्रदेश – जालौन, हमीरपुर, बाँदा, झॉसी, ललितपुर, चित्रकूट, महोबा

2—मध्य प्रदेश – टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, दमोह, सागर, नरसिंहपुर, भिन्ड, दतिया, ग्वालियर, शिवपुरी, मुरैना, गुना, विदिशा, राजगढ, रायसेना, होसंगावाद

बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना दक्षिण में नर्मदा पूर्व में टोंस तथा पश्चिम में चम्बल नदी स्थित है इन चारों नदियों के बीच में जो जो आया है बुन्देलखण्ड माना जाता है। बुन्देलखण्ड में कुल मिलाकर 36 छोटे बड़े राज्य थे जिन्हे उत्तर प्रदेश , मध्यप्रदेश राज्य में मिलालिये गये हैं इसका विस्तार (क्षेत्रफल) 60 या 80 हजार वर्ग मील है।

मानचित्र के आधार पर सीमांकन पर विचार करते हुए डॅ0 सरला कपूर लिखती है कि बुन्देलखण्ड के मानचित्र के इसकी स्थित 23 – 45 और 26 – 50 उत्तरीय तथा 77 – 52 और 780– 0 पूर्वी भू रेखाओं के मध्य मे है, इसका क्षेत्रफल 12000 वर्ग मील है।

अस्तु वैज्ञानिक शोधों से यह निश्चित हो चुका है कि बुन्देलखण्ड की माटी क्रोंम्बियन युग की है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक इस भू भाग पर ईश्वर ऋषि मुनियों ने जन्म लिया, तथा उनकी तपस्या स्थली रही है। विभिन्न विद्वानों के मत मतान्तरो पर विचार मंथन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि बुन्देलखण्ड की सीमांकन स्वतंत्र भारत में नहीं हुआ। भाषा रीति रिवाज व्रत उत्सवों , सांस्कृतिक एकता के आधार पर ही इसका क्षेत्र विस्तार ही इसका सीमांकन है। तथा महाराज छत्रसाल के राज्य की सीमा के विषय में प्रयुक्त निम्न दोहा ही अधिक समीचीन है।

इत यमुना उत नर्मदा , इत चम्बल उत टोंस।

छत्रसाल सौ लरन की, रही न काहू हौंस।।

---

(1) भारत भूमि और उसके निवासी– जयचन्द्र विद्यालंकार पृष्ठ 65

भाषायी एवं सांस्कृतिक दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में

किसी भी क्षेत्र के सीमांकन के लिए उस क्षेत्र की भाषा अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। भाषा से उस क्षेत्र की सीमाओं का ज्ञान आसानी से हो जाता है।

शिशु जन्म लेने के बाद सर्व प्रथम अपनी माँ के सम्पर्क में आता है। तथा सर्व प्रथम वह अपनी को पहिचानता है लोकोक्ति है यथाः

''मासै माँ तिमासे बाप, छह मईना लौ कुटुम परिवार''

निश्चित हैं कि सर्वप्रथम वह अपनी माँ की ही भाषा सीखता है। इसलिए तो वह मातृ भाषा है। और अधिकतर वही मातृ –भाषा परिवार, समाज, क्षेत्र जनपद की भाषा होती है, भाषा ही आचार विचारों का आदान–प्रदान करने का प्रमुख साधन होती है। आंचलिक भाषा ही उस क्षेत्र या जनपद की सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना का माध्यम होती है। '' लोक भाषा जनपद के इतिहास और संस्कृति के स्वरूप की सतत साक्षी होती है। इसलिए जनपद की सीमायें लोक भाषा क्षेत्र से निर्धारित हुआ करती हैं।'' [1] बुन्देलखण्ड की भाषा बुन्देलखण्डी या बुन्देली हैं। किन्तु इस क्षेत्र का नाम बुन्देलखण्ड अधिक पुराना नहीं है। यह नामकरण मुश्किल से 800 – 900 वर्ष से अधिक नहीं है अतः बुन्देली भाषाया बुन्देलखण्डी भाषा नाम भी उतना ही पुराना है। प्राचीन युग से लेकर वर्तमान तक इस धरा को अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। किन्तु सर्वप्रथम विलियम कैरे ने जो 1793 ई0 में भारत आये थे अपने भाषा सर्वेक्षण के प्रति वेदन में 33 भारतीय भाषाओं की सूची में बुन्देलखण्डी पर भी विचार किया था, और उसका नमूना भी दिया।

''सन 1843 में मेजर लीच सी0 वी0 ने इसे बुन्देलखण्ड की हिन्दवी बागली कहा'' [2]

---

(1) बुन्देली संस्कृति और साहित्य– नर्मदा प्रसाद गुप्त 16

(2) बुन्देली लोक साहित्य –राम स्व0 श्रीवास्वत पृष्ठ 13

ऐसा स्थान, जाति, कर्म वाची होने के कारण हुआ होगा। जैसा कि बुन्देली समाज में प्रचलित है, ब्रहमनोटी अहिरयाना, बढवाँ, घुसयाना, लुधियाँत, कुर्मयाँत कहा जाता है। इसी आधार पर बुन्देलखण्ड के हिन्दुओं की बोली बुन्देलखण्डी हिन्दवीः रही होगी। स्थान विशेष– राजस्थान, पंजाब महाराष्ट्र, बंगाल, गुजरात , सिन्ध , बृज, कन्नौज, अवध, तथा भोजपुर के नाम आधारित राजस्थानी, पंजाबी, मराठी, बंगाली, गुजराती, सिन्धी , बृजी, कन्नौजी, अवधी तथा भोजपुरी हो गई, उसी आधार पर बुन्देलखण्ड की भाषा बुन्देली हो गयी है। यह नामकरण उनके स्थान वाची होने के कारण हुआ है।

हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित विभिन्न भाषा और बोलियों के भाषा – वैज्ञानिक अध्ययन से एक तथ्य तो स्पष्ट है कि मध्य युगीन विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित अपभ्रंश भाषाओं में ही आज की भाषा और बोलियों का अस्तित्व बीज रूप में खोजा जा सकता है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपभ्रंश के साहित्य से हिन्दी का ही मूल रूप समझा है। तो ठीक ही किया है''[1] भाषा विदों ने हिन्दी की लोक भाषाओं काउभद्व मध्यदेश की शौर सेनी अपभ्रंश से माना है। जबकि प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ0 हरदेव बाहरी अपभ्रंश को आभीर, गुर्जर आदि जातियों की भाषा बतलाते है.'' उनके अनुसार प्राकृत के उत्तर वर्ती रूप से ही आधुनिक आर्य भाषाओं का उद्‌भव हुआ है। इस तरह उन्होनें पश्चिमी हिन्दी का विकास उत्तर मध्य कालीन शौर सेनी प्राकृत से माना है और उनका निर्माण काल में उस पर अमिरी, टक्क और पैशाची भाषा के प्रभाव को स्वीकार किया है।[2]

मध्य देशीय अपभ्रंश शौर सेनी अपभ्रंश के परिनिष्ठित रूप के बाद की विकसित अवस्था है और वस्तुतः वह लोक प्रचिलित भाषा – रूप है।

'' यही ग्राम्य भाषा अपभ्रंश है, जिसे आचार्य हेमचन्द्र ने ग्राम्य अपभ्रंश कहा हैं और इसी '' ग्राम्य अपभ्रंश से ही आधुनिक देशी भाषाओं का विकास हुआ है।'' [3]

अन्य विद्वानों ने भी क्षेत्रीय भाषाओं को अपभ्रंश का विकसित रूप माना है। '' अन्य प्राकृत या अपभ्रंश से आशय मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की उस अन्तिम अवस्था से है।

---

(1) बुन्देली लोक साहित्य– डॉ0 राम स्वरूप श्रीवास्तव पृष्ठ न0 16

(2) हिन्दी उदभव और विकास– डॉ0 हरदेव बाहरी 1970 पृष्ठ 36

(3) हिन्दी साहित्य– डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ 61

जो पुस्तकों की प्राकृत और आधुनिक भाषाओं की प्रांरम्भिक अवस्था के बीच रही थी अपभ्रंश भाषाएं प्रायः पुस्तकों के लिखने के काम के लिऐ नहीं बनाई गई। दुर्भाग्य वश अपभ्रंशो के स्वरुप के विषय में हमारे पास थोड़ी बहुत सामग्री है। जो कुछ है उसमें प्राकृत भाषाओं से आधुनिक भाषाओं के विकास के समझने में बड़ी सहायता मिलती है।''

''शौर सेनी अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी गुजराती और पहाड़ी भाषा का सम्बन्ध है। इनमें से गुजराती तथा पहाड़ी भाषाओं का शौरसेनी के नागर अप्रभंश से है, बिहारी, बंगला, असमिया, और उड़िया का सम्बन्ध मागध अपभ्रंश से है। पूर्वी हिन्दी का अर्ध मागधी अपभ्रंश से, तथा मराठी का महाराष्ट्री अपभ्रंश से है।''

अपभ्रंश के अंतिम रूप से आधुनिक भारतीय भाषाओं का उदभूत दसवीं शताब्दी ई0 के लगभग बनने लगा होगा, पर साहित्य में उसका प्रयोग 13 वीं शताब्दी ई0 के प्रारम्भ से हुआ।
जिसमें पश्चिमी हिन्दी वर्ग भी सम्मिलित है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण में हिन्दी को पूर्वी एवं पश्चिमी हिन्दी में गठित किया गया है, बुन्देली पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आती है।

बुन्देली भाषा के उद्‌गम के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों का मत विचारणीय हैं।

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ने कन्नौजी बोली को बृजभाषा का अंग माना है, और ब्रजभाषा को दक्षिणी उपबोली के रूप में ग्रहण किया है। वे लिखते है '' हिन्दी बोलियों में बुन्देली तो ब्रज के सबसे निकट है वास्तव में भी बुन्देली का बृज का दक्षिणी रूप कहा जा सकता है।''

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा

'' बृजभाषा नाम अपने साथ मथुरा की प्रक्रिया की संकुचित भावना लेकर चलता हैं। वह उसका प्रतीक बन गया है। इसके कारण हमें इस मध्य कालीन काव्य भाषा में बुन्देलखण्डी , कन्नौजी, राजस्थानी, अवधी, मालवी, विभेदों की दीवार खड़ी दिखायी देती है।''

'' जिसे हम बृज साहित्य कहते है वह ग्वालियरी साहित्य के नाम से प्रसिद्ध था यह आज बृज बुन्देली कन्नौजी का सम्मिलित साहित्य था।

श्री राहुल सांसकृत्यायन

'' यह बुन्देलखण्ड की भाषा है और बृजभाषा के क्षेत्र में बोली जाती है''

डॉ0 श्याम सुन्दर दास

बुन्देलखण्डी अवधी, मेरठी आदि बोलियों का प्रत्यक्ष प्रभाव साहित्यिक बृजभाषा पर पड़ा है। विशेषतया बुन्देलखण्डी का''।

डॉ0 किशोरी दास बाजपेयी

डॉ0 श्री राहुल सांकृत्यायन बुन्देली (दशाबीज को स्वतन्त्र भाषा मानते है तो डॉ0 कृष्णा नन्द गुप्त बुन्देली को बृज और कन्नौजी की सहोदरा मानते है। किसी कवि के उदगार हैं यथा–

''कैसी नौंनी अपई बुन्देली, जैसे फूल चमेली,

हिन्दी की जेठी बिटिया हैं, बृज की लगै सहेली''

बोली अस्तु भाषा बिभाषा, उपभाषा दशार्णी, मध्यदेशीय, ग्वालियरी आदि की परिक्रमा करती हुई जो भाषा आज बुन्देली भाषा है, उसका अन्य लोक भाषाओं के उदय के डेढ़ सौ दो सौ वर्ष पूर्व ही हो चुका था। ''सिद्धं है, कि बुन्देल खण्ड के दोनों केन्द्रों में लगभग 16 वीं शती तक जो भाषा पल्लवित पुष्पित और परिष्कृत होती रही, तथा काव्य भाषा के रूप में मान्य रही वही मध्यकालीन काव्य भाषा कही जा सकती है, इसलिए उसे मध्य देशीय ना कह कर बुन्देली कहना ही न्याय संगत है''।[1]

बुन्देली भाषा –भाषी क्षेत्र बहुत व्यापक है। '' जनपदीय भाषा या बोली जनपद की राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक तो गति शील होती है। अतः उसमें परिवर्तन स्वाभाविक है। '' लोक भाषा जनपद के इतिहास और संस्कृति के स्वरूप की सतत साक्षी होती है। इसलिए जनपद की सीमायें लोक भाषा क्षेत्र से निर्धारित हुआ करती है। ''[2] परन्तु लोकोक्ति है कि '' कोस–2 पर पानी बदले, चार कोस पे पानी'' इस आधार पर जो बुन्देलखण्ड का भौगोलिक सीमाकंन किया गया है उस समस्त क्षेत्र में एक सी ही बुन्देली बोली जाती है ऐसा नहीं है सच तो यह है किसी भाषा या बोली को किसी निश्चित सीमा में बाँधा नहीं जा सकता है भाषा कोतो कोस–कोस पर भी बदलता देखा जा सकता है। क्योंकि दो क्षेत्रों की भाषा में यदि अन्तर हैं तो

---

(1) बुन्देली संस्कृति और साहित्य –नर्मदा प्रसाद गुप्त पृष्ठ 25

(2) '' '' '' '' 16

तो दोनों क्षेत्रों की जो सीमा है उस सीमावर्ती भाषा में दोनों का स्पष्ट रूप दिखायी देता है। किन्तु स्थूल रूप से एकता है, भले ही कुछ शब्द या व्याकरण में अन्तर हो, परन्तु बोलने का अन्दाज टोन तो अवश्य ही बदल जाता है। मेरे मुख्यालय से चारों और 2–2 किलो मीटर पर जो गाँव हैं उनमें यह अन्तर जाना जा सकता है। बोली बोलने की तरीके से ही पता लग जाता हैं कि अमुक व्यक्ति किस क्षेत्र का है। बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के 7 जिले है उन सातों की भाषा के अन्तर से जिला पहिचाना जा सकता है, तथा जालौन जिले की पांचों तहसीलों के व्यक्तियों का भाषा के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है।

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमायें परिवर्तित होती रहीं हैं जिस काल में वह क्षेत्र बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत रहा होगा उस काल की कुछ ना कुछ छाप अवश्य पड़ती है। अतः सीमा के उस पार भी बुन्देली भाषा का, या संस्कृति प्रभाव पड़ा होगा, अतः सीमा पार की भी भाषा तथा संस्कृति मिश्रित हो गयी होगी। बुन्देलखण्ड की सीमा के अन्तर्गत भी बाहरी सीमा पार की भाषा एवं संस्कृति का मिश्रण हुआ होगा। इस दृष्टि कोण से बुन्देलखण्ड के सीमावर्ती क्षेत्रों की भाषा मिश्रित है। बुन्देली भाषा की सामान्य विशेषताएं होते हुये भी बुन्देलखण्ड की बोलियों में विभिन्नता पाई जाती है इन विभिन्नताओं का डॉ0 रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल ने आंकलन करते हुये निम्न प्रकार से बंटवारा किया है।

(1) खाँ क्षेत्र – जिला हमीरपुर, उरई, छतरपुर, पन्ना, टीकमगढ़, दमोह, बाँदा, तथा, जबलपुर का उत्तरी भाग

(2) खों – जिला गुना, विदिशा, रायसेन, सागर, नरसिहंपुर का उत्तरी भाग, जबलपुर का दक्षिण पश्चिमी भाग

(3)की क्षेत्र– जिला मुरैना, ग्वालियर, भिण्ड , दतिया, झॉसी, शिवपुरी

(4) कूं क्षेत्र– जिला छिन्दवाड़ा, सिवनी, नरसिंहपुर का दक्षिणी भाग

(5) खं क्षेत्र – जिला होसंगाबाद, बैतूल

इसके अतिरिक्त जातीय संगठन के आधार पर भी बुन्देली की उपभाषाओं के निम्न भेद किये गये है।

1– बनाफरी– बाँदा और उसके आस–पास के क्षेत्रों में बोली जाती है।

2–मिहा– यह केन नदी के किनारे ब्रोली जाती है।

3–कुषडी– बाँदा तथा केन नदी के आस–पास को बस्तियों में प्रचिलित है।

4–तिरहारी–हमीरपुर में यमुना नदी के किनारे से लेकर जालौन तक चली जाती है।

5–खटोला–पन्ना की ओर बोली जाती है।

6–लुधियाँती– राठ चरखारी सरीला जिगनी (राठ तहसील) में बोली जाती है।

7–तँवरधरी– जिला मुरैना की अम्बाह तहसील तथा आस–पास ग्वालियर जिले की इवरा ग्वालियर तहसील में बोली जाती है।

8–भदावरी –ग्वालियर, दतिया तथा भिन्ड जिले में तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में। शिवपुरी की मगरौनी, नरवर तहसील के ग्रामों में बोली जाती है।

9–जटवारी–भिंण्ड जिले की गोहद तहसील के अन्तर्गत बोली जाती है।

10–सिकरवारी–मुरैना की मुरैना , जौरा, सबलगढ़ तहसीलों में बोली जाती है।

11–जासैमाटी– श्योपुर, विजयपुर, तहसील के तथा पालपुर (मुरैना तहसील) में बोली जाती है।

12–पवारी–ग्वालियर के उत्तर –पूर्व की ओर दतिया और झाँसी के आस–पास के क्षेत्रों में बोली जाती है।" [1]

बुन्देलखण्ड की सीमायें प्राकृतिक हैं। इनमें कुछ सीमायें तो निर्विवाद हैं, तथा कुछ के बारे में भूगोल वेता, भाषा विद् एकमत नहीं हैं। इस क्षेत्र के सीमांकन के विषय में भाषा को आधार मानकर, उसकी सांस्कृतिक एवं भौगोलिक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए निम्नवत स्थिति अत्यन्त समीचीन है–

1–उत्तर–प्रदेश के जालौन, झाँसी, ललितपुर, हमीरपुर, जिले तथा बाँदा जिले की नरैनी और करबी तहसीलों का दक्षिणी और दक्षिण पश्चिम भाग।

---

(1)बुन्देली लोक साहित्य डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव पृष्ठ नं0 25

2–मध्य प्रदेश के पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़ ,दतिया, सागर, दमोह, नरसिंहपुर के जिले तथा जबलपुर जिले को पाटन और जबलपुर तहसीलें का दक्षिणी और दक्षिण पश्चिम भाग, होसंगाबाद जिले की होसंगाबाद और सोहागपुर तहसीलों रायसेन की उदयपुर, सिलवानी, गैरतगंज, बेगमगंज, बरेली तहसीलें एवं रायसेन, गौहर गंज, तहसीलों का पूर्वी भाग विदिशा जिले की कुरबई तहसील, और विदिशा बासौदा, सिरोंज तहसीलों के पूर्वी भाग, गुना जिले की अशोकनगर (पिछोर) और करैरा तहसीलें, ग्वालियर गिर्द का उत्तरपूर्वी भाग, भिण्ड जिले की लहर तहसील का दक्षिणी भाग।

उपर्युक्त भू भाग के अतिरिक्त उसके चारों ओर की पेटी मिश्रित भाषा और संस्कृति है। अतएव उसे किसी इकाई के साथ रखना जरूरी है। इस आधार पर वे जिले पूरे के पूरे बुन्देलखण्ड में सम्मिलित किये जा सकते है। जिनके भू भाग विशुद्ध इकाई में सम्मिलित है और जो अपने को बुन्देलखण्ड का अंश मानते है। इनमें बाँदा, रायसेन,जबलपुर, और गुना आते है। [1]

2–डॉ0 ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिमी हिन्दी को पाँच बोलियों में से एक, जो बृज भाषा तथा कन्नौजी के साथ पश्चिमी हिन्दी बोलियों का एक वर्ग बनाती है। बुन्देली बुन्देलखण्ड की बोली है, शुद्ध रूप से यह उत्तर प्रदेश के झांसी, जालौन, हमीरपुर, जिलों तथा मध्यप्रदेश के ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होसंगाबाद जिलों में बोली जाती हैं। इसके मिश्रित रूप दतिया, पन्ना चरखारी , दमोह, बालाघाट, तथा छिंलवाड़ा के कुछ भागों में पाये जाते है।

3–चम्बल नदी वस्तुतः ग्वालियर की उत्तरी तथा पश्चिमी सीमा निर्धारित करती है। किन्तु उत्तर में बुन्दली चम्बल नदी तक ही नहीं बोली जाती, अपितु उसके पार आगरे मैनपुरी तथा इटावे के दक्षिण में भी बोली जाती है।पश्चिम मे भी इसकी सीमा चम्बल नदी नहीं है। क्योंकि पश्चिमी ग्वालियर में बृजभाषा तथा राजस्थानी की विभिन्न उपभाषायें बोली जाती है। दक्षिण में इसकी सीमा बुन्देलखण्ड की सीमासे बहुत दूर तक आगे चली जाती है। इधर यह केवल सागर, दमोह, तथा भोपाल, के पूर्वी भाग में ही नही बोली जाती है। अपितु मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर ,हुसंगावाद तथा सिवनी तक पहुँच जाती है। इसी प्रकार नागपुर के मैदान की भाषा यद्यपि मराठी हैं तथापि वहाँ भी मिश्रित बुन्देली बोलने बाली अनेक जातियाँ बस गई हैं।[2]

---

(1) बुन्देली संस्कृति और साहित्य–डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त पृष्ठ 21 विकास पृष्ठ 254

(2) डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा– हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ 517

4– यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अंचल पूर्व ओर है। टोंस पश्चिमांचल मे चम्बल'' बुन्देली इस के बाहर भी बोली जाती है। इसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में बॉदा (पश्चिमी भाग) हमीरपुर, उरई, जालौन, झांसी के जिले और मध्य प्रदेश में ग्वालियर का पूर्वी भाग , भोपाल का थोड़ा सा हिस्सा ओरछा, पन्ना, दतियॉ, चरखारी, सागर, टीकमगढ़, दमोह, नरसिंहपुर ,सिवनी, छिन्दवाड़ा, होसंगाबाद और बालाघाट जिले पड़ते है।[1]

5–बुन्देली शुद्ध रूप से झांसी , जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, ओरछा (टीकमगढ़) सागर, नरसिंहपुर , सिवनी तथा होसंगाबाद में बोली जाती है। इसके मिश्रित रूप दतिया, पन्ना , चरखारी दमोह, बालाघाट तथा नागपुर में प्रचिलित है।[2]

उपर्युक्त विभिन्न विद्वानों के विचारों के आलोक में यही कहना अधिक समीचीन होगा, कि बुन्देली भाषा बुन्देलखण्ड की सीमावर्ती भागों में मिश्रित तथा शेष भागों में अपने मूल रूप में बोली जाती है। बुन्देलखण्ड अत्यन्त विस्तृत भू भाग पर फैला हुआ है किन्तु बुन्देली भाषा भाषी उससे भी अधिक भू भाग पर रहते हैं। इस लोक भाषा को बोलने वाले लोग लगभग 1,10,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में रहते है। तथा पूर्व से पश्चिम की चौड़ाई लगभग 362 किमी है डॉ0 जार्ज ग्रियर्सन ने उन लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया के आधार पर बुन्देली बोलने वालों की संख्या तथा स्थानों के नामों की तालिका निम्नवत दी है।

बुन्देली लोक की भाषा– भाषियों की संख्या स्थान एवं नाम

स्टैन्डर्ड बुन्देली	झॉसी	–	6,79700
	जालौन	–	3,60129
	हमीरपुर	–	3,84000
	पूर्वी ग्वालियर	–	20,00,000
	पूर्वी भोपाल	–	67,000
	ओरछा स्टेट	–	3,80,400= 3579729
	सागर	–	5,82,500

---

(1) डॉ0 हरदेव बाहरी–ग्रामीण हिन्दी बोलियाँ

(2) डॉ0 भोला नाथ तिवारी–हिन्दी भाषा पृष्ठ 166

नरसिंपुर	–	3,63000
सिवनी	–	1,95000
होंसगाबाद	–	3,00,000
पवारी ग्वालियर	–	1,50,000
स्टेट दतिया	–	2,03,500
लोघांती राठौरी, हमीरपुर	–	98,000
चरखारी	–	39,500=137500
जालौन	.–	8,000
खटोला पन्ना इत्यादि	–	5,69,200
दमोह	–	3,22,000 = 891200
दक्षिण में बालाघाट	–	1,8600
बुन्देली (रूपान्तर)–छिंदवाड़ा	–	1,78,792 = 1,95,272
कुल योग	–	68,69,201 [1]

डॉ0 ग्रिर्यसन ने स्टैण्डर्ड बुन्देली भाषा–भाषियों की संख्यॉ 3519729 बुन्देली में दूसरे बोलने वालों की संख्या 8,91200 तथा मिश्रित और विकृत रूप बोलने वालों की संख्या 1,959,272 मानी है फलतः उनके अनुसार बुन्देली बोलने वालों की कुल संख्या 6,869,201 है।

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार बुन्देली बोलने वालों की कुल संख्या 6900000 है। [2]

डॉ0 उदय नारायण तिवारी ने बुन्देली भाषा भाषियों की संख्या लगभग 70 लाख बतलाई है।[3]

डॉ0 हरदेव बाहरी ने 1931 की जनगणना के अनुसार बुन्देली बोलने वालों की संख्या 69 लाख के लगभग बताई हैं तथा 1961 के ऑकडों के अनुसार यह संख्या 89 लाख तक होने का अनुमान लगाया है। [4]

---

(1) बलभद्र तिवारी– बुन्देली काव्य परम्परा पृष्ठ 56 से उद्वघृत

(2) डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा – हिन्दी भाषा का इतिहास (भूमिका) पृष्ठ 65

(3) डा़0 उदय नारायण तिवारी – हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास पृष्ठ 254

(4) डॉ0 हरदेव बाहरी – ग्रामीण हिन्दी बोलियॉ पृष्ठ 92

श्री कृष्णानन्द गुप्त ने बुन्देली भाषी स्थानों तथा बोलने वालों की संख्या पर विचार करते हुये लिखा हैं– बुन्देली को जनसंख्या (1951) इस प्रकार हैं राय सेन (93,15,358) और सतना (555603) सीमांती जिले है जिनमें क्रमशः और बघेली भी बोली जाती है।

	जिला	जनसंख्या
1–	ग्वालियर	5,30,299
2–	भिण्ड	5,27,978
3–	भेलसा (विदिशा)	293,023
4–	गुना	5,05,268
5–	शिवपुरी	4,76,092
6–	दतियां	1,64,314
7–	टीकमगढ़	3,66,165
8–	छतरपुर	4,81,140
9–	पन्ना	2,58,703
10–	सागर, दमोह	9,93,654
11–	जबलपुर	10,45,593
12–	मण्डला	5,47,620
13–	होंसगाबाद, नरसिंहपुर	8,47,898
14–	बैतूल	4,51,655
15–	छिंदवाड़ा, सिवनी	10,80,491
	कुल योग	85,69,893 [1]

वर्तमान समय में बुन्देली भाषा भाषियों की संख्या में प्रतिवर्ष अन्तर आ जाता हैं क्योंकि आजकल पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार–प्रसार अधिक हो रहा है। रेडियो, टी0 वी0 चल–चित्रों के माध्यम से खड़ी बोली प्रचार में आ रही है। एक ही व्यक्ति अपने घर, परिवार, गॉव में बुन्देली भाषा बोलता है वही व्यक्ति अपने कार्यालय में खड़ी बोली बोलता है। नगरीकरण के कारण गॉव के बुन्देली भाषी जन जो नगर में बस जाते है। वह

(1) डॉ0 कृष्णानन्द गुप्त– बुन्देली लोक साहित्य , हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास पृष्ठ 322

वह बुन्देली तथा खड़ी बोली दोनों ही बोलते है। तथा शिक्षा का प्रसार प्रचार अब सुदूर गाँवों तक हो गया है। अतः भाषा तथा बोलियों पर प्रश्न चिन्ह लगना शुरू हो गया है ऐसी स्थिति में कुल बुन्देली भाषा– भाषियों की शुद्ध सँख्यां बताना एक कठिन ही नहीं दुष्कर कार्य है।

पौराणिक दृष्टि में बुन्देलखण्ड

विश्व की सबसे प्राचीनतम यदि कोई भूमि है तो वह बुन्देलखण्ड भूमि है, ऐसा वैज्ञानिक शोधों से सिद्ध हो चुका है। बुन्देलखण्ड की मिट्टी क्रौम्बियन युग की है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए अब किसी साक्ष्य की आवश्यकता नहीं रह गयी है। करोड़ों वर्ष पूर्व ही, सर्व प्रथम बन्देलखण्ड का भू भाग ही जलावरण से ऊपर आया, जरठ विन्ध्यराज इसका मूक साक्ष्य है। सूर्य से अलग होने के पश्चात पृथ्वी ने जब स्वयं अपनी सत्ता सम्हाली थी तब वह बुन्देलखण्ड की धरती ही थी। पृथ्वी के जलावतरण में बुन्देलखण्ड ही था तो सृष्टि का विकास भी यही से प्रारम्भ हुआ होगा तथा मानवा की उत्पत्ति का श्रेय इसी भूमि का होगा, जिसका गवाह भी विन्ध्य पर्वत श्रेणियाँ , नर्मदा नदी होगी। पर्वत और नदियों से घिरे इस क्षेत्र को प्रकृति ने स्वयं सुरक्षा प्रदान की है। मानव विकास क्रम में जब शिशु होगा, तब पर्वत और नदियों ने चारों तरफ से घेरा बनाकर स्वयं ही सुरक्षा हेतु कवच बनाया होगा जो आज भी कायम है। प्रकृति ने स्वयं इसके रंग रूप को सजाया संवारा हैं, मानव जीवन को बलिष्ठ तथा आत्म रक्षार्थ तैयार करने के लिए नाना प्रकार की जीवन दायिनी , जड़ी बूटियों फल फूल धान्य से परिपूरित किया, ताकि मनुष्य ह्रष्ट पुष्ट रहकर मानव समाज का विकास एवं उत्थान कर सके आवश्यकता पड़ने पर अपनी कोख से मानव जाति को चारों ओर से आवृत सदानीरा नदियों ने धरती की प्यास बुझाई अनेकानेक खाद्य पदार्थ, धान्य को मनुष्यों के श्रम के पारिश्रमिक के रूप में दे कर अपनी उदारता का परिचय दिया है। ऐसी शस्य श्यामला धरती पर जन्म लेने के लिए कौन लालायित न होगा। देवता भी इस धरती पर अवतरण करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते है।

अतः स्पष्ट है कि भगवान राम, कृष्ण की कर्मस्थली कृष्ण द्वैपायन, गुरू द्रोणाचार्य, महान भगवद भक्त प्रहलाद का जन्म स्थान अनेकानेक ऋषियों मुनियों की तपः स्थली तथा असुरों की मोक्ष स्थली यही पूज्यनीय बुन्देलखण्ड की भूमि है।

प्रकृति परिवर्तनीय हैं काल क्रम है, समय चक्र है, जो निश्चित काल अवधि, लय में सदैव घूमता रहता है अतः परिवर्तन आवश्यक है पर इसी दृष्टि से इस भू भाग का विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न नामों

से इसका नमन किया है तथा इसकी प्रंशसा के जवाहरात वेदों, पुराणों, काव्य ग्रन्थों में जड़े हैं। नामों की श्रृंखला में सर्वप्रथम विष्णु धर्मोत्तर पुराण का उल्लेख अत्यन्त समीचीन होगा— विष्णु धर्मोत्तर पुराण में इस भूभाग का नाम बज्र देश एवं युद्ध देश कहा गया। प्रत्येक नामकरण के पीछे एक कथा या कुछ तथ्य छुपा रहता है। युद्ध देश में देवासुर संग्राम की कथा है जिसमें देव एवं असुरों के बीच संग्राम हुआ था। बज्र देश के पीछे की कथा है कि महान तपस्वी दधीचि का आश्रम बुन्देलखण्ड की पावन भूमि पर ही अवस्थित था। इन्द्र देवता जब असुरों के संहार करने में असमर्थ रहे तो उन्हें महान तपस्वी दधीचि की अस्थियों से बने बज्र की आवश्यकता पड़ी इन्द्र की याचना पर उन्होने मानवता की रक्षार्थ सहर्ष ही अस्थियाँ दान में देना स्वीकार किया तथा तप से अपने प्राण छोड़ दिये। उनकी अस्थियों से बने बज्र के द्वारा इन्द्र ने असुरों का संहार किया। बुन्देलखण्ड का नाम पदमावती भविष्य पुराण में मिलता है अन्य पुराण में इसका नाम कर्ण देश या कर्णवती भी मिलता है। मत्स्य पुराण में नर्मदा की महिमा का गुण—गान किया गया है। विन्ध्याचल पर्वत भारत के सारे पर्वतों में जेष्ठ है भू तत्व बेत्ताओं के अनुसार भारत में विन्ध्य अरावली और दक्षिण का पठार ही सबसे पुरानी रचना है। विन्ध्याचल अपने अंक में नर्मदा अमर कंटक और ताम्र केश्वर आदि अनेक तीर्थो को शोभायमान कर रहा है नर्मदा नदी का उद्‌गम स्थल अमर कंटक हैं नर्मदा के महत्व का बखान करते हुये मत्स्य पुराण में कहा गया है नर्मदा महानद की महिमा गंगा और यमुना से कहीं अधिक है गंगा कनखल क्षेत्र में पवित्र है सरस्वती कुरूक्षेत्र में पवित्र है परन्तु नर्मदा वन या गाँव में जहाँ भी है पवित्र है इसके साथ यह भी कहा गया है, यमुना जल सप्ताह में, सरस्वती जल तीन दिन में, गंगा जल उसी क्षणपुण्य प्रदान करता है तथा नर्मदा का जल दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देता है। अग्नि पुराण के गर्ग संहिता में एक कथा का वर्णन है हिरण्य कश्यप के वध के पश्चात भगवान नृसिंह के चक्षुओं से प्रहलाद के भगवद्प्रेम के कारण हर्षोतिरेक से अश्रु गिरने लगे जिससे उस स्थान पर एक सरोवर बन गया प्रहलाद ने नृसिंह भगवान से मातृ—पितृ ऋण से उऋण होने का उपाय पूछा जिस पर भगवान नृसिंह ने प्रहलाद को बताया कि इस अश्रु धारा से बने महानद में स्थान करने से मातृ—पितृ ही नहीं वरन दसों ऋण से उऋण हुआ जा सकता है। इस प्रकार इस महानद में स्नान करने से प्रहलाद दस ऋण माता, पिता, पत्नी , पुत्र , गुरू , देवता, ब्रहमण, शरणागत, ऋषि और पितरों दसार्ण से उऋण हो गये इसलिए बुन्देलखण्ड का नाम दसार्ण भी रहा है।

वाराह पुराण– वाराह पुराण में बेत्रवती की महिमा का वर्णन किया गया है। वाराह पुराण में एक कथा के अन्तर्गत, सिन्धु दीप राजा ने देवराज इन्द्र को पराजित करने के लिए घोर तपस्या की, क्योंकि देवराज इन्द्र से उसकी शत्रुता थी। उस राजा के तप से प्रसन्न होकर वरूण देवता की पत्नी ने वेत्रवती नदी का मानवी रूप धारण किया और कहा–

अहं जलपते पत्नी वरूणा महात्मनः नाम्ना वेत्रवती पुण्या, स्वाभिच्छन्तीह चागता
सामिलाषां परस्टीयों, भाग जाना, विर्सजयेत स पाप पुरूषौ इयो, बृहम हत्याच वदन्ति
एवं शात्वा महाराज, मज मानां गज स्वामाम् तसय सद्यो भवत् पुत्रो द्वादशार्क सम प्रमः
वेत्र वदयुदरे जातो नान्ना वेत्रा सुरो भक्ति।

अर्थात वेत्रासुर की वेत्रवती माता है वेत्रासुर ने इन्द्र को परास्त कर सिन्धु दीप राजा की इच्छा को पूर्ण किया।

पदम पुराण– पदम पुराण में श्री ज्वालेश्वर महादेव जी का वर्णन है। श्री ज्वालेश्वर महादेव अमर कंटक के मैकल पर्वत की चोटी पर स्थित है अमर कटंक बुन्देलखण्ड की पुण्य भूमि रीवॉ क्षेत्र की पूर्वी सीमा पर स्थित है।

मार्कण्डेय पुराण– मार्कण्डेव पुराण में इसी मैकल पर्वत को जो अमरकंटक की पूर्वी चोटी पर स्थित है। मार्कण्डेय पुराणानुसार इस तीर्थ में स्नान करने पर पुर्नजन्म नही होता हैं अर्थात प्राणी मोक्ष को प्राप्त होता है।

पदम पुराण, लिंग पुराण, गरूण पुराण, अग्नि पुराण बृहमाण्ड पुराण आदि पुराणों में कालिजंर के महत्व का वर्णन किया है।

ब्रंह्माण्ड पुराण में–

रेणुका शूकरा काशी काल बटेश्वरौ कालिंजर महाकाल उषर नव मोक्षदाः

---

1) अग्निपुराण–गर्ग संहिता अंक मु0 हनुमान प्रसाद पोददार चिम्मन लाल गोस्वामी सं0 2026,1970 प्रथम संस्करण

2)मार्कण्डेयपुराण –कल्याण अंक सं02003, 1947 गीता प्रेस गोरखपरु

अर्थात पदम पुराणानुसार कालिंजर मोक्ष प्रदान करने वाली पुण्य बुन्देली भूमि है।

कालिंजर महान शैव तीर्थ है तथा अति प्राचीन तपस्थली रही है। प्राचीनतम पौराणिक धार्मिक कथाओं के अनुसार यहाँ ब्रहमा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र, राम, कृष्ण, वृहस्पति, तुंग, अगस्त्य, धौम्य,भृगु, बृहमचारी, सारस्वत, आंगिरा, परशुराम, द्रोणाचार्य, मार्कण्डेय, एवं महर्षि बाल्मीकि की तप स्थली रहा है।

वायुपुराण तथा लिंग पुराणानुसार कालिंजर में भगवान शिव ने काल को जीर्ण कर दिया था अतः इसी से इस अलौकिक तप स्थली का नाम कालिंजर पड़ा। गरूण पुराण के अनुसार कालिंजर को महातीर्थ, अग्नि पुराण के अनुसार परम तीर्थ, तथा पदम पुराण के अनुसार उत्तम तीर्थ कहा गया है।

हरिवंशपुराण – हरिवंश पुराण में कालिंजर तीर्थ की महिमा का वर्णन करते हुये एक कथा का वर्णन हैं जो इस प्रकार है

शुमेन कर्मणा तेन जाता , जाति स्मरा मृगा।

त्रासनुव्याहा संविग्ना, रम्ये कालंजरे गिरौ।।

उन्मुखो नित्य, वित्रस्श्र , स्तब्ध कर्णे विलोचना।

पंडितो धस्मरोनादी नमस्ते ड मवन्मृगा।।

तेषां मरू साहायतां पद स्नानानि भारत,

तथैवाद्यापि दृश्यन्ति गिरो कालंजरे नृप

इसी पर्वत से छलांग लगा कर प्राणों का विसर्जन करने वाले सात हरिणों का वर्णन है

वामन पुराण – वामन पुराण में कालिंजर में जो भगवान शिव का नीलकण्ठ मंदिर है उसमें भगवान शिव स्वयं विराजमान है।

महाभारत में बुन्देलखण्ड के पर्वतों , नदियों तथा तीर्थ स्थानों का वर्णन किया गया है महाभारत के तीर्थ यात्रा पर्व में चित्रकूट के महत्व इस प्रकार वर्णित है

"ततो गिरिन्वरे श्रेष्ठे, चित्रकूटे विषाम्वते

---

1)कल्याण अंक–पदम् पुराण पृष्ठ 34 से 40 तक संवत् 1945– 2001 प्रथम संस्करण मुद्रक व प्रकाशक, घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस गोरख पुर यू0 पी0 भारत

2)ब्रम्ह पुराणांक–सं0 2003 जनवरी 1947 'कल्याण अंक गीताप्रेस गोरखपुर पृ0 307, 317

मन्दाकिनी समासाहा, सर्व पाप प्रणाशिनी भू

तमामिषेक कुर्वाणः पितृ देवार्चनरतः

अवश्मेघ मवोप्नोति गतिं च परमा श्रृंणेत''

महाभारत के वनपर्व में कांलिजर के महत्व का भी वर्णन किया गया है

''अत्र कालिंजरं नाम पर्वतं लोक विश्रुतम।

तत्र देवहूदे स्नात्वा गोसहस्त्रं फलं लगेतं।

यो स्नातः स्नापयेत तत्र गिरो कालिंजरे नृप।।

स्वर्ग लोके महीयेत नरोनास्तयत्र नरोनास्त्यत्र संशयः।।''

महाभारत के वन पर्व में भी तुंगारण्य से सम्बन्धित कथा का वर्णन है । तुंगारण्य ओरछा के समीप बेतवा के पूर्वी छोर पर घना जंगल है जिसमें सारस्वत महर्षि ने ब्रहमचर्य का पालन करते हुये इंद्रियों को वश में किया। तथा अन्य ऋषियों को वेदों का अध्ययन कराया संयोग वश एक बार ऋषि गणों को वेदों का विस्मरण हो गया जिस पर अंगिरा ऋषि के पुत्र ने उत्तरीय में छिपकर विधिवत ऊँकार का उच्चारण कर ऋषि गणों को पुनः वेदो का स्मरण कराया।

महाभारत के ही वन पर्व में वेत्रवती (बेतवा) का वर्णन भी इस प्रकार है। कि ''महा प्रलय के समय वेत्रवती को नारायण के उदर में देखा गया था।

श्री मद्भागवत की कथानुसार श्री कृष्ण के पौत्र अनुरूद्ध तथा वाणासुर की पुत्री उषा का प्रेम तथा विवाह का वर्णन है, यह वर्णन कुण्डेश्वर तीर्थ के महात्मय के सन्दर्भ में है जहाँ शिव पार्वती ने स्वयं प्रगट होकर ऊषा को दर्शन दिये तथा स्वप्न में भावी पति (अनुरूद्ध) का दर्शन कराया।

महाभारत में ही वनपर्व भी के 222 में अध्याय में वेत्रवती को अग्नि की माता बताया गया। देवी भागवत के दशम स्कन्ध में अध्याय 2 में विन्ध्याचल का वर्णन एवं महत्व का दर्शाया है।

रामायण में बाल्मीकि जी ने चित्रकूट का वर्णन इस प्रकार किया है '' इस रमणीय पर्वत को देखकर राज्य च्युत दुःख, सुहृदों से दूर रहने का दुखः मेरे लिये पीड़ा का कारण नहीं होता''।

मेघदूत में महाकवि कालिदास ने दशार्ण क्षेत्र का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है।

''मत्स्य पुराण कल्याण अंक –श्री कृष्ण सं0 5210 जनवरी 1985 सं0 राधेश्याम खेमका मु0 जगदीश प्रसाद जालान पृ0 780–818 तक

''पाण्डुच्छायों पवन वृतयः केतकैः सूचमिन्नैः

नीडारम्मैगृहं बलि भुजा माकुल जम्बू बनान्ताः

संपरस्थनते कतिपय दिन स्थायि हंसा दशार्णा

श्रीराम चरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने चित्रकूट के वर्णन को इस प्रकार दर्शाया है–

कामद भे गिरि राम प्रसाद।।

चित्रकूट गिरि अचल अहेरी,

अब्दुर्रहीम खान खाना ने अपने विचारों में चित्रकूट को आश्रय दाता के रूप में वर्णित किया है।

''चित्रकूट में रम रहे, रहिमन अवधनरेस

जा पर विपदा परत है, सो आवत यहि देश।।''

बुन्देलखण्ड का उत्तरी सीमा का प्रवेश द्वार कालपी जिला– जालौन का महत्व पुराणों में अपना एक अलग स्थान रखता है। कालपी के महात्म का वर्णन शिवपुराण, वायुपुराण, बृह्माण्ड पुराण, मार्कण्डेय पुराण, एवं श्रीमद्भागवत पुराण में प्राप्त होता है, वेद व्यास का जन्म स्थान एवं भीष्म प्रतिज्ञा कालपी, बाल्मीकि का जन्म बबीना, मुनिवामदेव का स्थान आटा, ऋषि पाराशर की साधना स्थली परासन, क्रोंच ऋषि कीनगरी कोंच, उद्दालक ऋषि की तपोभूमि उरई, रंक्तदंतिका देवी का स्थान सैदनगर आदि का वर्णन उपर्युक्त पुराणो में मिलता है।

महाभारत तथा पुराणों की रचना कालपी में की गई तथा यमुना को कालपी में विशेष महत्व प्राप्त हैं क्योंकि यम की बहिन यमुना अपने भाई यम की दिशा दक्षिण की ओर केवल कालपी के व्यास क्षेत्र में बहती है अन्य स्थानों पर अपने उद्गम स्थल से लेकर अंत तक कहीं भी दक्षिण दिशा की ओर नहीं बहती है।

बुन्देलखण्ड के बाघाट ग्राम का उल्लेख पुराणों में मिलता है महाभारत काल का वाकार ग्राम यही बाघाट ग्राम हैं जो झांसी से 16 मील एरच के पास है। यही बाघाट के वाकाटियों (ग्रामवासियों) ने आर्य संस्कृति की रक्षा और गंगा यमुना के मैदानों की रक्षा की थी। पुरातात्विक विद्वानों ने बाघाट से प्राप्त सिक्कों और लेखों से यह सिद्ध कर दिया है कि यह बाघाट ग्राम वही ''बाकाट'' है जिसका वर्णन महाभारत में है। महाभारत में कौरव पाण्डयों के गुरू द्रोणाचार्य इसी बाघाट ग्राम में जन्में थे। कुछ विद्वान एरच को ही हिरण्यकश्यप की राजधानी मानते हैं वहाँ से प्राप्त पुरातात्तिक साम्रगी से यह

सिद्ध होता है कि एरच में ही होलिका ने प्रहलाद को जिन्दा जलाने के लिए अग्नि में प्रवेश किया था, किन्तु प्रहलाद भगवान का उच्चारण करते हुये सकुशल रहे। किवदन्ती है कि आज भी एरच में ईट नहीं पकती है, तथा कुम्हार के वर्तन नहीं पकते है.।

"नरवर चढे ना बेडनी, एरच पकै ना ईट"

द्वितीय अध्याय

ऐतिहासिक एवं राजनैतिक स्थिति

प्रतिपल घटित घटनाएं ही इतिहास बनती जाती हैं। सन्दर्भ कोई भी हो चाहे वह नाम से सम्बन्धित हो, स्थित से सम्बन्धित हो, सीमांकन से, भाषा से धर्म से, पौराणिक दृष्टि से या अन्य किसी से सम्बन्धित सभी भूतकालीन घटित घटनाएं या प्रसंग ऐतिहासिक रूप ले लेते हैं जिनके आधार पर हम वर्तमान को भूत से जोड़ कर भविष्य को सौंप देते है।

बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक चित्र पटल पर जब हम दृष्टि डालते है तो पाते है कि इस खण्ड में चार लाख वर्षो के प्राचीन अनार्य असभ्य लोगों के चिन्ह पाये जाते है।[1] यह तथ्य भी प्रकाश में आता है कि इसी तारतम्य में मानवोचित ज्ञान की आरम्भिक शिक्षा की सीमा पर पदापर्ण करके सर्व प्रथम शिकार आदि में सुविधा के विचार से तीरों के लिए पत्थर के फल तथा कुल्हाड़ी, छुरे आदि बनाये थे। ऐसे प्रस्तर खण्ड अस्त्र, शस्त्र बुन्देल खण्ड में कई स्थानों पर मिलते है [2] जहाँ तक आर्यो अनार्यों का प्रश्न है– इस बुन्देल खण्ड में सभ्य आर्य कुलों के सिवाय प्राचीन अनार्य कुलों की कितनी ही असभ्य जंगली नंगी – धंडगी जातियाँ कौंदर, सौंर, आदि कई स्थानों पर इस समय भी है, जो इस भूभाग पर सभ्य आर्यो से पूर्व के होने का स्पष्ट संकेत करती है [3] इतिहास कारों की मान्यता है कि आज से लगभग 8 लाख वर्ष ईसा पूर्व से चार लाख वर्ष ईसा पूर्व पहले तक बुन्देल खण्ड में नितान्त अज्ञात स्थिति के आदिम असभ्य अनार्यो का निवास था इस क्षेत्र से " पत्थरों के जो तीर अस्त्र – शस्त्र आदि प्राप्त हुये है उन्हें इतिहासकारों ने 4 लाख वर्ष प्राचीन माना है। 4 लाख वर्ष ईसा पूर्व से 6600 सौ वर्ष पूर्व तक यही स्थिति रहीं 8 लाख से 4 लाख ई0 पू0 तक इस क्षेत्र में आदिम निवासी रहते थे। 4 लाख ई0 पूर्व से 6600 ई0 पू0 के मध्य प्रस्तुत कालीन दस्यु, राक्षस आदि अनार्य लोग यहाँ पर रहते थे।

---

(1) सहयोग, पत्रिका वर्ष 1999,–बुन्देलखण्ड की इतिहास यात्रा पृ0 (53)

(2) दीवान प्रतिपाल सिंह–बुन्देल खण्ड का इतिहास (326)

(3) वही (316)

(4) वही (326)ईसा पूर्व 6600 सौ से 6000

वर्ष ईसा पूर्व तक तिब्बती वर्मी , कोल भूकी भुटिया लेपचा मुण्डा, संथाल भील तथा 6000 ईसा पूर्व से 5900 वर्ष ईसा पूर्व तक नागवंशी लोग यहाँ के निवासी रहे ईसा पूर्व से 5600 वर्ष ई0 पू0 तक द्राविण, गौण, तमिल, तैलंग, कनारी, खांड (दैत्य, दानव, गरूण) लोग यहाँ के निवासी रहे। फिर 5600 ई0 पू0 से आदित्य, सुर, देव, आदि यहाँ पर रहे। अर्थात आर्यो का यहाँ पर प्रवेश हुआ [1]

इस प्रदेश में कोलारयन जाति (कोलो) का ई0 पू0 6000 वर्ष होना कुछ न्याय संगत होना प्रतीत नहीं है। यह तथ्य स्पष्ट है, कि इन लोगों को लोहे का ज्ञान अच्छा था जिसके आधार पर उन्होनें लोहे के उपकरण बनाये और इन लौह के उपकरणों का समय ईसा से 1900 वर्ष पू0 से अधिक नहीं माना जाता है। [2] अतः कोल जाति यहाँ पर 6000 वर्ष ई0 पू0 रही है, यह तथ्य सत्य नहीं लगता, अलबत्ता ई0 पू0 1900 से 4000 वर्ष तक लौह उपकरणों की प्राप्ति से यह निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि कोल सभ्यता का यहाँ पर उस समय प्रभाव रहा होगा। ''इस क्षेत्र से ताम्र युगीन उपकरणों का प्राप्त होना, निश्चित रूप से यह सिद्ध करता है कि ईसा पूर्व 60000 वर्ष से ईसा से ईसा पूर्व 6000 वर्षो तक इस क्षेत्र में ताम्र युगीन सभ्यता का पल्लवन हुआ''। आर्यो के विषय में यह भी माना जा सकता है कि मूलतः आर्य एक जाति थी, जो एक जगह रहती थी, और एक भाषा बोलती थी, बाद में वह बिछुड़ कर विभिन्न दिशाओं में चल पड़े। जो पश्चिम की ओर गयें, उनसे यूरोप के अनेक जन बनें, जो पूरब की ओर गये वे इरानी और भारतीय कहलायें। आदिम आर्य भाषा को बाद की संस्कृत, यूनानी, लातिनी, टयूप्न कोल्तिक, श्लाबोनी आदि भाषाओं में सुरक्षित कुछ अवशेषों के माध्यम से पहिचानना सम्भव है। इसी से उक्त भाषीय सिद्धान्त की पुष्टि की जाती है। [3] किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से आर्य नामक ऐसी जाति की निश्चित पहिचान सम्भव नहीं है जो कि किसी काल विशेष में विश्व में किसी भी भाग में रही हो। [4]

---

(1) दीवान प्रतिपाल सिंह– बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ0 326

(2) डॉ0 हरीमोहन पुरवार– 326

(3) डा0 हरी मोहन पुरवार शोधग्रन्थ – जालौन जनपद के मध्य कालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्याकँन पृ0 20

(4) स्वतंत्र देव –जनवरी 95 पृ0 3

सुसंस्कृंत आर्य एशिया की सबसे ज्यादा बंजर भूमि से उत्पन्न नहीं हो सकते थे किन्तु यह कहा जा सकता है, कि आर्यो के समय का मध्य एशिया आज के मध्य एशिया से सर्वथा भिन्न रहा होगा। ऐतिहासिक काल में भी इन प्रदेशों की ऋतु ,, में पर्याप्त अन्तर आ चुका है। भू–गर्भ शास्त्रियों का प्रमाणित विचार है कि इस क्षेत्र में वर्षा की मात्रा में बहुत कमी आ गई है। और प्राचीन लेखकों द्वारा जो प्रदेश उपजाऊ बताये गये है वे आज रेगिस्तान है। [1] स्व0 बाल गंगाधर तिलक के अनुसार आर्यो का वास्तविक निवास स्थान उत्तरी हिम सागर का प्रदेश था, वेदों में भी 6 – 6 महीनों के दिन रात का उल्लेख मिलता है जो उत्तरी हिम सागर प्रदेशों में ही पाये जाते है। ईरानी पुस्तकों से भी ज्ञात होता है, कि आर्यो के मूल निवास स्थान में लम्बी शीत ऋतुयें होती थी। हिन्दुओं का पारम्परिक स्वर्ग उत्तर का मेरू ही है। इन परिस्थितियों में तिलक के विचारों व उनकी नक्षत्रीय गणना को साधारणतया नकारा नहीं जा सकता है [2] गाईल्स ने यूरोप
में डेन्यूब नदी की घाटी एंव हँगरी को आर्यो का मूल स्थान माना है। एडवर्ड मेयर ओल्डेन वर्ग कीय ने मध्य एशिया के पामीर क्षेत्र को आर्यो का मूल स्थान माना है। नेहरिंग एंव प्रो0 गाइन चाईल्स पोकीनी ने दक्षिणी रुस को आर्यो का मूल निवास स्थान माना है। मैक्स मूलर जे0 जी0 रीड ने मध्य एशिया में वैक्ट्रिंया को आर्यो निवास स्थान बताया है। मैक्स मूलर ने इसका उल्लेख "आन दि सांइस आफ लेंग्वेज में किया है। इन मतों के साथ अभिनाश चन्द्र ने आर्यो का मूल निवास स्थान सप्त सैंधव प्रदेश माना है। श्री एस0 डी कल्ला ने भारत में कश्मीर अथवा हिमालय प्रदेश को मूल निवास स्थान माना है। [3]
इसी श्रँखला में कुछ विद्वानों का मत है कि आर्यो का आगमन पिछड़े हुये आदि वासियों का अति उन्नत आर्यो द्वारा वशी करण है जो भारत में सभ्यता लाये जिन्होंने यहाँ एक उन्नत समाज की स्थापना की [4] आर्यों के निवास स्थान अथवा उनके आने जाने को लेकर विद्वानो में मतैक्य नहीं है। वामपंथी विचार धारा से पोषित विद्वत्जनों का यह मानना है

---

1 प्राचीन भारत–डॉ0राधा कुमुद मुखर्जी — प्र0 25

2 प्राचीन भारत का इतिहास– झा एंव श्रीमाली — 115

3 प्राचीन भारत का इतिहास– वी0 डी0महाजन — 65

4 प्राचीन भारत का इतिहास –बी0 डी0 महाजन — 76

कि लगभग 3000 वर्ष ई0 पू0 एक वृहत सभ्यता सिंन्धु नदी घाटी में फैली हुई थी तथा हड़प्पा एंव मोहन जोदड़ो जिसका प्रतिनिधित्व करते थे । यह सभ्यता वैदिक काल से भी पूर्व की थी और द्राविड़ लोगों द्वारा इसका विकास किया गया था । इसी सिद्धान्त के अन्तगर्त भारोपीय यायावर जाति (खाना बदोश) ने जो कि आर्य कहलाते थे आक्रमण करके अफगानिस्तान के मार्ग से भारत में प्रवेश किया इस आक्रमण के कारण इतिहास में एक अन्धकार युग पैदा हो गया और इस अन्धकार युग के पश्चात गंगा नदी के क्षेत्र में आर्य द्राविड सहयोग से पुनः यह सभ्यता पनपी। यह सिद्धान्त भाषायी आधार पर ही आधारित है। भारोपीय भाषाओं में समानता के कारण इस सिद्धान्त के अनुयायियों की यह इच्छा रही है, कि यूरोप से भारत तक भारोपीय भाषाओं के बोलने वालों का उद्गम स्थल स्थापित करके यहीं से बिखराव बतला दिया जाये जिसके परिणाम स्वरूप यह कहा जा सके कि आर्य विभिन्न स्थानों पर जाकर बस गये, परन्तु यह सब पुरातत्वीय तथ्यों पर आधारित नहीं रहा हैं। क्रोनोलोजीज इन ओल्ड वर्ल्ड आर्किलोजी के अनुसार इसने सांस्कृतिक विकास के बहुत से सैद्धान्तिक परिपेक्ष्यों को परिवर्तित कर दिया। इसके अनुसार सिन्धु नदी घाटी की परम्परा एक ऐसी सांस्कृतिक अभिछिन्नता का प्रतिनिधित्व करती है जो सम्भवतः 6000 वर्ष ई0 पू0 से लेकर आरम्भिक ई0 शताब्दियों तक फैली दिखलायी पड़ती है। जिमशैफर के अनुसार दक्षिण ऐशिया पर किसी भी काल में चाहे वह प्रागैतिहासिक हो अथवा ऐतिहासिक हो, किसी भी भारतीय आर्य अथवा यूरोपियन ने कभी कोई हमला नहीं किया।

आधुनिक उत्खनन से प्राप्त सामग्री पर हुये विश्लेषण पाकिस्तान और पश्चिमी भारत के ऊपर से लिये गये उपग्रह चित्रों के अध्ययन तथा व्यापक पैमाने पर भू–गर्भ जल सर्वेक्षण की आख्याओं ने यह सिद्ध कर दिया है। कि प्राचीन काल में पश्चिम भारत में एक विशाल नदी बहती थी इसका प्रवाह सिन्धु नदी के समानान्तर जैसा था। यही नदी भारत की प्राचीन संस्कृति का मुख्य आश्रय रही है। सिन्धु घाटी की सभ्यता के स्थल सिन्धु नदी के किनारे नहीं मिले बल्कि वे अधिकतर उस नदी के किनारे मिले है, जो पहले सिन्धु नदी के समानान्तर बहा करती थी और वह नदी वर्तमान समय में दिल्ली के पश्चिम में बहती है। जिसे हम घग्घर नदी कहते है। यही घग्घर नदी

वैदिक काल से सरस्वती नदी के नाम से विख्यात थी। इस नदी का प्रवाह मार्ग अम्बाला की पहाड़ियों से आरम्भ होकर गुजरात में कच्छ केरल तक जाता है। पाश्चात्य पुरातत्व विद् मार्क केनोयर ने प्राचीन भारत के मानचित्रों पर सरस्वती नदी की गहरी रेखा अंकित की है। आर्यो के आगमन का सत्य – सरस्वती नदी के साथ जुड़ा हुआ है क्योंकि सरस्वती नदी के तट पर ही आर्य सभ्यता के चिन्ह मिलते है। अतः सरस्वती नदी को स्थिति पर विचार से आर्यो की स्थिति का सही आंकलन हो सकता है। सरस्वती लगभग 1900 वर्ष ई0 पू0 सूख गयी थी, इस पर मिले आधुनिक तम अवशेष हड़प्पा काल के है। ये अवशेष नदी तल पर मिलें हैं नदी के तट पर नहीं। यह जानकारी आर्य आक्रमण के सिद्धान्त को खण्डित करती है। अथव कम.से कम सिन्धु घाटी युग से भी पूर्व समय की ओर इंगित करती है। इसका मुख्य कारण है। कि वेदों में उस सरस्वती नदी का उल्लेख है। जिसे आज घग्घर कहते है। यह घग्घर नदी पहले यमुना और परूष्णवी (रावी) के मध्य बहकर सागर से मिलती थी। यह सरस्वती वैदिक जनों (आर्यो) के मात्र प्रदेश का केन्द्र थी। वेदों के इस प्रकार के उल्लेखों से यह सम्भव नही लगता कि वैदिक जनों ने भारत में 1500 वर्ष ई0 पू0 प्रवेश किया हो, जब यह नदी सूख चुकी हो। वैदिक साहित्य में सरस्वती नदी के सूखने का क्रमवार उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद (सात 95.2) में सरस्वती का विशाल नदी के रूप में वर्णन है। जो हरे – भरे प्रभूत उपजाऊ प्रदेश से बहती हुई सागर मे जा गिरती है। यही प्रदेश नहुष ययाति और पुरू जैसे वैदिक नरेशों की मातृ स्थली हैं। ऐतरेय ब्रामण में इसको मरू प्रदेश से बहता हुआ बतलाया गया है। महाभारत में कहा गया है कि यह मरू प्रदेश में लोप हो गयी । इसका लोप होना समीप भूत की घटना प्रतीत होती है क्योंकि जहाँ यह सरस्वती सागर से मिलती है उस क्षेत्र को अभी तक पवित्र माना जाता है। वस्तुतः वेदों में वर्णित प्रदेश जिसे सिन्धु और सरस्वती घाटी का प्रदेश कह सकते हैं, हड़प्पा कालीन सभ्यता के समान ही है। वैदिक संस्कृति से इसके तादात्मय की बात स्पष्ट हो जाती है।[1] शातुर्गे जैसे हड़प्पा कालीन अवशेष स्थलों के अफगानिस्तान में आम नदी पर मिलने पर मिलने से प्रगट होता है।

---

(1) जालौन जनपद के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन–डा0 हरीमोहन पुरवार, पृ0 4

कि भारतीय संस्कृति मध्य एशिया तक फैली हुई थी। इस बात के कोई भी वास्तविक प्रमाण नहीं हैं कि मध्य एशिया की संस्कृति भारत में फैली हुई थी चाहे वह हड़प्पा कालीन हो अथवा उत्तर हड़प्पा युग की। इसके विपरीत अफ़गानिस्तान के नदियों के नाम, जो ऐतिहासिक प्रमाण हैं, अफगानिस्तान पर पड़े। इस हड़प्पा (वैदिक) संस्कृति के प्रमाण के अन्तर्गत ही परिभाषित किये जा सकते है। अफगानिस्तान की हरातिनी नदी जिसे कुछ पाश्चात्य विद्वान सरस्वती होने का अभिमत प्रकट किया है कभी भी मूल सरस्वती के साथ तादात्म नही रखती क्योंकि वेदों में भारत की प्रवाहित विशाल सरस्वती का वर्णन है न कि अफगानिस्तान की हराकिनी जैसी छोटी पर्वतीय नदी का, जो कभी सागर तक पहुँची ही नहीं। प्राचीन काल में किसी नदी के प्रजातीय समूहों के भारत में प्रवेश के कोई साक्ष्य नही मिलते।

सिन्धु घाटी के मूल उत्खनक व्हीलर द्वारा आर्यो के आक्रमण और उनके द्वारा किये गये विध्वंश के सम्बन्ध में प्रस्तुत कंकाली साक्ष्य शोध कार्य के प्रकाश में गलत सिद्ध होकर अमान्य हो गये है नर संहार सिद्ध करने के लिए जो कंकाल जिसकी संख्या थोड़ी सी है, प्रस्तुत किये गये वे विभिन्न कालों से सम्बन्धित है। संस्कृत बोधक शब्द आर्य और द्रविड़ ये दोनो शब्द सांस्कृतिक परिवेश के शब्द है। इनसे किसी जाति का बोध नही होता। यद्यपि उत्तर भारत और दक्षिण भारत में प्रजातीय अन्तर दिखता हैं। यह उसी प्रकार है जैसे उत्तर और दक्षिण योरोप में। वेदों में आर्य शब्द का अर्थ भद्र, संस्कारित अथवा आध्यात्मिक है, और इसका प्रचलन विश्लेषण एवं उद्‌वोधन के रूप में किया जाता था। शंकर नारद संवाद के इस श्लोक में मिलता है।

आवांजानीत भद्रवः पार्षद प्रवरौहरे'

सुनन्द नन्द नौनाम्ना प्रेषितौ वो मधुद्रिषा

समानयन कामेन बज्रन्तुद्रत मार्यका।।

अर्थात हम लोगों को, तुम लोग भग़वान सुनन्द तथा नन्द नामक श्रेष्ठ पार्षद समझों। श्री मधुसूदन ने हमें तुम्हारे पास तुम्हें लेने के लिए भेजा है। हे आर्य शीघ्र चलिए इससे स्पष्ट है कि आर्य शब्द सम्बोधक है [1]

---

(1) जालौन जन0 के मध्यकालीन प्रमुख भवनो का ऐतिहासिक मूल्याकंन –डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृ0 4

इसका अर्थ जातीय कदापि नहीं है। बुद्ध ने अपने मत को आर्य मत कहा'' आर्य लोगो की शिक्षा'' उन्होने किसी विशिष्ट जाति के लिये शिक्षा प्रदान की हो ऐसा नहीं है। जहाँ तक उपलब्ध इतिहास हैं। उससे यह ज्ञात होता है कि द्रविड़ संस्कृति से सम्बन्धित भाषा योरोपीय परिवार की नहीं हो सकती हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है। कि भारत में जातीय आधार पर आर्य द्रविड़ विवाद पैदा किया जावे भारत की आध्यात्मिक संस्कृति में हजारों हजार साल से इस सम्पूर्ण उप महाद्वीप का योगदान रहा है।

1900 ई0 पू0 हड़प्पा कालीन नगरों की समाप्ति के बाद हड़प्पा कालीन सभ्यता का अन्त हो गया । इसका कारण यह बतलाया गया हैं कि आर्यो के आक्रमण से यह संस्कृति नष्ट हो गयी किन्तु नये साक्ष्यों से अब यह प्रामाणित हो गया है कि लोग उन नगरों को छोड़कर चले गये थे न कि उन्हें तहस नहस किया गया था और सरस्वती नदी का सूखना ही इस पलायन का मुख्य कारण था। सिन्धु नदी घाटी युग में सतलज नदी सरस्वती नदी से मिलती थी। बाद में उसने अपना मार्ग बदल लिया था और वह सिन्धु से जा मिली। इस कारण आई बाढ़ और जल भराव भी उन नगरों को छोड़ कर अन्यत्र जाने के कारण रहे हैं इधर धीरे –2 सरस्वती नदी सूखती चली गयी। नये तथ्यो के प्रकाश से यह स्पष्ट है कि हड़प्पा कालीन नगरों का लोगों द्वारा परित्याग करने के कारण इतिहास में कोई अन्धकार युग नहीं आया बल्कि स्थान परिवर्तन कर अपनी ही संस्कृति को पुनः स्थापन की प्रावस्था का युग निर्मित हुआ जिसमें उन निवासियों की वही अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं का विकास जारी रहा। सांस्कृतिक अविछिन्नता (सातत्य) सिन्धु नदी घाटी क्षेत्र को कांस्य और लौह युग से जोड़ती है। वही प्राचीन तत्कालीन संस्कृति कृषि और उद्योग धन्धों के विकास से जुड़कर प्रगति करती रही। इसी संस्कृति के सातत्वका एक भाग वह क्षेत्र है जिसमें अग्नि वेदियों का प्रयोग होता था। अग्नि वेदियाँ उन वेदियाँ के समान हैं, जिनका उल्लेख वेदों में किया गया है। ऐसी अग्नि वेदियाँ हड़प्पा स्थलों में विशेष रूप से पंजाब के काली बंगा और गुजरात के लोथल के उत्खनन में बहुतायत से प्राप्त हुई है। वास्तव में वेदों से सम्बन्धित अग्नि पूजा की हड़प्पा कालीन धार्मिक कृत्यों में प्रमुखता थी।

रंगीन धूसर मृण पात्र जो कि आक्रमण कारी आर्यो के पात्र समझे जाते थे उन्हें इस क्षेत्र में विकसित होती हुई सास्कृंतिक का अविच्छिन्नता के उत्पाद के रूप में स्वीकार करके

हड़प्पा शैली से जोड़ दिया गया है इसी प्रकार से लोहा को भी यह माना जा रहा है कि आक्रमण कारी इसे अपने साथ लाये थे, परन्तु इसको भी अब अविच्छिन्न सांस्कृतिक विकास से जोड़ दिया गया है।

अश्व के विषय में यह मान्यता रही हैं कि आर्यो का प्रतिनिध 1500 ई0 पू0 तक भारत भूमि में मिलता ही नहीं था, अब इसी अश्व के गंगा के मैदानों में 2000 ई0 पू0 से लेकर 6000 ई0 पू0 तक की काल सीमा में पाये जाने के प्रमाणों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गयी है कि आर्य कहीं बाहर से नही आये बल्कि वे इसी भारत भूमि के थे और हैं।

सरस्वती नदी पर केन्द्रित वैदिक संस्कृति स्थान परिवर्तित करके पौराणिक संस्कृ ति के रूप में गंगा नदी पर केन्द्रित हड़प्पा हो गयी। यह घटना उन पुरातत्वीय साक्ष्यों से मेल खाती है जिनसे स्पष्ट होता है कि सरस्वती केन्द्रित हड़प्पा संस्कृति 6000 ई0 पू0 खिर कर गंगा केन्द्रित संस्कृति के रूप में पुनः निर्मित हुई। वेद काल में होने वाले अनुष्ठानों के आधार नक्षत्र और राशि थे जिनमें चन्द्रमा अपनी गति करता है उस समय वर्ष का आरम्भ दक्षिण अयनांत (मकर संक्रान्ति) से होता था साथ ही उत्तर अयनांत (कर्क संक्रान्ति) की भी गणना थी। इस प्रकार से वेदों में ज्योतिष सन्दर्भ परिचय मिलते है जिनका उपयोग वेदों के निर्धारण में सहायक हो सकता है। उत्तर कालीन वैदिक रचनायें जैसे वेदांक ज्योतिष (5) कोशितकी ब्राहम्ण (XIX –3) और बोबौधायन श्रोत सूत्रा (XX –1–29) 1300 ई0 पू0 की एक तिथि पर प्रकाश डालते है। जब एक आश्लेष नक्षत्रा का मध्य (2320 कर्क) में कर्क संक्रान्ति पड़ती है और घनिष्ट नक्षत्र (2320 वृश्चिक) के लगते मकर संक्रान्ति पड़ी इस टिप्पणी का उल्लेख बराह मिहिर द्वारा अपनी बृहत संहिता (00–1) में किया गया है।

अर्थववेद (XX6,2) यर्जुवेद तैतरीय संहिता और कई ब्राह्मण जैसे शतपथ के अनुसार कृतिका (26–403मेष) (1–10 00 बृष) पूर्वीय केन्द्र महाविषुब से संम्बधित है। और महा नक्षत्र कर्क संक्रान्ति (0–13–20सिंह) पर आया। 2500 ई0 पू0 के आस–पास की तिथि का उल्लेख है। यह बात सत्य है कि वेदों में अन्य तिथियाँ को पाश्चात्य विद्वानों में अनदेखा कर रखा है क्योंकि उनका पूर्वाग्रह यह है कि आकाशीय नक्षत्रों की गणना करने में हिन्दू अवैज्ञानिक पद्धति अपनाते है और उन पर विश्वास नहीं कियाजा सकता किन्तु प्राचीन भारत की सभ्यता संम्बधी पुरातत्व के नये तथ्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है अमेरिका बासी "सुभाष काक" एक प्रमुख वैदिक विद्वान है

इन्होंने ऋग्वेद में गणित और ज्योतिष के कुछ गूढ़ संकेत ढूँढ निकाले हैं नसे वैदिक पंचाग और 2500 ई0 पू0 या इससे भी पूर्व काल के नवीन सन्दर्भो को जाना जा सकता है उनका कहना है कि वेद कालीन लोगों ने ग्रहों की संयुक्ति काल की भी गणना कर दी थी। उनके अनुसार प्राचीन भारत की प्रचिलित ब्राह्मी लिपि सिन्धु नदी घाटी की लिपि से उतर कर आयी है। वैदिक साहित्य में कहीं भी आर्य आक्रमण का उल्लेख नहीं मिलता है। बल्कि अपनी मातृ–भूमि की पवित्र नदी से अपनी संस्कृ ति को सुदूर देशों में फैलाने की बात कही है।

ऋग्वेद में युद्धों का वर्णन है किन्तु ये युद्ध तो उस एक संस्कृति के मानने वाले के परस्पर युद्ध है। वेदों ने कभी अपने लोगों को खानावदोश नहीं कहा है। वैदिक लोगों के शत्रुओ को दस्यु, राक्षस, और असुर नाम से जाना गया है, ये नाम उनके अमानवात्मक गुणों को इंगित करते है जो कि आर्यो के जंगली एवं बर्बर होने का खण्डन करती हैं वैदिक संस्कृति भाषा संसार की सुन्दरतम एवं शक्ति शाली भाषा है इसमें छन्दों की रचना संश्लिष्ट है मध्य एशिया के खानाबदोश जैसी असभ्य जाति ऐसी भाषा का प्रयोग करें जिनमें भारत के सहस्त्रों शताब्दियों के प्राचीन धर्म और गहन संस्कृति के संजोकर रखा चला आ रहा हो।

आध्यत्मिक शांति से परिपूर्ण वैदिक मंत्र इस बात का प्रमाण है, कि खानाबदोश जैसी बर्बर और लुटेरी जाति के पास ऐसे दस्तावेज नही हो सकते। श्री अरविन्द स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द जैसे अनेक भारतीय विचारकोंऔर ऋषियों ने आर्य आक्रमण का खण्डन किया है।[1]

इस सबसे यह पूर्णतः स्पष्ट है कि आर्य कहीं बाहर से आये है यह पूर्णतः असत्य एवं निराधार है हड़प्पा सभ्यता, वैदिक सभ्यता का ही एक चरण है और इस सभ्यता का उद्ग्म और विकास सरस्वती नदी लुप्त प्रवाह तट पर हुआ।[2]

---

(1) पाञ्चजन्य 95 पृष्ठ 93–84

(2) डॉ0 हरी मोहन पुरवार जालौन जनपद के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृष्ठ 9

आर्य सभ्यता सरस्वती नदी के तट पर विकसित हुयी और उसी के साथ सांस्कृतिक जड़ें मजबूत करती हुयी आज वट वृक्ष की भांति इस देश में अडिग खड़ी है। बुन्देलखण्ड के विषय में भी यह तथ्य स्वीकारने योग्य है कि प्राचीन काल में यहाँ पर आर्य ही थे और उनकी सांस्कृतिक विरासत को हम सब अपने जीवन में जीते हुये आज भी अक्षुण्य बनाये हुये है।

भारत वर्ष के प्राचीन इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध के समय इस देश में कुल 16 महाजनपद थे जिनमें से चेदि और दशार्ण सत्तामक राज्य थे इनकी राजसंस्था अन्य तत्कालीन राज्यों के समान ही रही होगी। राजा, राज घराने का एक ही व्यक्ति रहता था और राजा के जेष्ठ पुत्र को राजा चुने जाने का पूर्ण अधिकार था। परन्तु प्रजा ही राजा को चुनती थी।[1]

विक्रम सम्वत के लगभग 300 वर्ष पहले मगध का राज्य बहुत शक्ति शाली हो गया था। बुद्ध भगवान का देहान्त हुये 450 वर्ष बीत चुके थे जब सिकन्दर ने यूनान से चढ़ाई की थी। उस समय नन्द घराने का राजा राज्य करता था। इस समय बुन्देलखण्ड की क्या स्थिति थी यह नहीं कहा जा सकता। सिकन्दर के लौट जाने के बाद प्राचीन राज घराने का एक युवक जिसका नाम चन्द्रगुप्त मौर्य नन्द वंश के शासक को मार कर स्वयं राजा बन गया। चन्द्रगुप्त अत्यन्त ही बुद्धिमान और पराक्रमी राजा था इसका मंत्री कौटिल्य था जो अपनी अर्थ शास्त्रीय नीति के कारण चाण्क्य के नाम से जग में प्रसिद्ध हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्राज्य में नर्मदा के उत्तर का भाग आ गया था। चन्द्रगुप्त के मरने पर उसका पुत्र बिन्दुसार विक्रम संवत 240 वर्ष पूर्व साम्राज्य का अधिकारी हुआ।[2] बुन्देलखण्ड में मौर्य साम्राज्य का भी अस्तित्व रहा है क्योंकि मौर्य साम्राज्य बड़ा होने के कारण उसके चार बड़े विभाग थे। प्रत्येक विभाग की राजधानी में साम्राज्य की ओर से एक शासक नियुक्त रहता था। बिन्दुसार के राजय काल में उसका पुत्र उज्जैन का शासक नियुक्त किया गया था। यही अपने पिता के मरने पर साम्राज्य का अधिकारी हुआ।[3]

---

(1) डाॅ० हरीमोहन पुरवार– जालौन जन0 के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐति0 मूल्यांकन पृष्ठ 9

(2) बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास– गोरेलाल तिवारी पृष्ठ 6

(3) वही पृष्ठ 10

संवत 174 वर्ष पूर्व अशोक के देहान्त के बाद अशोक का साम्राज्य दो भागों में बटँ गया। अनुमान किया जाता है कि बुन्देलखण्ड पश्चिमी भाग में ही रहा। मौर्य साम्राज्य का सेनापति पुष्यमित्र शुंग अपने स्वामी बृहदथ को मार कर स्वयं राजा बन गया। इस प्रकार शुगों के राज्य का आरम्भ विक्रम संवत के 426 वर्ष पूर्व हुआ यह वंश जाति का ब्राह्मण था। [1] इसी तारतम्य में यह तथ्य भी है कि राजकुमार अग्नि मित्र विदेश में राज्य पारण के रूप में नियुक्त था जहाँ से बुन्देलखण्ड तथा पूर्वी मालवा का शासन चलाता था सम्भवतः शुगों के समय में ही यवनों के आक्रमण हुये। यवनों के आक्रमण का उल्लेख पंतजलि के महाकाव्य में में भी हुआ। इससे यह क्षेत्र भी प्रवाहित हुआ होगा। हमीरपुर जिले के ग्राम पचोखरा ग्राम से मिले इण्डोग्रीक सिक्के इस मत को बल प्रदान करते है कि इस क्षेत्र में यवन राजाओं का शासन रहा होगा। युगों के पश्चात यह साम्राज्य छोटे – 2 राज्यों में विभक्त हो गया। लगभग प्रथम शताब्दी के अंतिम भाग में यह क्षेत्र कुषाण वंश के महान शासक कनिष्क के साम्राज्य में हो गया था। नाग सिक्कों पर ग्यारह नाग राजाओं के नाम मिलते है। जो इस प्रकार है वृष, मीन, स्कन्द, वसु, ब्रहशपति, विभु, रवि, भव, प्रभाकर देन और गणपति नाग राजाओं ने इस प्रदेश पर दूसरी शताब्दी के अन्त से चौथी शताब्दी तक राज्य किया कुछ विद्वानों का मत है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर गुप्त राजाओं के अन्तर्गत सर्वप्रथम समुद्र गुप्त का ही आधिपत्य स्थापित हुआ था उसकी प्रयाग प्रशास्ति में गणपति नाग, नागसेन जैसे राजाओ को पराजित करने का उल्लेख है। समुद्रगुप्त (335–375 ई0) का एरण अभिलेख इस बात का प्रभाव है कि उस समय तक यह क्षेत्र साम्राज्य का अंग बन चुका था। इस क्षेत्र से समुद्र गुप्त के सिक्के भी प्राप्त हुये है यहां पर यह तथ्य भी विचारणीय है कि " एरण की भौगोलिक स्थिति महत्वपूर्ण [2] थी एरण एक ओर मालवा का तथा दूसरी ओर बुन्देलखण्ड का प्रवेश द्वार माना जाता था। उज्जयिनी से एक राजमार्ग विदिशा तक जाता था इसका बिदिशा से एरण होता हुआ वह दशार्ण कौशम्बी और काशी तक जाता था। [3]

---

(1) डॉ0 गोरेलाल तिवारी बुन्देलखण्ड संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ 10

(2) वही पृष्ठ 11

(3) डॉ0 हरी मोहन पुरवार –जालौन जन0 के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृष्ठ 11

पूर्वी मालवा की सीमा रेखा पर स्थित होने के कारण यह दशार्ण को चोदि जनपद से जोड़ता था[1] नाग राजाओं का कार्य कारक विक्रम संवत 56 से मीन नाग के समय से नाग वंश के अन्तिम राजा देव नाग विक्रम संवत 266 तक रहा है। इस नाग राज्य के छठे राजा गणपति नाग (वि0 स0 202) के समय से ही समुद्र गुप्त ने इसे अचने अधिकार क्षेत्र में ले लिया था। इसका वर्णन इलाहाबाद के विजय स्तम्भ में अंकित है।

जबलपुर के भेड़ा घाट नामक स्थान से कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुई है जिन पर यह लिखा है कि इन मूतिर्यो की स्थापना। कि भूमक की पुत्री ने की है। इससे यह इंगीत होता है कि भूमक का राज्य यहाँ तक रहा है। इससे यह तथ्य उद्घाटित होता है कि सारे बुन्देलखण्ड पर शक लोगों का राज्य हो गया मालवा का यह पहला मध्य क्षत्रक चेक्टन था जिसने विक्रम संवत 132 में उज्जैन को अपनी रांजधानी बनाया वि0 स0 358 तक मालवा पर महा क्षत्रियों का राज्य रहा। शकों के प्रांतीय शासक क्षत्रक महा क्षत्रकों के बाद बुन्देलखण्ड में कुशाणों का राज्य स्थापित हुआ। काबुल, श्रंजाक मथुरा के अलावा मालवा में भी इसके सिक्के मिले है। कुछ सिक्के झांसी के एरच ग्राम में भी मिले है। जो कि कुषाणों के आधिपत्य का इस बुन्देलखण्ड पर होना प्रभावित करते है कुषाणों को अंतिम राज्य का निष्पल था जिसके मरते ही बुन्देलखण्ड से कुषाणों का राज्य समाप्त प्रायः ही गया था। इसी समय मगध में मुक्त राजा की ताकत बढ़ने लगी और बुन्देलखण्ड की गुप्तों की उस ताकत से अछूता ही न रहा। और उसे भी उसके आधीन होना पड़ा। समुद्र गुप्त की मृत्यु के पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय (वि0 स0 431) ने राज्य को सम्हाल और राज्य की विस्तार वादी परम्परा को आगे बढ़ायी उदयगिरि गठवा तथा सांची के लेख इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण है यह क्षेत्र गुप्त साम्राज्य आधिपत्य में था। गुप्तों के साम्राज्य के पश्चात इस बुदेलखण्ड पर हूणों का साम्राज्य रहा। इन हूणों का राज्य काल 50 वर्ष से अधिक नही रहा। कालिंजर एवं भंडसर के शिलालेख इस बात के प्रमाण है [2] प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में विख्यात ब्हेन सांग की यात्रा विवरणी में उल्लिखित है

---

(1) म0 प्र0 के नागवंशीय सिक्के– अंतिमाबाजपेई पृष्ठ 2

(2) अंतिमा बाजपेयी – वही पृष्ठ 2

मालवा ग्वालियर तथा बुन्देलखण्ड पर ब्राह्मण राज्य करते थे। बुन्देलखण्ड को उसने चि. चि. हो से सम्बोधित किया है [1] समूचे बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर हर्ष बर्द्धन का राज्य था हर्ष बद्धर्न ने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया तथा वि0 सम्बत 703 में मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस बुन्देलखण्ड को अपने आधिपत्य में करने की ललक सभी के मन में रही है। इसलिए इन ब्राह्मणों को हराकर गुर्जर प्रतिहारों में अपना साम्राज्य स्थापित किया। देवगढ़ अभिलेख [2] में इस बात वर्णन मिलता है कि कन्नौज ने जिस राजा भोज का वर्णन मिलता है, वह गुर्जर प्रतिहारों राजा मिहिर भोज (7836 – 885) ही है जिसका वि0 स0 926 अंकित है। भोज द्वारा चलवायें गये बराह प्रकार के सिक्के इस क्षेत्र में काफी मिलते है। जो कि 9 वीं शताब्दी में बुन्देलखण्ड भर में भोजों के राज्य को प्रमाणित करते है। कुछ विद्वानों के मतानुसार चेदि राज्य का आरम्भ काल वि0 स0 306 माना जाता है [3] वि0 स0 306 में चेदि को राजा कालवर्ण था जिसे शिशुपाल के वंशजों ने मारा वि0 सं0 557 में शंकर गण चेदि का राजा हुआ। वि0 सं0 737 में हैहय राजा हुआ जिसे विनयादित्य चालुक्य ने हराया। वि0 स0 737 में हैहय की राजकुमारी लोक महादेवी का विवाह विक्रमादित्य चालुक्य द्वितीय के साथ सम्पन्न हुआ। वि0 स0 932 में कोकल्ल प्रथम ने राज्य सत्ता संभाली। यह कन्नौज का राजा भोज का समकालीन था।

वि0 सं0 में मुग्ध तुंग, 982 में युवराज तथा वि0 सं0 1077 लक्ष्मण ने सत्ता सम्भाली विलहरी में लक्ष्मण सागर तालाब बनवाया वि0 सं0 1032 में युवराज जो कि वाकपति का समकालीन था ने सत्ता पर अपना आधिपत्य बनाया। वि0 सं0 1077 ने कोकल्ल द्वितीय पुत्र गांगेय देव गद्दी पर बैठा। यह बड़ा प्रतापी राजा था। जबलपुर के निकट कुम्ही नाम ग्राम में एक ताम्र लेख मिला है।[4] इस ताम्रलेख से स्पष्ट है कि गांगेय देव प्रयाग के निकट अक्षयवर के नीचे मृत्यु को प्राप्त हुये और उनकी मृत्यु के पश्चात उनकी 150 रानियाँ सती हो गयी।

---

(1) डॉ0 हरीमोहन पुरवार–जालौन जन0 के मध्य कालीन भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन पृष्ठ 11

(2) वही 11

(3) वही 11

(4) वही पृष्ठ 12

इस राजा का युद्ध कन्नौज के राठौर राजाओं से हुआ वि0 1100 सम्वत में गांगेय देव के पुत्र कर्ण देव ने राज्य सम्हाला और उसका हद विस्तार किया। प्रसिद्ध पुरातत्व वेन्ता काशी प्रसाद जायसवाल उसे भारतीय नेपोलियन कहते है इसके समय में कलाचुंरि वर्ष की कीर्ति सर्वोच्य शिखर पर पहुँच गई थी। इसका कार्य – काल वि0 स0 1100 से 1125 तक रहा। कर्णदेव के पश्चात उसका पुत्र यंशकर्ण (वि0स0) 1137 तथा उसके पुत्र गया कर्ण (वि0 स01162) में एवं उसके बाद उसका पुत्र नरसिंह देव (वि0 स01162) में उसवं उसके बाद उसका पुत्र नरसिंह देव (वि0 स0 1208) और उसके पश्चात वि0 स0 1236 में उसका भाई जयसिंह देवराज गद्दी पर बैठा । वि0 स0 1238 का एक शिलालेख प्राप्त हुआ। जिसमें अजय सिंह के पुत्र अजय सिंह का नाम आया हैं वि0 स0 1238 के पश्चात कोई लेख इन राजाओं के नहीं मिलते है चन्देलों की राज्य सत्ता बुन्देलखण्ड में लगभग 300 वर्षो तक रही। प्रारम्भ में ये चन्देल प्रतिहारों के सामन्त थे। इधर राष्ट्र कूटों के उदय से सम्पूर्ण देश में राजनैतिक उथल–पुथल प्रारंम्भ हो गई थी। राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति के संबन्ध में डॉ0 फलांट के विचार था कि राष्ट्र कूट वास्तव में उत्तर के राठौर के वंशज थे। राघनपुर के लेख में इसवंश के गोबिन्द यदुवंशी कृष्ण से की गई है।

"यसिमन्सर्व गुणाश्रये क्षितिदवौं श्री राष्ट्र कूटान्वयों
जाते यादव वंशवन्मधुरि पावासीदलहय परैः।।

राधनपुरताम्रपत्र

चन्देल राजा धंगदेव के खजुराहों अभिलेख[1] से ज्ञात होता है कि वि0 स0 1011 के बाद ही उसका स्वतंत्र शासन उस क्षेत्र पर स्थापित हो गया था। जो देश चन्देल लोागों के अधिकार में रहा। वह धसान नदी के पूर्व में और विन्ध्याचल पर्वत के उत्तर और पश्चिम मे था। यह उत्तर में यमुना नही तक फैला था। और दक्षिण में केन नदी के उदग्म स्था न तक फैला था। केन नदी इस प्रदेश के बीच में बहती है। महोबा तथा खजुराहों इसके पश्चिम में कांलिजर तथ अजयगढ़ इसके पूर्व में है।

---

(1) बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास,–गोरेलाल तिवारी पृष्ठ 12

इस प्रदेश में बाँदा हमीरपुर जिले तथा चरखारी छतरपुर विजावर, जैतपुर, अजयगढ़ और पन्ना की रिसायतें थी। चन्देल राजाओं ने अपनी उन्नंति के दिनों में इस प्रान्त की सीमा पश्चिम में बेतवा नदी तक बहा ली थी।[1]

वि0 स0 857 से 1477 तक चन्देलों का राज्य का कोई वर्णन या शिलालेख आदि नहीं मिलता है। इससे यह स्पष्ट है नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही चन्देलों ने अपने राज्य की नीबें डाली और उसका सूत्रपात नन्नुक ने किया जो पहले प्रतिहारों के सामान्त थे इसी नन्हुक को बुन्देलखण्ड का संस्थापक माना जाता हैं। नामदेव प्रतिहार राजा की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी सभभद्र ने राज्य सभाला। परन्तु वह उसका निर्वाह करने में असमर्थ रहा और इसी कारण नन्नुक के बाद उसका पुत्र बाकपति शासक बना। पुत्र जयशक्ति या जेजा शासक बना कहा जाता हैं कि इसी के नाम पर इस क्षेत्र का नाम पर जैंजाक मुक्ति यां जेजाभुक्ति पड़ा। जयशक्ति प्रतापी राजा था और इसने अपने राज्य को ठोस आधार प्रदान करते हुये अपनी सीमाओंका विस्तार किया। उसके तत्पश्चात उसके पुत्र राहिल को उत्तराधिकार मिला राहिल ने (890 से 910) चन्देल शक्ति को संगठित किया। इसने राहिला नामक ग्राम बसाया जिसमें एक सुन्दर मंदिर भी बनवाया जो कि आज भी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में महोबा से दो मील दूर स्थित है तथा अपने प्राचीन वैभव का उदघोष कर रहा है

राहिल के बाद उसके पुत्र हर्षदेव (910– 930) ने राज्य सत्ता सम्हाली और चन्देल शक्ति और मजबूत किया। इसने कन्नौज के राजा क्षितिपाल (महीपाल) पर आक्रमण किया परन्तु विजय श्री कावरण ना कर सका और उसकी आधीनता स्वीकार ली।[3] इसके पश्चात हर्ष देव के प्रतिहारों की ग्रह कलह में दखल देकर महिपाल को गद्दी पर बैठाने में सहायता की और चन्देल वंश की प्रतिष्ठा बढ़ाई [4]

---

(1) बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास –गोरेलाल तिवारी पृष्ठ 41–52

(2)बुन्देलखण्ड का पुरातत्व –डॉ0 एस0 डी0 द्विवेदी पृष्ठ 16

(3)बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास –गोरेलाल तिवारी पृष्ठ 82

(4) चन्देलाज आफ जैजाकभुक्ति –आर0 के दीक्षित पृष्ठ 32– 36

बुन्देलखण्ड के संक्षिप्त इतिहास में स्पष्ट रूप से वर्णित हैं कि– हर्षदेव के पश्चात यशोवर्मन राज्य का उत्तराधिकारी बना। खजुराहो शिलालेख में वर्णित हैं कि इसने अपने पराक्रम से गौड खस कौशल कश्मीर, कन्नौज., मालवा चेदि, कुरू, गुर्जर, आदि देशो को विजय करके कालिंजर के कलाचुरियों को हराकर कांलिजर पर अपना अधिकार कर लिया। इसने कन्नौज के राजा को ही वहाँ से एक विष्णु प्रतिमा लाया। यशोबर्म्मन के पश्चात उसका पुत्र धंगदेव गद्दी पर बैठा। खजुराहो शिलालेख के अनुसार यह विक्रम संवत 1056 में मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसने शिवजी का एक विशाल मंदिर बनवायाथा। यह बड़ा प्रतापी राजा था। भटिंडा के राजा जयपाल पर जब गजनी के मुसलमान बादशाह सुबुक्तगीन ने आक्रमण किया जब उसने अपनी सहायता के लिए भारतवर्ष के कई क्षत्रिय राजाओं को सहायता के लिए बुलवाया था। उस समय धंगदेव भी अपनी विशाल सेना को लेकर उसकी सहायता को गया था। राजा धंगदेव ने आस–पास के कई राज्यों को जीतकर अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया था। इसका राज्य उत्तर में यमुना पूर्व मेंकाशी पश्चिम में बेतवा तथा दक्षिण में केन नदी के उदगम के पास तक पहुँच गया था। इसके राज्य का विस्तार 120 मील लम्बा व 100 मील चौड़ा हो गया था।

धंगदेव के पश्चात उसके पुत्र गंडदेव के उत्तराधिकार प्राप्त किया हुआ (वि0 स0 1056) यह भी अत्यन्त पराक्रमी राजा था। वि0 स0 1077 में जब कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल महमूद गजनवी की अधीनता स्वीकार की तब इस बात से क्रुद्ध होकर राजा धंगदेव ने कन्नौज पर चढ़ाई करके पुनः उसे अपने अधिकार में लेकर वापिस चला आया था। इस समाचार के सुनते ही महमूद गजनवी ने वि0 स0 1078 में पुनः चढ़ाई की इस बार वह सीधा कालिंजर की ओर गया जिसका धंगदेव ने बड़ी वीरता के साथ विरोध किया और परिणाम स्वरूप महमूद गजनवी को वापिस लौटना पड़ा। [1] डॉ0 एस0 डी0 त्रिवेदी ने अपनी पुस्तक बुन्देलखण्ड का पुरातत्व में तवकात ऐ अकबरी अनुवाद पृष्ठ 12 का सन्दर्भ देते हुये लिखते है कि सन् 1023 ई0 में महमूद ने कालिंजर फतेह किया और प्रभूत धन लूट कर चला गया महमूद के जाने के पश्चात बुन्देलखण्ड की स्थिति काफी खराब हो गई थी।

---

(1) डॉ0 गोरलाल तिवारी –बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ 45,46

इधर गंडदेव के पश्चात विद्याधर राज्य का उत्तराधिकारी बना जिसका बहुत दिनों तक कन्नौज के राजा त्रिलोचन पाल से युद्ध चला। विद्याधर के पश्चात उसके पुत्र विजयपाल को (वि0 सं0 1097) राज सत्ता प्राप्त हुई। वि0 सं0 1107 में जयपाल के देववर्मा देव राज्य के राजा हुये। वि0 स0 1120 में देववर्मा के पुत्र कीर्ति वर्मा ने सत्ता सम्हाली। इसका राज्य (1060—1100) ई0 तक रहा। यह बड़ा प्रतापी राजा था। महोवा के पास स्थित कीर्ति सागर ताल इसी का बनवाया हुआ है। इसके नाम के स्वर्ण के सिक्के भी प्राप्त हुये है। जिन पर श्रीमत कीर्तिवर्मन देव अंकित है। चेदि देश के कलाचुरि राजा कर्ण देव को कीर्ति वर्मा ने हरा दिया था। कीर्ति वर्मा के पश्चात उसका पुत्र हलक्षण अथवा सलक्षण गद्दी पर आसीन हुआ। इसने भी अपने नाम के स्वर्ण के सिक्के तथा ताँबे के सिक्के चलावाये। हलक्षण के बाद जयवर्मन राजगद्दी पर बैठा (वि0 सं0 1167) इसने भी अपने नाम के सिक्के चलवाये। इसके नाम के कुछ सिक्के बिट्रिश म्यूजियम इग्लैंड में सुरक्षित हैं। जयवर्मन के बाद उसके छोटे भाई हलक्षण द्वितीय (वि0 सं0 1177) गद्दी पर बैठा इसने दो वर्षो तक राज्य किया इसने भी अपने नाम के ताँबें के सिक्के चलवाये। इसने कन्नौज के परिहार राजा से मैत्रीकर ली थी। इसके बाद मदनवर्मा का राज्य प्रारम्भ हुआ इसने लगभग (1125 से 63) ई0 के मध्य महोबा के निकट मदन सागर नामक तालाब व दो मंदिरों का निर्माण किया। इसने गुर्जर प्रान्त के राजा को शिकस्त दी थी इसने जो नगर बसाया वह मदनपुर के नाम से जाना जाता है। मदन वर्मा के बहुत सारे शिलालेख प्राप्त हैं। कालिंजर, खजुराहों, हरिद्वार उनमें प्रमुख है। मदन वर्मा के पश्चात कीर्ति वर्मा गद्दी पर बैठा इसका राज्य कारण शायद एक ही वर्ष का रहा हो, तत्पश्चात परमार्दिदेव या परिमाल राज गद्दी पर बैठें। यह बड़े पराक्रमी तथा विचार वान व्यक्ति थे। आल्हा महाकाव्य के अनुसार उसकी राजधानी महोबाथी। उसके यहाँ आल्हा नाम का एक प्रसिद्ध योद्धा था जो कि दशरथ का पुत्र था तथा वह बनाफर जाति का था कहा जाता है कि आल्हा ने अपनी अल्प अवस्था में ही सुल्तान महमूद के विरूद्ध पृथ्वीराज चौहान आदि को सहयोग देकर विजय श्री दिलवायी थी। चौहान और परिमाल युद्ध वि0 स0 1239 में हुआ इस युद्ध में परमाल की हार हुई और धसान नदी के पश्चिम का भाग पृथ्वी राज चौहान के अधिकार मे चला गया। इसके बाद वि0 स0 1260 में कुतुबुद्दीन ऐवक ने चन्देल राज्य पर चढ़ाई कर दी। उसने चन्देल राजा परिमाल को किले कालिंजर किले में घेरा जहाँ पर परिमाल के मंत्री ने ही उसे मौत के घाट उतार दिया। तथा कुतुबुद्दीन ऐवक ने कालिंजर किले पर

अधिकार करके परिमाल के मंत्री को मौत की नींद सुला दिया और फिर मंदिरों को गिरवा कर मस्जिदें बनवाने का कार्य प्रारम्भ किया। परन्तु यह ज्यादा दिनों तक ना हो सका क्योंकि परिमाल के पुत्र त्रलौकयवर्मन ने कालिंजर किले को कुतुबुद्दीन ऐवक के अधिकार से अपने अधिकार में ले लिया था वि0 स0 1269 का एक शिलालेख अजयगढ़ में मिला है। वि0 स0 1290 में दिल्ली के बादशाह शमसुद्दीन अलतमश ने बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई की तथा कालिंजर किले से सवाकरोड़ स्वर्ण मुद्राये लूट ले गया। ककरेडी ग्राम (कालिंजर से पूर्व 50 मील पर स्थित) से प्राप्त वि0 सं0 1232/1252 एवं 1269 के शिलालेखो से ऐसा प्रतीत होता है कि त्रेलोकयवर्मन ने कलाचुरि वंश के अन्तिम शासक राजा विजय सिंह को परास्त कर नर्मदा नदी के उत्तरीय भाग को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। त्रेलोकय वर्मन के पश्चात उसका पुत्र वीरवर्मन (प्रथम) (वि0 सं01297) में गद्दी पर बैठा। इसने नलपुरा के राजा गोबिन्द और मधुबनी के राजा गोपाल तथा गोपदगिरि (ग्वालियर) के राज्य हरिदेव से युद्ध किया। वीरवर्मन के पश्चात उसके पुत्र भोजवर्मन ने (वि0 सं01309) गद्दी सम्हाली। इसके समय में भी कालिंजर दुर्ग चन्देलों के अधीन था। भोजवर्मन के पश्चात वीरवर्मन (द्वितीय) (वीरनृय) (वि0 सं0 1387) में गद्दी पर बैठा। शशांक भूप के पश्चात (वि0 सं0) 1403 में भिलमा देवराजा बना। इस बात की पुष्टि अजयगढ़ के समीप मिले लेख से होती है। भिलमा देव के बाद परमार्दि देव (द्वितीय) (वि0 स01447 में गद्दी पर बैठा। परमार्दिदेव (द्वितीय) के लगभग 100 वर्षो बाद कीरत सिंह का राज्य काल प्रांरम्भ हुआ। इस समय तक कार्लिजंर चंदेलों के ही पास था। सन 1545 में कीरत सिंह शेरशाह के साथ लड़ा और उसके एक सैनिक (शेरशाह) द्वारा मारा गया। दुर्गावती इसी की कन्या थी जो गढ़मडंला के राजा दलपत शाह को व्याही थी [1]

वि0 स0 1600 में जिस समय शेरशाह ने कालिंजर पर चढ़ाई की थी उस समय यहाँ पर बुन्देलों का राज्य था और औरछा के राजा भारती चन्द्र ने अपने भाई मधुकर शाह को भेजा था परन्तु कुछ लाभ नही हुआ और किला मुसलमानों के कब्जे में चला गया। ई0 सन 1530 में बाबर ने चन्देरी पर आक्रमण किया था। बाद के मुगल सम्राटों ने

---

(1)जालौन जनपद के मध्य कालीन भवनों का ऐति0 मूल्यां0 डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृष्ठ16

आक्रमण करके बुन्देल खण्ड के कुछ भागो का अपने कब्जें में कर लिया था। गुजरात के शासक बहादुर शाह ने मालवा को अपने अधिकार मे ले लिया था। परन्तु हुमायुँ ने कालिंजर पर आक्रमण किया था किन्तु कालिंजर के चन्देल राजाने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस कारण हुमायूँ ने कालिंजर को नही घेरा। वि0 स0 1632 में मालवा का शासक बाज बहादुर था जिसे हुमायूँ के पुत्र अकबर ने हराकर मालवा पर अपना अधिकार कर लिया था। इस समय बुदेलखण्ड का पश्चिमी भाग मालवा के अन्तर्गत ही समझा जाता था। इस समय बुन्देलखण्ड के पूर्व में बहोलो का राज्य बढ़ रहा था। तथा कांलिजर बछौगढ दोनों ही बहोल राजा रामचन्द्र ने कालिंजर एवं उसके आस–पास का बहुत सा क्षेत्र अकबर को दे दिया था। कालिंजर का किला लगभग 120 वर्षो तक मुगलों के हाथ रहा। रामचन्द्र से कालिंजर का किला लेने पर बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग अकबर के अधीन हो गया था पूर्व में कालिंजर पश्चिम में धसान उत्तर की और कालपी का आस पास का क्षेत्र व दक्षिण में ओरछा तक मुगलों का राज्य हो गया था। अकबर की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र जहाँगीर तख्त पर बैठा और जहाँगीर के बाद वि0 सं0 1648 में शाहजहाँ बादशाह बना। इसी समय ओरछे के राजा जुझारसिंह बुन्देले ने स्वतंत्र होने का प्रयास किया किन्तु शाहजहाँ ने उसे हरा दिया। शाहजहाँ के पुत्रों में औरंगजेब युद्ध में सफल हुआ। औरंगजेब के समय में बुन्देलखण्ड में बुन्देले और महाराष्ट्र में मराठे बढ़े। गौड़ लोगों ने बुन्दलखण्ड के कुछ भागों पर शासन किया। ई0 स0 1515 में संग्राम सिंह गद्दी पर बैठा तथा बुन्देलखण्ड के कुछ भागों पर शासन किया। ई0 सन 1531 में रूद्रप्रताप ने अपनी राजधानी गढकुण्डार से ओरछा बदली। ओरछा वंशवृक्ष में वीरसिंह देव (1606, 1626) ई0 बड़ा प्रतापी राजा हुआ वि0 स0 1682 में महावत खॉ की कैद से छुड़ाने के लिए अपने पुत्र मंगतराय को भेजा। जिससे जहाँगीर इनसे बहुत खुश हुआ। इन्होने अपने बाहुबल से अपनी रियासत की आमदनी 2 करोड़ रूपया कर ली थी। इनकी रियासत में 81 परगने तथा 125000 ग्राम थे। इन्होने औरछा को पुनः बसाया और उसका नाम जहाँगीर पुर रखा और बाद में वहीं एक जहाँगीर महल बनवाया इन्होने बीरपुर ग्राम बसाया तथा वीरसागर नाम का तालाब भी खुदवाया । कहा जाता हैं कि इन्होने मथुरा में 81 मन स्वर्ण का दान किया था। यह दान वि0 स0 1681 में किया गया था। महाराज वीरसिंह के सलाहकार कृपाराम और कन्हरदास ब्राहम्ण थे। कृपाराम सेनापति तथा कन्हरदास मंत्री थे जो कि महाराज चम्पतराय के अंतरम सहयोगी थे।

चम्पतराय के पिता ओरछा के संस्थापक राजा रूद्रप्रताप के तृतीय पुत्र उदयजीत के पौत्र भागवत राय थे। राजा रूद्रप्रताप की मृत्यु के पश्चात महारानी मेहरबान अपने पुत्र उदयजीत के साथ ओरछा छोड़कर कटेरा चली गई थी। उदयजीत ने कटेरा के पास महेबा नाम एक गाँव बसाया। वही तीन पीढ़ियों तक साधारण अवस्था में उनके वंशज रहते रहे। चम्पतराय इसी वंश के एक महावीर थे जिन्होने काफी प्रतिष्ठा पायी थे जैसे ही ये युवा हुये महाराज वीरसिंह देव बुन्देला की सेवा में चले आये।

अकबर के विरूद्ध युद्ध मेंचम्पतराय ने विशेष सहयोग दिया। चम्पतराय ने महाराज वीरसिंह के सभी युद्धों में भरपूर सहयोग दिया वीरसिंह बुन्देला का मुगलोंके अधीन रहना चम्पतराय का कभी अच्छा नहीं लगा। इसलिए जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात वीरसिंह ने शाहजहाँ को कर देना बन्द करा दिया और ओरछा राज्य स्वंतत्र घोषित कर दिया। शाहजहाँ को यह बात खटक गई और उसने बाकी खाँ को बुन्देलो को दबाने के लिए भेजा चम्पतराय ने वीरसिंह को पूर्ण सहयोग दिया और समूचा बुन्देलखण्ड स्वतंत्र प्रायः हो गया। बुन्देलखण्ड के छोटे बड़े सभी जागीर दारों के स्वाभिमान को जगाकर चम्पतराय ने बुन्देलखण्ड में अजेय सेना खड़ी कर दी थी जिसके कारण बाकी खाँ वापिस लौटना पड़ा। इससे क्रोधित शाहजहाँ ने ओरछे पर आक्रमण कर दिया। परन्तु चम्पतराय के नेतृत्व में बुन्देलो ने भारत के शाहंशाह शाहजहाँ को भागने पर मजबूर कर दिया। इसी प्रकार तीन बार शाहजहॉ को चम्बतराय के साथ युद्ध में मुँह की खानी पड़ी तब शाहजहॉ को वीरसिंह के साथ संधि का प्रस्ताव करना पड़ा। इसी समय वीरसिंह महाराज की मृत्यु हो गयी तथा इतनी कम अवधि में तीन युद्ध लड़ने में बुदेलों को काफी आर्थिक क्षति हो गई थी अतः संधि करना उचित जानकर संधि कर ली गई। चम्पत राय की वीरता की भूरि–भूरि प्रशंसा की गई। ओरछा राज्य को स्वतंत्र राज्य की मान्यता मिल गई। [1] परन्तु ओरछा राज्य की स्वतन्त्रता मुगल सल्तनत की आंख की किरकिरी बना रहा।

---

(1) शक्ति पुत्र छत्रसाल– सोमदत्त त्रिपाठी पथिक पृष्ठ 62– 63

4 अक्टूबर 1635 ई0 को मुगलों ने ओरछा पीर अधिकार करके चंदेरी के राजा देवीसिंह को वहॉ का राजा घोषित कर दिया और जुझार सिंह को अपने परिवार सहित धामोनी और बाद ये चौरागढ़ किले में शरण ली। [1]

जुझार सिंह के राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया और वहॉ पर शासन के लिए शाही कर्मचारी नियुक्त कर दिये गये। [2] इतिहास इस बात का साक्षी हैं कि औरंगजेब चम्पतराय से द्वेष रखता था इसी कारण सदैव चम्पतराय मुगलों से लड़ते रहे थे उसी समय ज्येष्ठ शुकरन तीज शुकवार को सं0 1706 में महारानी सारंधा ने विलपि नामक मोर पहाड़ी के जंगल में कटेरा नामक ग्राम से तीन कांस दूरी पर पकर कचनाये नामक स्थान पर छत्रसाल को जन्म दिया। अन्त में चम्पतराय व महारानी ने अपनी ही कटारों से आत्महत्या कर ली। उस समय छत्रसाल बुखार से तपते हुये अपनी बहिन के घर सहरा गये वहाँ उनकी उपेक्षा हुई इससे वे वापिस लौट आये। छत्रसाल के जन्म के विषय में निम्न दोहा प्रचिलित है।

'संवत सत्रह के अरू छै, सुभ ज्येष्ठ सुदितिथि तीज बखानी
दिन शुक्रवार हैं, शिव के नक्षत्र में पुत्र जन्यो राय चम्पत रानी।

छत्रसाल का बाल्यकाल बहुत ही अभावों में बीता, बाल्यकाल से ही उन्हें मुगलों से लोहा लेने मे उनहे बड़ा आनन्द आता था। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वे अपने स्वर्गवासी पिता चम्पतराय की मृत्यु काबदला मुगलों से लेकर पुनः स्वतंत्र राज्य स्थापित करे।

जब छत्रसाल 80 वर्ष के थे परन्तु फिर भी जम कर लोहा लिया और बंगश खाँ को मुँह की खानी पड़ी जनवरी 1726 में दुबारा बँगश खॉ ने फिर प्रचण्ड आक्रमण किया तथा छत्रसाल को जैतपुरकिले में घेर कर आत्म समर्पण हेतु बाध्य कियां तब छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव को सहायता हेतु आंमत्रित किया । जो कि इस प्रकार से है

"जो गति भई ग्राह गजेन्द्र की, सो गति भई है आय।
बाजी जात बुन्देल की राखैं , बाजी राय।"

---

(1) डॉ हरी मोहन पुरवार जालौन जनपद के मध्यकालीन प्रमुख भवनों ऐतिहासिक मूल्याकंनपृष्ठ 18

(2) बुन्देलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल बुन्देला – डॉ0 भगवान दास गुप्ता पृष्ठ 2

पेशवा बाजी राव तुरन्त बुन्देलखण्ड आये। और महाराज छत्रसाल को मुक्त कराया उनका 81 वर्ष का दीर्घ जीवन मुगल सत्ता को बुन्देलखण्ड से पूर्णतः विनष्ट करने के पश्चात ही सन 1731 में समाप्त हो गया।

कृपाण के सच्चे उपासक वीर छत्रसाल बुन्देला की गणना, बुन्देलखण्ड में देवता स्वरूप की जाती हैं उनक न्यायप्रिय शासनं, धार्मिक सहिष्णुता
आदि गुणों की सदैव स्मृति की जाती है। महाराज छत्रसाल के राज्य की सीमाओं के विषय में प्रचलित दोहा काफी प्रामाणिक लगता है।

"इत जमुना उत नर्मदा,इत चम्बल उत टोंस।
छत्रसाल सौ लरन की , रही ना काहूँ हौंस।। [1]

उनकी अदभुत वीरता को भूषण कवि की ये पक्तियाँ दृष्टव्य है

"शिवा को सराहौ या सराहौ या सराहौं छत्रसाल को।

अस्तु महाराज छत्रसाल तथा मरहणें की मित्रता से बुन्देलखण्ड पर मरहठो का अधिकार परिलक्षित होने लगा। सन 1781 के आस–पास दिल्ली के सुल्तान ने पेशवा को एक सनद लिख कर दी जिससे सारे भारत वर्ष में तहलका मचादिया और इसी से बुन्देलखण्ड काशासक बनने का अधिकार मिल गया। बसई की संधि के अनुसार सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार में आ गया सं0 1801 में 1 अक्टूबर को बॉदा जनपद के शासक शमसेर बहादुर की सेना तथा अग्रेजों की सेना में केन नदी के किनारे युद्ध हुआ जिसमें शमशेर बहादुर हार गये और सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

---

(1) बुन्देलखण्ड दर्शन– मोती लाल त्रिपाठी अशान्त पृष्ठ 77 – 78

तृतीय अध्याय

भोजन एवं वस्त्राभूषण

"शरीर माध्यम खलु धर्म, साधनम"

जितने भी प्रकार के धर्म है। उनकी साधना का माध्यम शरीर है। अतः शरीर को सुरक्षित रखना प्रथम कर्तव्य है। प्रकृति और भौगोलिक स्थिति के अनुसार खान, पान, रहन, सहन, पहनना, ओढ़ना आदि का निर्धारण होता है।

" स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ दिमाग का निमार्ण होता है" हमारी सस्कृति अति प्राचीन है, सस्कृति की आधार–शिला "संस्कार है, बच्चों में प्रारम्भ से ही ऐसे संस्कार डाल दिये जाते है। जिसमे मनुष्य स्वस्थ रहते हुये अपने व्यक्तित्व विकास एंव समाज के विकास हेतु अग्रसरित होता है। "बगैर सपरें खाये से पाप परत "

अतः सर्व प्रथम स्नान करना आवश्यक है, क्योंकि बुदेलखण्ड की जलवायु गर्म है। भौगोलिक स्थितियाँ पहाड़ी है। अतः यहाँ के खान–पान, रहन, सहन, पहनने ओढ़ने में गर्मी से बचाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। गर्म प्रदेश होने के कारण यहाँ ऐसी दिनचर्या बनाई गयी है ताकि व्यक्ति स्वस्थ रहे। यहाँ की भाषा में युग्म शब्द अधिक मिलते है। जिनका सीधा सम्बन्ध दिनचर्या से है। यथा स्नान–ध्यान। अतः स्नान के बाद ध्यान किया जाता है। भोजन–भजन, गर्म जलवायु होने के कारण भोजन करके एक दम से परिश्रम नहीं करना चाहिये अतः भोजन के बाद भजन करना चाहिये भोजन के बाद शयन नहीं। क्योंकि "दिन सोना जहर है" प्रकृति ने जलवायु की द्दष्टि से स्थानीय उत्पाद भी निर्धारित किये है। पूरे बुन्देलखण्ड में महुआ और बेर के वृक्ष सर्वाधिक है। अतः यहाँ के मनुष्य भोजन में महुआ और बेर सम्मिलित है। यहाँ की भूमि पथरीली होने के कारण तथा सिंचाई के अल्प साधन होने के कारण महुआ मुख्य भोजन का आधार था। बुन्देलखण्ड का विस्तृत भू भाग गौंडवाने (जिसे लोक भाषा में गुडानों कहा जाता है) में महुआ, बेर, गुलगुच (पका हुआ महुये का फल) पूरे गौंडवाने में पाया जाता है। यह तीनो ही गौंडवाने की पहचान बन गये है। यथा "महुआ मेवा बेर कलेवा, गुलगुंच बडी मिठाई।

जो इतनी चीजें चाहो तो गुडानै करो सगांई"

महुआ यहाँ की मेवा है, तो बेर कलेऊ (नाश्ता) हैं तथा गुलगुच मिष्ठान हैं सजन सम्बन्धी आने पर इन तीनों पदार्थो से ही भिन्न–भिन्न भोजन और पकवान तैयार किये जाते हैं। बुन्देलखण्ड की

नायिका जब अपने प्रियतम के आने का सन्देश सुनती हैं, तब वह इन प्राप्य पदार्थो को तैयार कर रख लेती है।

"मउआ मोंरे भुजें धरे हैं, लटा घरे है कूट।

वह मछुआ भून कर रख लेती हैं तथा भुने हुये महुये को कूट कर रख लेती भुने कुटे हुये महुये में गरी, चिरोंजी, किसमिश आदि मिला कर छोटी–2 रोटियॉ बनाई जाती हैं जिन्हें (कुचइया) कहा जाता हैं, उस भोज्य पदार्थ को लटा कहा जाता हैं। जो विशिष्ट खाद्य पदार्थ है बुन्देलखण्ड में व्यजनों की भरमार है। त्यौहारों पर्वो में पर अनेकानेक प्रकार के व्यजंन बनाने की परंपरा हैं विशेष त्यौहार पर विशेष प्रकार के व्यंजन बनाये जाते है किन्तु सामान्य दिनों में मोटा अनाज या चोकर युक्त अनाज से बने व्यंजन अधिक पसन्द किये जाते है जो स्वास्थ्य के लिए अति उत्तम है। नाश्ते में ठुवरी, महेरी खाई जाती है भोजन में रोटी दाल चटनी, तथा हरी सब्जियॉ, कमलनाल, घुइयॉ के पत्ते सैजना की फलिया, जिमी कन्द, सैजना की जड़े पालक, बथुआ, मैथी, इत्यादि जो स्थानीय सब्जियॉ है अधिक उपयोग में लाती हैं सत्तू एवं मूंग , ज्वार, रौसा, खड़ा ही उबाल कर उसमें हरी धनियॉ, हरी मिर्च , खटाई, मिर्च पीस कर चटनी मिलायी जाती है। जिसे कोंहरी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त मीडां थोपा, हिंग घोरा, विढई, ठुबरी, पूड़ी, कचौड़ी, पुआ , गुलगुला कढ़ी चावल, हलुआ– मूंग की दाल का , चने की दाल का , उड़द की दाल का , सूजी का, आटे का, बड़ा, मगौड़ा, लडडू एहरषे खोये की बनी मिठाइयॉ जलेवी इत्यादि प्रयोग में लाये जाते है जिनके साक्ष्य लोकगीत और लौकोक्तियॉ कहावतें है यथा

"मोरे सैया रिसाने बखरी में,
वे तो मगन भये ठुवरी में"

इसके लोकगीत में मुरार (कमल नाल) कमल ककड़ी का उल्लेख हैं यथा–

"पानूं कौ रूजगार ढिमर तोरें पानूं कौ
ओई तला की मारी मछरिया,
सो ओई खोदे मुरार, ढिमर तोरे।"

अन्य एक स्थान पर महेरी की लोक प्रियता इस प्रकार दिखायी पड़ती है

"मैने रॉंधी अरहर की दार

कि मोरी गुइयाँ सैया जू रिसाने महेरी खौ।।

बुन्देलखण्ड में दूध, दही, घी इन के अलग–अलग तथा इनके सम्मिश्रण से अनेक प्रकार के व्यजंन बनाने की परंपरा है। यथा– ऋणं कृत्वा ,.घृतम बिवेत।।

''विष्णुदास कृत ''महाभारत' में बुन्देलखण्ड को ज्यौंनार के वर्णन से सिद्ध है कि उसमें छः पेय और अठारह भक्ष्य होते थे (छः रस अठारह भक्ष्य पुजैहौ। बरा, बरी, लपसी, कसार, सेव, लड्डू, मोती चूर के लड्डू, घेवर (घी मैदा चीनी से बनी मिठाई) बाबर (?) लुचई (पूड़ी) खाजे, फैनी, गूझा, दहोरी (दही से बनी वस्तु) बेढंई (उर्द की दाल और चावल आटे से बना पकवान) मांडे, रोटी, कढ़ी, पकौड़ी, समोसा, पेरा (रंगों और कलाकारी से सज्जित गूझा) पछयावर (दही छांछ का मधुर पेय जो भोजन के अंत में खाया जाता है) सिखरिन (श्रीखण्ड या उससे मिलता जुलता चीनी, गरी केसर आदि के योग से बना दही का पेय) मठा (जीरा नमक मिश्रित हींग की बघार से सुबासित) बासोंघी (खोवा दूध आदि मिश्रित करके सुगन्धित दूध का पेय अनेक प्रकार का दूध आम तथा इमली का पना (आम और इमली के गूदे को जल में घोरकर बनाया गया मीठा और नमकीन पेय)

झपट अटरिया चढ गये अमानजू बिरियॉ दई लगाय

अचार (अथानौ) मुख में चावौं अमानजू मन में गये मुस्काय

वे तो हरस करै ररियॉ, जनक पुर की सखियॉ (पान ताम्बूल तमोर) सामान्यतः प्रचिलित थे''[1]

सामान्य दिनों में गकरियॉ लोक प्रिय भोजन है। गकरियॉ (छोटी–मोटी पनपथू, हथपवू रोटियॉ जो बिना चकला, बेलन की सहायता से) हाथ से पानी की सहायता से बनायी जाती है तथा अंगारे पर सेकी जाती है जिनको घी गुड़ के साथ खाया जाता हैं कहावत है यदा

''खाई गकरियाँ गुर घी सें , डुकरा लग गयों जी सें ''

''खाये गकरियाँ गाये गीत, जे चले चैतुआमीत[2]

---

1)बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति –नर्मदा प्रसाद गुप्त पेज नं0 228

2)बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति –नर्मदा प्रसाद गुप्त पेज नं0 218

खाने के भी नियम है यथा–

"चैत मीठी चामरी, वैशाख मीठो मठा

जेठ मीठी डोवरी, असाठें मीठे लटा

साबुन मीठी खीर खांड, भादो मुखें चना।

कवांर मीठी कांकरी ल्बाब कोरी टोंर कें

कातिक मीठी कुदई दही डारों ओर कें

अगहन खावे जूनरी भुर्रा नीबू निचोर कें

पूस मीठी खीचरी गुर ड़ारौ फोर कें .

माघ मीठे पौडा बेर, फागुन होरा बालें

समै, समै की मीठी चीजे, सुगर खवैया खावें"

यह लोक का अनुभव है कि इन महीनों उपर्युक्त महीनों में निर्दिष्ट भोज्य पदार्थ सेवन करना स्वास्थ के लिए उत्तम है। लोक का अनुभव यह भी है किन महीनों में कौन सी खाद्य पदार्थ न खाये जायें लोक में बर्जनाएं भी है यथा

"चैतें गुड़ बैसाखें तेल, जैठें महुआ असाढ़े वेल,

सावन दूधना भादों दहीं, कवांर करेला ना कातिक मही

अधनै जीरो पूस घना, माघै मिसरी फागुन चना,

इतनी चीजे खैहै सही, मरहौ नई तो परहौ रही"[2]

बुन्देली लोक में भोजन सम्बन्धी और भी अनुभव मान्यताओं की तरह स्वीकृत हुये हैं यथा "पान पुराना घी नया, और कुलवन्ती नार [3]

ये तीनों जब पाइयें जब प्रसन्न करतार।

किस स्थित में क्या खायें यह भी लोक का अनुम्ब बताता है

"भूकें बेर अखाने पौडा,"

अन्ततः अपनी शारीरिक स्थित के अनुसार अपना मन सर्वोपरि हैं यथा

---

1)बुन्देली लोक सुभाषित– डॉ0 हरी मोहन. पुरवार पृष्ठ 48

2)उपर्युक्त वही पृ047

3)उपयुक्त वही पृष्ठ 42

"मनै सौ खावे, रूचै सो बोले"

भोजन के बाद भी क्या करैं? आहार बिहार के बारे में लोक ने चिन्तन करके अपना अनुभव बता दिया है यथा,

खाकें मूतै, सौवे बायें ता घर वैद कबहु ना जाये।।[1]

अन्न पानी , शरीर के लिए अति आवश्यक हैं इसके बिना जीवित नही रहा जा सकता है। "योगी इसके अपवाद है अन्न और जल मन को नियन्त्रित करने के कारण बनते है।

यथा

"जैसो अन्न जल खाइये तैसाई मन होय

जैसो पानी पीजिए, तैसेई बानी होय,

खाद्य पदार्थ शरीर पर भिन्न –2 तरीके से शरीर के अंग प्रत्यंगों पर भी प्रभाव डालते है यथा

"मांस खाये मॉंस बढ़ै, घी खाये खोपड़ी (बुद्धि)

दूध पीकर चल पड़ी सत्तर बरस की डोकरी"

भोजन सम्बधी वर्जना भी है यथा

चॉकर की कनी , माले की अनी,

कच्चा चावल खाना अहित कर है।

पेय पदार्थो का बुन्देलखण्ड के अंचलों में ग्रीष्म ऋतु में अधिकतर प्रयोग होता है। स्वागत शर्बत से किया जाता है। काली मिर्च पीस कर शर्बत में मिलाकर पिलाया जाता है इसका दूसरा प्रकार इलायची का शर्बत भी होता है। इसमें काली मिर्च के स्थान पर इलायची का प्रयोग किया जाता हैं तीसरे प्रकार में (काली मिर्च इलायची) दोनों को ही मिलाया जाता है।

आम का शर्बत (पना) इसमें कच्चे आम को आग में भूनकर पानी में उसका गूदा मसल–2 कर निकाल लिया जाता हैं उसमें गुड़ या चीनी या नमक आदि मिलाकर दोनों प्रकार का मीठा और नमकीन पीने का रिवाज हैं आम की तरह इमली का शर्बत मीठा और नमकीन पिया जाता है।

---

1)बुन्देली लोक सुभाषित– डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृष्ठ 48

सत्तू बुन्देलखण्ड का सर्वाधिक प्रिय भोज्य एवं पेय पदार्थ है सत्तू को जल में घोल कर मीठा नमकीन दोनों प्रकार से प्रयोग किया जाता है। छांछ (मट्ठा) को भी मीठा या नमकीन पिया जाता है मीठे लस्सी में गुड याचीनी मिलाते है। अन्यथा सादा छांछ को गुड़ के साथ पीते खाते है नमकीन छांछ को हींग जीरे से बघार देकर सुबासित कर लिया जाता है। उसमें नमक मिर्च काला नमक मिला कर पिया जाता है।

"सतुआ लगैलुचई सो प्यारौ, कलाकंद का सारौ,

दही की लस्सी में चीनी या गुड़ या राव (गुड़ का ही पदार्थ) मिलाकर पीने का प्रचलन हैं दूध तो कई प्रकार से प्रयोग मे लाया जाता हैं दूध तो बुन्देलखण्ड मे जल और वायु की तरह अनिवार्य हैं हर घर में दूध का होना अति आवश्यक है चाहे धनी मध्यम , गरीब किसी भी वर्ग का हो दूध वाले पशु अवश्य ही प्रत्येक घर में होने चाहिये भले ही वह भेड़ अथवा बकरी हो,

मांस खायें मांस बढ़े घी खायें खुपड़िया

दूध पीकर चल पड़ी सत्तर बरष की डुकरिया

दूध औषधीय गुणों से भरपूर है तथा यहाँ के भोजन का मुख्य सहायक है प्रातः नाश्ते में तथा 'ब्यारू' रात्रिकालीन भोजन मे अति आवश्यक है प्रातः कालीन नाश्ते में मनुष्य की शारीरिक स्थिति के अनुसार ठंडा , गर्म या कच्चा दूध पीने के चलन है रात्रि में भोजन के साथ या भोजन के बाद दूध पिया जाता है – यथा

"दूध ब्यारू जे करें नित उठ हर्रे खॉय

कहै घाघ सुन–भडडरी ता घर वैद ना जाय"[1]

दूध को हल्की ऑच में गर्म करके गाढ़ा कर लिया जाता है उसमें मेवा गरी, चिरौजी किसमिस छुहारे इत्यादि काट कर डाल दिये जाते है वह दूध दोपहर के खाने में ठुवरी, महेरी, दलिया इत्यादि के संग प्रयोग किया जाता है

---

1)बुन्देली लोक सुभाषित– डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृष्ठ 48

वस्त्र

"भोजन नौनों मन कये बो, उन्ना नौने सब कयें जो"

बुन्देली कहावत है, कि भोजन मन के अनुसार तथा कपड़े परिजनों मित्रों की पसन्द के पहनने चाहिये– वस्त्र तथा पहनने के ढंग को देख कर यह सहज ही अनुमान लग जाता है कि दोनों के ऊपर प्रकृति तथा जलवायु का स्पष्ट प्रभाव है।

"पथरीलो बुन्देली प्रदेश

दरपीलो बुन्देली लोक

"ठसकीली बुन्देली चेतना को[1] ....

पथरीले बुन्देली प्रदेश में वृक्ष तथा कंटीली झाड़ियॉ भी बहुतायत है अतः अधो वस्त्र सामान्य से ऊँचे ही पहिनने की परिपाटी है ग्रीष्म जलवायु होने के कारण यहां पर ढीले वस्त्र पहनने का रिवाज है [1]

"पथरीलो पिया तेरो देश" ....".एक दिन बोली नार पिया सें गाँव तुम्हारो जरयारो"

स्त्री पुरूष बच्चे क्रमशः लहँगा , धोती, घुटन्ना ही पहिनते है। स्त्रियाँ अधो वस्त्रों में लंहगा या बॉड पहिनती हैं जो कि कुछ ऊँचे होते है जिसमें पेरौं के आभूषण पैजना या लच्छा, बाँके दिखती रहें इसके दो कारण होते है एक तो पत्थर वेतरतीव होते है दूसरे कँटीली झाडियॉ तथा पैरों के आभूषण में लहंगा बिंधता रहता है जिससे उसकी किनारी छिन (फट) जाती है। श्रम करते समय लंहगे मे कॉच लगाने की भी रीति है। ताकि लहॅगा, चलने मे उठने बैठने में बार–2 सम्भालना न पड़े।

पुरूष वर्ग भी धोती उँची ही बाँधता है जो घुटनों के समीप (पिंडरी) से होती है। धोती पहिनने का ढंग ऐसा होता है, कि धोती चिपकी रहे, फूली न रहे तथा शरीर के साथ कसी रहे तथा ताकि कार्य करते समय धोती किसी प्रकार का व्यवधान न उत्पन्न करे।[2]

बच्चे "घुटन्ना पहिनते है जो घुटने तक लम्बा होता है इसलिये लोक उसे "घुटन्ना" नाम से सम्बोधित करता है

---

1)" नर्मदा प्रसाद गुप्त बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास , प्रारम्भिक पृष्ठ–

(2) बुन्देली लोक जीवन में प्रचलित वस्त्र– दैनिक कर्मयूग प्रकाश दिनांक 3–4–2002 पृष्ठ 3

स्त्रियों के वस्त्रों में लहँगा, घांघरा, बांड, परदनिया, परदानी, (धोती, साड़ी) पहने जाते है जिनके साक्ष्य लोकगीत है यथा

1–"सैयां लेदे परदनियॉ मै तो से बिरजी

x x x x x x x x x x x x x x x x

2–" पहिरे फिरै लाल परदनियॉ पंछी री सी धनिया

x x x x x x x x x x x x x x x x

3–"नन्द को लाला रूप निराला भेस धरे मनिहारी कौ

दक्खिन बारी सारी पैरे गोटा जड़ौ किनारी को

x x x x x x x x x x x x x x x x

लहँगा या घाघरा के सम्बन्ध में लोक गीत इस प्रकार हैं यथा

"मोरि बारह वरष की वैस भौजाई मेरी

सैया जू मचल रये गौने को"

मोय पहिर न आवै घांघरौ

और बाँध न पाऊ सरफूंद

x x x x x x x x x x x x x x x x

लहँगा (घॉघरा) के ऊपर पहनने वाले वस्त्रों में अंगिया चोली पोलका ही मुख्य थे स्थानीय प्रभावों के कारण नामों में परिवर्तन हो सकता है लोक गीतों में अंगिया या चोली कावर्णन मिलता है यथा "मोय पहिर न आवे चोली रे, और लगा न पॉऊ गोदाम (बटन) चोली बटनदार अथवा तनीदार दोनों ही प्रकार की होती है यथा

1–"काऊ दीन्हो लहॅगा , काऊ दीन्हो लुगरा

सौ अगिया को ठिनक परी

x x x x x x x x x x x x x x x x

लौहरी भौजइया ने अगिया निकारी

सो बाउ मे डेढ तनी

2–जी में लिखे पपीरा मोरे ऐसी अगिया तोरे

सिर से ओढ़ने वाले वस्त्रों मे चुनरी , चुनरिया, लुगरा, पिछोरा आदि का चलन था जिसके साथ यह लोकगीत है

1–"मोरी चुनरी के छोर, मोरी चुनरी के छोर

राजा करौंदन में बींद गये,

x x x x x x x x x x x x x x x x

2–मेहा में भीगे चुनरिया हो बालमा

x x x x x x x x x x x x x x x x

3–करत चुनरिया को मोल बजजवा ने कैसौ जिया मोह लयो

x x x x x x x x x x x x x x x x

4–मोरी लाली चुनरिया की कोर कारी

पिया पनियै न जैहो नजर लागी

x x x x x x x x x x x x x x x x

गगर सिर फूट जेहे रे चुनर मेरी भीग जे है रे

x x x x x x x x x x x x x x x x

5–गोरी भीग गई भीज जान देव हो राजा चुनरी लेय बचाय

गोरी भीज गई गैलन में

x x x x x x x x x x x x x x x x

पुरूष लोग अधो वस्त्र लंगोट लंगोटी , फर्रा, आदि पहनते थे तथा कटि भाग में धोती पंचा आदि पहनते है तथा कुर्ता झागा, झंगा, कुर्ती अंगरखा, बंडी , बंडा आदि पहनते हैं

बच्चों की लँगोटी, घुटन्ना झंगुलिया आदि पहनाया जाता था एक लोक गीत में स्त्री पुरूष तथा

बालक तीनों के वस्त्र आभूषण आदि वर्णन मिलता है।

"रामजी उपासी रही ती इतवार

तो मैने मन के सैंया पाय ओ सैंया कहॅ तेरी उठक, कहाँ तेरी बैठक–2 रे

ओ सैंया कहाँ तेरी उठक, कहाँ तेरी बैठक– 2 रे

कहां तेरी सुख है सेज

तो हम तुम दोनों सोय रहें

ओ रनियों चौतंरा पे उठक– पौर मेरी बैठक –2 रे

ओ रनियॉ ऊँची अटरिया सुख सेज

तो हम तुम दोनों सोय रहें रें।

ओ सैयां बजजा दुकनिंयॉ जाओं अपुन को धोती ल्याओ

अपुन को बंड़ी ल्याओ, अपुन को सुआफा ल्याओ

हमको तुम लहगाँ ल्याओं हमको तुम लुंगरा ल्याओ

हमको तुम चोली ल्याओं रे,

ओ सैंया लल्लो कों टोपी झगुलियाँ

तो तीनऊ जनै सज गये रे,

ओ सैंया सुनरा को डब्बा खोलो रे

अपुन को चूरा ल्याओ , अपुन की फिरमा ल्याओ

हमकों नथुनियाँ ल्याओ रे

ओ सैंया लल्ला छूटा, पहुँचियाँ

तो तीनऊ जैने पहरें रे।

वस्त्रों के साथ साथ उनसे जुड़े हुये विश्वास भी अभी तक विद्यमान है। यथा

"कपड़ा पैरे तीनई बार, बुध बृहस्पति, शुक्रवार"[1]

सप्ताह में नये वस्त्र केवल तीन दिन को पहिनना चाहिये तथा नये वस्त्र पहनने से पूर्व उन्हे भगवान या तुलसी के वृक्ष या कन्या को समर्पित करना चाहिये यदि नये वस्त्र पहनते समय उपर्युक्त तीनों न उपलब्ध हो तो भूमि को ही पहले वस्त्र समर्पित कर देना चाहिये।

इसी के साथ वस्त्र सम्बंधी वर्जनाएं भी है यथा

"इतवार फटै, सोमबार जरै, मंगल हानि होय।[2]

आभूषण

"लीपी पोती देहरिया, ओठें पहिरें महरिया!!

लिपाई, पुताई करने से घर की तथा वस्त्र आभूषण से सज्जित स्त्री की शोभा बढ़ जाती है। आभूषणों का चलन कब से है यह कहना बहुत कठिन है मनुष्य जब जंगली एवं असभ्य कहा जाता था तब भी उनमें आभूषणें का चलन पाया जाता था। आज भी आदिवासियों में पंखो कौड़ियों के आभूषण पहनने का रिवाज है। रामायण काल में "नाह' जानामि केयूरे– नाहं जानामि कुण्ड़ले " से आभूषणों के प्रचलन स्पष्ट होता है तुलसी दास की राम चरित मानस मे पुष्पाभूषण से श्रृगांर का प्रमाण मिलता है यथा ,

एक बार चुन कुसुम सुहाये। निजकर भूषण राम बनाये।।

सीतहि पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुन्दर।

---

1)बुन्देली लोक सुभाषित – डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृष्ठ–31

2)बुन्देली लोक सुभषित –डॉ0 वर्मा पृष्ठ 39

आभूषणों का निर्माण स्वास्थ को दृष्टि में रखते हुये लोक पहचान को दृष्टि में रखते हुये किया गया होगा, ज्योतिष विद्या विदों ने ग्रह नक्षत्रों के प्रभाव से बचने के लिए जो एवं धातुओं को धारण करने की दृष्टि से आभूषणों में प्रयोग किया है जैसी कि मान्यता हैं कि एड़ी के उपर कड़े या पैंजना पहनने से पैर के निचले हिस्सें, घुटनों पिण्डलियों में दर्द नहीं होता है। मांग भरने बिछिया पहने हुये स्त्री को देखते ही सहज ही अनुमान लग जाता है। वह स्त्री विवाहिता हैं।

स्त्रियों में आभूषणों के प्रति अनुराग अत्यधिक होता है। आभूषणों का प्रभाव तन तथा मन दोनों पर पड़ता है। मान्यता है कान के उपर का अग्र भाग में बैकुन्ठी पहिनने से चचंलता समाप्त हो जाती है तथा मृत्यु उपरान्त बैकुन्ठ की प्राप्ति होती है। आभूषण आदि काल से लेकर वर्तमान काल तक अपना स्वरूप बदलते रहे है तथा उनकी निर्माण में प्रयोग होने वाली धातुओं में भी परिवर्तन होता रहा हैं किन्तु उनका प्रचलन हर युग में रहा है।

"शास्त्रीय दृष्टि से बारह आभूषण माने गये है, जो बारह अंगों को आभूषित करते है। आंगिक सौन्दर्य के साधन होने के कारण कवियों ने उनका वर्णन नख–शिख या शिख, नख के अन्तर्गत किया है बलभद्र मिश्र केशव, पजनेश, खुमान, प्रताप, आदि इस क्षेत्र के रीतिकवियों ने ख्यात नख शिख ग्रन्थों की रचना की हैं और इस परम्परा में बुन्देलखण्ड का योगदान महत्वपूर्ण रहा है इसी तरह और लोक कवियों ने भी आंगिक सौन्दर्य और आभूषणों के वर्णनों में काफी रूचि दिखायी है। फागकारों सैरकारों और फड़ काव्य के कवियों ने आभूषणों पर रचनायें रची है, जो या तो वर्णन प्रधान हैं या प्रभावात्मक ! यहाँ कुछ उदाहरण दृष्टव्य है

1–बेनी माल मंगा श्रुत नासिका के बलभद्र
कंठ के नक सुवरन अपार है
भुज पहुँचानि कर पल्लव के कौन गनै
उरन के मंडन जिते हमेल हार है।
कटि मुखन कर के सुहँनयन ऑगुरी के
विछिया आदि दै कें जितकौ झकार है।
चीन मन धातुर सुगन्ध बार अंलकार
बारह आमन से सोरह सिंगार है

2–बिछिया अनौट बाँकें घुंघरू जराय जरी

जेहरि छबीली छुद्र घंटिका को जालिका

मूंदरी उदार पौयीं कंकन बलय चूरी

कंठ कंठ माल हार पहरे गुपालिका

बेनी फूल, सीसफूल, कर्न फूल, मांग फूल

खुटिला तिलक नकमोती सौहें बालिका

केसवदास, नीलवास, ज्योति जगमग रही

देह धरे श्याम संग

मानो दीप यालिका।।''[1]

सोलह श्रॅंगारों में वर्णित आभूषणों एवं आभूषणों के द्वारा जो शोभा बढ़ती हैं उसको बुन्देलखण्ड के लोक कवि ईसुरी ने अत्यन्त ही नजदीक से पहचाना है ईसुरी की फागों ने आभूषणों से इस प्रकार से शोभा पायी है।–यथा

''कानन डुलें राध्का जू कें, लगें तरकुला नीके''[2]

फाग क्र0 स0 12

''बेंदा तर केसर की बुन्दली'' 45

पैरे रजऊ मे प्रान हरन के ककना नरम करन के

बईयन पे बाबूबंद बादें, बगॅंवा संग बरन के

छापे छला, बजुल्ला, छल्ला, गजरा केऊ लरन के

तकत तीर से लगत ईसुरी जे नग वरन तरन के 46

x x x x x x x x x x x x x x x x

''चलतन मधुर पैंजना झनके, पाँवन गोरी धन के'' 47

x x x x x x x x x x x x x x x x

''सांकर कन्नफूल के होते , इन मुंतियनकी कोवे 58

x x x x x x x x x x x x x x x x

''जो तुम छैल, छला हो जाते, परे उगरियन राते 59

x x x x x x x x x x x x x x x x

''करिया बुन्दका बूंदा तर को , तक बेंदा उपर को, 10

x x x x x x x x x x x x x x x x

''ककना दौरी सब घर अये रे गयो फफत अनौटा 97[3]

---

1)बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास,–नर्मदा प्रसाद गुप्त पृष्ठ 238

2)बुन्देलखण्ड की प्रामाणिक फागें , –संकलन – सम्पादन, नर्मदा प्रसाद गुप्त बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर,

बुन्देली लोक के चतुर चितेरे फागकार ईसुरी की फागों में निम्न आभूषणों का वर्णन मिलता है पैंजना , पैंजनिया, करधौनी, ककना, गजरा, चुरियॉ बाजूबन्द, बजुल्ला छायें छला, मुंदरी छूटा गुलुबन्द , गजरा, कन्ठा, विचौली , छुटिया, पोत का गजरा, कठला, कर्णफूल, लोलक पुंगरियां दुर, बेंदा, बेंदी, बूंदा दवनी, टिकुली इत्यादि। [1] ''छदयाऊ फाग के पुरस्कर्ता '' भुजबल'' ने एक फाग में अनेक गहनों के नाम दिये है जो क्रमवद्ध रूप से यहाँ प्रस्तुत हैं, सिर में सीसफल, बीज, वेणी में झाविया माथे में बेंदी, दावनी, टीका कानों में कर्णफूल , सांकर, लोलक, ढारें, बारी, खुटिया, नाक में बेसर , पुंगरिया, गलें में सरमाल, चन्द्रहार, सुतिया, पंचलड़ी , बिचौली, चौकी, लल्हारी, हाथ की अगुंलियों में मुंदरी छल्ला, छापें, बाजू में बरा, बजुल्ला , बागवाँ कौंचा में लकना दौरी, चूरा हरैयां , बगलियॉ , चूड़ी , नौघरई (नौ ग्रही) पदेला, कटि में करछनी, गुच्छा, पैर में कड़ा छड़ा चुल्ला, बॉके, घुमरी पायजेय, पाँव पोश, पैंजनियॉ पैंजना, पैर की अँगुलियो में बिछिया , गेंदे, चुटकी, गुटियाँ और अनवट।[2]

युग परिवर्तन के साथ–साथ खान, पान पहनने तथा आभूषणों के प्रकारों में भी परिवर्तन होता चला रहा है आर्थिक परेशानियों के बढ़ने के कारण उनका बजन भी घटता चला गया है बुन्देलखण्ड में आभूषणों का इतिहास इस प्रकार रहा हैं

1–पैर की अगुंलियों के आभूषण – अनौटा, चुटकी, छला, कटीला, गुच्छी, गेंदें गुटियों गरगजी, जोडुआ, पातें, बिरगदी, पाँवपोस, बाँकें बिछिया

2–पैर के आभूषण– अनोखा, कड़ा, गूजरी या गुजरिया, घुंघॅरू, चुल्ला, चूरा, छड़ा, छागल, छैलचूड़ी, जेहर, झाँझें टोडर तोड़ा पायजेव, पायल, पैजंना, पैंजनियॉ, पैदनां, पैरियाँ बाके, महाउर, रूल, लच्छा, साकें,

3–कमर के आभूषण– करधनी, विछुआ, आधी करधनी,

---

(1)बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई की लोक कलातीथिका – दैनिक नव भारत झांसी पृष्ठ 4 – डॉ0 हरी मोहन पुरवार– दिनांक 21 मई 2002

(2)बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास–नर्मदा प्रसाद गुप्त पेज न0 245

4–हाथ की अंगुलियों के आभूषण– छला छाप, फिरमा, मुंदरी

5–कौंचा के आभूषण– कंगन (ककना) (कंकन) कड़ा, पौचियॉ गजरा, गजरियॉ , कटीला गजरा, गुंजें, चन्दौली, चुरियॉ, चूरा, छल्ला, तैतियॉ, दस्तबन्द, दौरी, नौगरई, पछेला, पटेला, पटेली और पाटला, बंगलिया, बताने , बेलचूड़ी बंगरी, रत्न चौक, रूनझुनियाँ, लाखें, हथफूल, पानफूल हरैंय्या।

6–बाजू के आभूषण–अनंतिया, खग्गा, टडियाँ, बखौरियाँ बजुल्ला, बगुआँ, बरा, बाकें, बाजूबंद, बोंटा, बहुँयें, भुजबन्द।

7–गले के आभूषण–कण्ठमाल, कंठी, कठला, खंगौरिया, गुलुबंद, ठुसी, चंन्द्रहार, चम्पा, जलज कठुका, टकार, ढुलनिया, तिंदाना, धुकधुकू, पाटिया, विचौली, मंगलसूत्र, मालाएं, लल्हरी, सुतिया, सली, हँसिली, हमेल, हार, सीता रामी इत्यादि।

8–कान के आभूषण– ऐरन, कर्णफूल, कनौती, कुण्डल, बाला, खुटियाँ या खुटीला, खुमी, झुमका, झुमकी, झुलमुली, ठारें, तरकी, तरकुला, तरौना, नगफनियॉ, फुल्ली, बैकुण्डी, बंदनी, वारी, बिचली, बिजली, बुदें, मुरफी, लाला, लोलक।

9–नाक के आभूषण–कील, सुलनी, टिजो, दुर नथ, नथुनियाँ, नकफूली, नकबेसर, पुंगरिया, बारी, वुल्लाक, सिरजा,।

10–माथे के आभूषण–टिकली, टीका, तिलक, दाउनी या दावनी, बेंदा, बेंदी, बूंदॉ

11–सिर के आभूषण–केकर पान, झूमर सीसफूल, माँगफूल, चूड़ामणि, रेखड़ी

12–चोटी के आभूषण–चुटिया या चुटीला, झाविया, बेनीपान, बेनीफूल

पुरूषों के आभूषण–छला, फिरमा, गुंदरी, कड़ा चूरा, बाजूबन्द, भुजबन्द, गले में कण्ठा, गजरा, गोप, जंजीर, तौक तबिजिया, बनमाल, मोतीमाल, हार।

बालकों के आभूषण– बालक के हाथों में चूरा , कड़ा, चूरा, पहुँचियॉ कोचा, अनंतिया, करधनी कमर में, गले मे धन, कठुला, कठिलिया तबजिया, ढुलनिया, गजरा चंदा बघनखा नजर बट्टू, कानों में बारी, लोंग , मुरली, इत्यादि पहनते है।

आभूषण पहनने के अलावा वस्त्रों को गहनों से अलंकृत किये जाने का चलन है चुनरी के छोर में घूघंट में, पल्ला या आँचर, के छोर में चोली अगियाँ में भी घुघंरू गोटा, जरी इत्यादि से फूल पत्ती, तोता, चिड़िया इत्यादि को अलंकृत किया जाता है।

लोकमूल्य

चित्रकूट में रम रहे रहिमन अवध नरेश।

जा पर विपदा परत हैं सो आवत एहदेश।

अब्दुर्र "रहीम " खानखाना

मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम ने जिस स्थान को अपनी तपस्थली बनाया, निश्चित हैं कि वहाँ कुछ न कुछ विशेष रहा होगा। कुछ ऐसा शान्त प्रिय सहयोग करने वाला समाज होगा– जिसने कुछ काल ही नही वरन् पूरे 12 वर्ष तक भगवान को सम्मोहित कर के तपस्या करने के लिए आकर्षित किया होगा, श्री राम का वनवास अकारण ही नहीं था सर्वविदित हैं कि श्री राम धर्म की स्थापना एवं अधर्म का नाश करने के लिए, भारत वर्ष को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए निकले थे। वैदिक परम्परा का प्रचार–प्रसार करने हेतु ऋषियें मुनियों की सोची– समझी नीति, आश्रमी परंपरा प्रारम्भ की। श्री राम ने ऋषि, मुनि तथा तत्कालीन समाज से परांमर्श एवं आगे को रणनीति पर विचार करने के लिए "चित्रकूट" को चुना। आश्रमी परम्परा आर्यो की सभ्यता संस्कृति का प्रचार, प्रसार कर रही थी। उनके सम्पर्क में आकार अन्य अनार्य संस्कृतियाँ भी अपनी और आर्य संस्कृति को तुला पर रख कर दृष्टि गड़ाये थी, तथा लाभ दिखायी देने पर अपनी संस्कृति, तथा उनके तत्वों को आत्म सात कर रही थी, शवरी अनार्य होते हुये भी अपने गुरू के सम्पर्क में आकर भगवान श्री राम को भक्ति भाव से अपने जूठे बेर खिला कर दुनियाँ में अमरत्व को प्राप्त कर गयी, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। भगवान श्री राम के 12 वर्ष तक चित्रकूट प्रवास के समय की तपस्चर्या से समूचा बुन्देलखण्ड सुरभित हो गया उनकी कृपा से गिरि भी कामद हो गये।

कामद भे गिरि राम प्रसादा।।[1]

पर्वत नदी पेड़, पौधे इत्यादि सभी पावन हो गये थे फिर मनुष्य और उससे जुड़ी इकाइयॉ कैसे अलग हो सकती हैं अनार्य जातियों को सांस्कृतिक तत्व भी उनसे अछूते न रह सके। उनके लोक मूल्य भी बदल गये , मनुष्य समाज की भूमि, तथा देश की रक्षा करना लोक मूल्य बन गया।

---

(1)रामचरित मानस –गो0 तुलसीदास

"आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है।" लोक को भी आवश्यकता पड़ती है उस आवश्यकता की पूर्ति हेतु नये–2 लोक मूल्य बन जाते है यह आवश्यकता कई प्रकार की हो सकती है लोक ही लोक संस्कृति की रक्षार्थ उसके विकासार्थ नये– मूल्यों का सृजन करता है तथा लोक की मुहर लग जाने पर लोक मूल्य बन जाते है। इसके लिए गाँव में एक चबूतरा होता है जहाँ सभी लोग इकटठा् होते हैं, चर्चायें होती हैं तथा निर्णय लिये जाते हैं जो लोक की सुरक्षा एवं संरक्षण करते हैं। मूल्य व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक होते है। इन सबसे ऊपर उठ कर जो मूल्य लोक हितार्थ होते हैं लोक मूल्य बन जाते हैं। वह किसी एक का आदर्श नहीं होता वह सम्पूर्ण लोक का आदर्श बन जाता है।

बुन्देलखण्ड प्राकृतिक रूप से पर्वत, नदियों, झरनों , वनस्पतियों, वनौषधियों आदि से पूरिपूरित रहा है अतः यहाँ के निवासी सामान्य जीवन व्यापन करने से ही बलिष्ठ, साहसी, निडर, श्रमजीवी हो जाते हैं। साथ ही धन्य धान्य से पूरित पृथ्वी की ओर आक्रान्ताओं का ध्यान बरबस ही इस भू खण्ड की ओर उठता रहा है। आक्रान्ताओं से अपनी मातृ –भूमि की रक्षा करना सव से बड़ा लोक मूल्य रहा है। आल्हा में वर्णित है। कि

"जे मर जैहें रन खेतन में, साकौ चलो अगाऊँ जाय।।[1]

यह लोक का विश्वास बहुत प्राचीन है। [1]

परिवार के मुखिया का धर्म परिवार की रक्षा करना है। प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म है। उसी प्रकार राज्य अथवा देश की रक्षा करना प्रत्येक देशवासी या राज्यवासी का धर्म है। वीरता अपना एक वैयक्तिक मूल्य है लेकिन आक्रान्ताओं से रक्षा करना, व्यक्तिगत सीमाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीय लोक मूल्य है, क्षत्रिय का धर्म रक्षा करना है। क्षात्र धर्म विदेशी आक्रमण कारियों से रक्षा करना है वह गाँव समाज, लोक संस्कृति अथवा राष्ट्र किसी पर भी आक्रमण करें, क्षत्रिय युद्ध रत रहें।

वर्ष अठारह क्षत्री जीवे, आगे जीवै तो धिक्कार[2]

---

(1) बुन्देली संस्कृति और साहित्य–, नर्मदा प्रसाद गुप्त पेज न0 38

(2) वही

स्त्रियों का लोक मूल्य पति के पाल्य , परिवार तथा उसकी आन, बान शान की रक्षा होता था। "इतिहास कार फरिश्ता लिखता हैं" विदेशी आक्रमण कारियों से अपने देश की रक्षा के लिए वीरांगनाओं ने अपने आभूषण और रत्न बेच कर सहायता की थी" । [1]

पति के वीर गति को प्राप्त होने पर पत्नी पतिब्रत धर्म का पालन करतीं थीं गज मोतिन अपने पति मलखान के जूझने पर सती धर्म का निर्वाह करती थी अतः स्त्रियों के लिए पतिब्रत और सतीत्व परम लोक मूल्य था–

विदेशी आक्रमण कारियों के साथ उनकी संस्कृति भी साथ आयी, आतताइ भारतीय लोक संस्कृति को तहस नहस करने का अथक प्रयत्न करते रहे हैं। ऐसे संक्रमण काल में उनके मूल्यों का दबाब बराबर लोक मूल्यों पर पड़ता रहा है। ऐसे में भारतीय संस्कृति समस्त झंझावातों को सहन करती हुई उनकी चुनौती का सामना करती रही। ऐसे कठिन समय में बुन्देलखण्ड के लोक ने भाषा साहित्य लोकगीत और अखाड़ों से अगुवाई कर भाषा , साहित्य कला के माध्यम से भारतीय संस्कृति को अन्दर बाहर दोनो ओर से सहारा दिया। बुन्देलखण्ड कुम्भकार की भाँति भी अंदर से हाथ का सहारा देकर उसके आन्तरिक स्वरूप की रक्षा करता रहा और बाहर से चोट करके उसके स्वरूप को संम्भालता रहा तथा परम्पराओं के अनुसार रूप दे उसका विकास किया। जिससे वह अपने आन्तरिक एवं बाह्य स्वरूप को सुरक्षित रख सकी, विदेशी दबाब अपने आप बेमानी होकर समाप्त होते चले गये, तथा लोक ने भी युग के अनुरूप लोक मूल्यों का निर्माण या उसने परिवर्तन किया फलस्वरूप " सत और पत रखने के तत्कालीन लोक संस्कृति की अस्मिता सुरक्षित रखी, क्योकि दोनों का संबध नारी जाति से था पत्नी की रक्षा तो पुरूष भी करता था" ।[2]

---

(1) बुन्देली संस्कृति और साहित्य–नर्मदा प्रसाद गुप्त पेज नं0 38

(2) बुन्देल खण्ड और साहित्य –नर्मदा, प्रसाद गुप्ता पेज नं0 152

स्त्री, पुरूष दोनों ही सम्यक रूप से सत और पत जैसे लोक मूल्य के लिए समर्पित हैं सम्पूर्ण लोक में सत और पत हर घर में हर समाज में स्थापित हो गये, रीति बन गयी, सत और पतका चलन चल गया। लोक साहित्य की हर विधा में सत और पत शीर्ष पर दिखायी पड़ने लगे। महाराज चम्पत राय और महाराजा छत्रसाल ने पत के लिए संघर्ष के मार्ग का वरण किया तो मथुरावलि और मनोगूजरी सत और पत का निर्वाह करते हुये अपने प्राणों की आहुति दे चली, " मनो गूजरी मथुरावलि आदि नारी के बलिदान की प्रामाणिक गवाह है। मथुरावलि खड़ी खड़ी जल जाती है और उसका भाई कहता है कि

"राखी बहना पगड़ी की लाज, बिहंस कहै राजावीर ठाड़ी जरै मथुरावलि"[1]

पगड़ी की लाज रखना तत्कालीन युग का प्रमुख लोक मूल्य था क्योंकि पगड़ी पुरूष की प्रतिष्ठा का प्रतीक थी पत लोक मूल्य इतना अधिक प्रचलित हुआ कि हर जगह पत का बोल बाला हो गया कुल की पत, घर की पत, पति की पत, भाई की पत, ससुराल की पत, मायके की पत इत्यादि

"मोरी पत राखौ गिरधारी" या

"शरन गहे की पत राखियो मइया चौखट गही हैं तोरे दौरे की हो मॉय"।

"कुल की परम्परा है लाज पत निभाये जइयो बेटी"[2]

"तो दोऊ की कुल की पत हैं तोरे हाथ " इत्यादि लोक का लोक मूल्य "पत" लोक भाषा लोक साहित्य, लोकगीत, साहित्य में दिखायी पड़ता था। बुन्देलखण्ड में सत और पत की प्रतिष्ठा रखने का ज्वलंत उदाहरण ओरछा का है। सत और पत जैसे लोकमूल्य का निर्वाह करने के कारण लोक ने लोकनायक ही नही हरदौल को लोक देवता बना दिया है। ओरछा नरेश महाराज जुझार सिंह के अनुज हरदौल जो अपनी भौजी महारानी चम्पावती (महाराज जुझार सिंह की पत्नी) को मातृ वत स्नेह करते थे, तथा भौजी ने भी अपने देवर हरदौल का पुत्र वत पालन पोषण किया था, हरदौल इतने वीर पराक्रमी थे कि तत्कालीन मुगल किसी भी प्रकार से उनसे लोहा नहीं ले सकते थे। अतः कूटनीति के तहत राजा के कान भरे गये महारानी के चरित्र पर झूठा सन्देह किया गया जिसमें राजा ने रानी को हरदौल को अपने हाथ से विष देने कें लिए कहा। साक्ष्य है

---

(1)बुन्देली परम्परा और साहित्य– नर्मदा प्रसाद गुप्त पृ0 152

(2)संकलित

"हरदौले विष देदे नारी,

पतिब्रता को जोई धरम है करै पती का केनारी "इस पर रानी सत की रक्षा के लिए व्याकुल हो गयी राजा से विनती की

निरदोषी हरदौल लला खौ

विष भोजन करवाउत काय

प्रीतम पाप कमाउत काय

चुगल चबाइन की बातन में

जान बूझ के आउत काय– प्रीतम

आज आपनेई हॉथन से

अपनी भुजा कटवाउत काय– प्रीतम

पुत्र समान "लला" है मोरे

ताहि कलंक लगाउत काय– प्रीतम [1]

रानी के पास अब एक ही अवलम्ब था ईश्वर।" एक ओर पति की आज्ञा है एक ओर देवर प्यारो, करो प्रभू अब निर वारों" पति की कही करौ तो देवर बिना मौत जावे मारो

जो पति की आज्ञा ना पालौ तो धरम विगर जावै सारो।।

भौजी को ऊहा पोह की स्थिति में देख कर स्वयं हरदौल में सत और पत के लिये की रक्षा के लिए निर्णय लिया

चाहत सॉंचो प्रेम है त्याग और बलिदान

ऐ ही से विषपान कर लाला त्यागे प्रान,

स्वयं ही विषपान कर लिया तथा भौंजी का सत और भइया की पत पर आँच नही आने दी जिसका प्रभाव लोक पर इस प्रकार पड़ा कि लोक स्वयं ही चिल्ला उठा।

---

(1) कुअंर हरदौल –डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृष्ठ संख्या 8 व 13

"भौजी के लाला पी के विष प्याला,'

बुन्देला राजा कर गये जग में नाम,

गंगा सी पावन देवर भौजी की प्रीति ना ठानी

भ्रम में पड़ कर नृप जुझार ने विष देवे की जानी.

भौजी के लाला

भौजी से भोजन बनवा के पक्के विष मिलवाये

शुरू करी ज्यौनार जहर की हँस के कौर उठाये

भौजी के लाला

नीले पर गये अंग–2 फिर फिर गई 'नैन पुतरियाँ

खा पछाड़ भौजाई गिरी हा लाला भये पराये

भौजी के लाला" [1]

इस प्रकार विष पान कर हरदौल ने सत और पत की प्रतिष्ठा रखी है।

कहावतों मे भी सत की बाँदी लक्ष्मी या सत की सांची सती" इत्यादि लोक में प्रचलित हैं। बुन्देलखण्ड सदैव से ही धर्म परायण प्रदेश रहा है। धर्म और लोक जीवन जैसे एक सिक्के दो पहलू है। बुन्देली लोक "परम मूल्य" मोक्ष को प्राप्त करना है। अतः सभी धार्मिक कार्य कथा, भागवत, ब्रत, पूजन इत्यादि श्रेष्ठ मूल्य समझे जाते हैं। शैव वैष्णव, शाक्त तीनों ही मतो के द्वारा प्रतिपादित मार्ग द्वारा मोक्ष को प्राप्त करने के लिए की गई 'क्रियाओं को समाज में श्रेष्ठ समझा जाता हैं बहिन बेटी, बहू किसी की भी हो उसकी इज्जत पूरे गाँव की इज्जत समझी जाती है। भूखे को भोजन कराना गरीब की सहायता कराना, गरीब की बेटी के विवाह में सहायता देना श्रेष्ठ कार्य समझे जाते थे, मंदिर बनवाना, कुँआ, तालाब बाबड़ी इत्यादि बनवाना तो श्रेष्ठ कार्य है ही, दान करना, श्रेष्ठ पुण्य कार्य था–"अेन केन विधि दीन्हे दान करई कल्यान" तीर्थ यात्रा करना श्रेष्ठ कार्य है।

---

(1) कुँवर हरदौल–डॉ0 हरीमोहन पुरवार पृष्ठ संख्या 17

"सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना परम मूल्य है। वह तो प्रत्येक कथा के अन्त में होता ही है चाहे वह पूजन, ब्रत से संम्बधित हो या मनोरंजन से कथा (कहानी) के रूप प्रेरक प्रंसग होते है जिनमें बाल से लेकर वृद्ध तक के लिए सन्मार्ग दिखाया जाता है क्योंकि शिक्षा एक ऐसी प्रकिया है जो आजीवन चलती रहती है अतः लोक साहित्य में " बहुजन हिताय बहुजन सुखाय " की भावना बिना ढूँढे ही मिल जाती है। लोक के किसी भी कहानी के अन्त में यह अवश्य कहा जाता है कि "जैसे उनके दिन फिरे ईसुर सबकेई ऐसेई दिन फिरें"।

"जैसी मती उनकी करे।, तैसई सबकी करै। हम तो जोई चाँऊत

"हरछठ की कहानी के अन्त में यह अवश्य कहा जाता है कि "हे हरछठ महारानी जैसे ग्वालिन के लाल जी उठे, तैसेई महारानी सबके लाल जी उठें।

" महालक्ष्मी की कथा में "जैसी लक्ष्मी आमोती

दमोती रानी के घरें बसी, तैसेई सबके घरै बसै।

लोक जीवन के जो मूल्य है वे समाज हित में ही होते है। धार्मिक अनुष्ठानों मे जो कहानियाँ कहीं जाती हैं वे भी यह शिक्षा देती हैं कि " व्यक्तिगत स्वार्थ के वशीभूत होकर समाज को कभी धोखा नहीं देना चाहिये" [1]

इसी प्रकार एक और परम मूल्य है कि "परहित सरित धर्म नहिं भाई"। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।[2] महाराज तुलसीदास जी का यह मूल मंत्र लोक में कुछ इस प्रकार सुनाई पड़ता है।

"चार वेद छह शास्त्र में बात लिखी है दोय।

सुख देये सुख होत हैं, दुखः देये दुःख होय।।

वेद पुराण आदि में वर्णित धर्म का गहन अध्ययन वेद पाठियों के लिए है लोक तो उनके सारांश को "कबीर वाणी" में गाता है।

"ढाई आखर प्रेम को, पढै सो पंडित होय।।

---

(1) बुन्देली लोक चित्रकला– डॉ0 हरीमोहन पुरवार पृष्ठ 43

(2)रामचरित मानस –गो0 तुलसीदास

लोक विश्वास

हमारे समाज में विपरीत पारिस्थितियों में किसी विपदा के समय जन सामान्य द्वारा किया कोई ऐसा कार्य जिससे वो विपदा या परेशानी दूर हो जाती है। चाहे वो पूजा पाठ से सम्बन्धित हो, तंत्र मंत्र से सम्बनिधत हो या टोने टोटके आदि से सम्बन्धित हो, यदि उस पर लोक की सहमति हो जाती है उसे लोक से मान्यता मिल जाती है तो लोक विश्वास के अन्तर्गत आता है।

बुन्देलखण्ड में लोक विश्वासों को मुख्यतः पाँच वर्गो में बांटा जा सकता है–

क–व्यक्तिगत विश्वास

ख–सामाजिक विश्वास

ग–धार्मिक विश्वास

घ–कृषि आधारित

ड़–टोने टोटके

1–व्यक्गित विश्वास

धर्म का जन्म भय की कोख से हुआ है दैवी आपदा या रोग बीमारी से ग्रस्त होने पर कोई छोटा सा कार्य (भले ही उसका उस बीमारी से काई सम्बन्ध न हो) होने पर वह आपदा समाप्त हो जाती है या रोगी को आराम मिल जाता है। तो उसे उसी पर विश्वास होने लगता हैं पुनः उसकी पुनरावृत्ति होने पर वह उसी कार्य को पुनः करने लगता है तथा दूसरे व्यक्ति के पीडित होने पर वह उसी कार्य को करने की सलाह देता है। धीरे–धीरे यह समाज में प्रचलित हो जाता हैं उस पर लोक की सहमति होने पर वह व्यक्तिगत विश्वास, लोक विश्वास बन जाते हैं कुछ लोक विश्वास बड़े ही वैज्ञानिक हैं वह या तो धर्म से जुड़े हैं या केवल विश्वास हैं किन्तु वह लोक से मान्यता प्राप्त कर लोक विश्वास बन गये हैं उदाहरणार्थ दृष्टव्य हैं– प्रसूत गृह के दरवाजे पर बराबर आग जलायी जाती है जिसकी वैज्ञानिकता यह है, कि उस समय गाँवों में इतनी चिकित्सा की सुविधा नहीं थी तथा गाँव में इतनी सफाई नहीं थी न ही डेटाल फिनायल न ही सर्फ साबुन, अतः कीटाणुओं से बचाने के लिए एक पात्र में आग जलायी जाती थी जिससे कीटाणु प्रसूति गृह में प्रवेश न करें तथा आग और धुयें से नष्ट हो जायें। यह लोक विश्वास बना कि प्रसूति गृह ''सौर'' दरवाजे आग जलाने से ''जमूले'' नहीं लगते हैं। ''जमूले'' एक प्रकार का टिटनिस नुमा रोग है जो नवजात शिशु को हो जाता है शिशु मृत प्रायः

हो जाता है या शिशु की मृत्यु हो जाती हैं जिसे लोक में कहा जाता कि जमूले शिशु का खून पी गये, बच्चा हरा नीला पड़ गया। किन्तु प्रसूति गृह के दरवाजे पर आग जलने से जच्चा बच्चा दोनों स्वस्थ रहे तो प्रसूति गृह के दरवाजे पर आग जलाने का प्रचलन समाज में प्रचलित हो गया तथा सम्पूर्ण लोक का हृदय जीतने के बाद प्रसविनी स्त्री एवं नवजात शिशु की रक्षार्थ प्रसूति गृह के दरवाजे पर आग जलाना लोक विश्वास बन गया।

लोक + विश्वास, ऐसे कार्य जो लोक का विश्वास जीत कर सम्पूर्ण लोक में प्रचलित है " लोक विश्वास है"।

यह विश्वास व्यक्गित, सामाजिक तथा धार्मिक इन तीन तरह के होते है। जिनमें तंत्र मंत्र जादू, टोटका– टोना शामिल हैं इस लोक जीवन को हर पहलू में कोई ना कोई विश्वास देखने को मिल जाता है सर्वप्रथम जन्म के समय बच्चे का नाल यदि बाँझ स्त्री या ऐसी स्त्री जिसकी संतति केवल पुत्रियाँ ही होती हों, चोरी कर खा ले तो उसके से गर्भ पुत्र होता है तथा जिस पुत्र का नाल चोरी किया गया हो उसकी माँ या तो बाँझ हो जाती है या फिर पुत्री ही पैदा करती है। पुत्र से वंश पंरपरा आगे बढ़ती है पुत्र पितरों का तरन तारन अर्थात मोक्ष को प्राप्त कराता है। पुत्री पराये घर की सम्पत्ति होती है तथा मेहमान की भांति कुछ वर्ष व्यतीत करने के बाद अपने घर (ससुराल) चली जाती है कहावत दृष्टव्य है यथा–

"मोंड़ियन के नईं तरसारे रोपे जात"

नजर उतारने के लिएलोक में ऐसा विश्वास है– नजर उतारने के विभिन्न तरीके हैं नजर लगने पर बाल, युवा बीमार पड़ जाते है। नजर उतारने के लिए सबसे ज्यादा प्रसिद्ध तरीका है राई, नौन, उसारना,1 अर्थात सरसों, गेंहूँ की भूसी, सूखी लाल मिर्च और नमक पीड़ित व्यक्ति के चारों तरफ फेरा लगाकर (उसार कर) जलती हुयी आग में उल्टा मुँह कर के दोनो पैरों के बीच से फेंक दिया जाता है।

दूसरी विधि में पत्थर का टुकड़ा उसार कर आग में डाल दिया जाता है। नजर अत्यधिक होने पर पत्थर लाल पड़ जाता है। उस पत्थर को निकाल कर पानी में डाल दिया जाता है। पत्थर टूट कर टुकड़े – टुकड़े हो जाय तो नजर जाती है। इसे पत्थर मारी नजर कहते है। कहते है कि नजर इतनी बुरी होती है कि पत्थर को भी नजर लग जायें तो वह भी टूट जाता है।

तीसरे प्रकार के तरीके में चारपाई की मूंज में रूई लपेट कर बत्ती नुमा बना ली जाती उस पर सरसों का तेल लगा दिया जाता है उसको उसार कर दरवाजे के कुंड़े पर बाँध दिया जाता है। तथा उसमें आग लगा दी जाती है। नीचे कासें की थाली में पानी रख दिया जाता है जले हुये सरसों के तेल की बूदें नीचे थाली के पानी में गिरती है तो एक विशेष प्रकार की सांय–2 की आवाज करती है। उस पानी को पीड़ित के माथे पर लगा दिया जाता हैं जिससे नजर उतर जाती है। नवजात शिशु जिसका प्रसूति गृह से निष्क्रमण संस्कार ना हुआ हो उसके बीमार पड़ने पर दीपावली के एक दिन पहले अर्थात चतुर्दशी (जिसको नरक चउदस या जमघंण्ट'') बोलते हैं के दिन जो दियाली जलायी जाती हैं उन दियाली को पानी में घिस कर पिलाने से वह रोग मुक्त हो जाता है।

दूसरे प्रकार में सात छप्पर के फूँस निकाल कर उसको जलाया जाता है। उसकी राख माथे पर लगाने से टोना दूरा हो जाता हैं दूध देने देने वाले जानवर नजर या टोने की बजह से दूध देना बन्द कर देते हैं तो उन्हें बयॉ चिड़िया के घोसलें को जलाकर सेंक दिया जाता हैं जिससे वह नजर या टोना से मुक्त होकर पुनः दूध देने लगते हैं।

बच्चे मुहँ से लार गिराते हैं। बच्चे की बुआ को लड्डू में लार खिला दी जाये तो बच्चे लार गिराना बन्द कर देते है।

बच्चे को सूखा रोग होने पर उसे अलः सुबह चिता पर कपड़े पहने हुये बच्चे को स्नान करा दिया जाता है बच्चे के कपड़े वहीं उतार कर फेंक दिये ज़ाते हैं तथा लौटते समय पीछे मुड़ कर नही देखते है। इस तरह सूखा रोग ठीक हो जाता है।

दूसरे प्रकार में बच्चे को कपड़ो सहित ''आक'' अकौआ (मदार) के पेड़ पर स्नान करा दिया जाता है। बच्चे के कपड़े निकाल कर पेड़ के ऊपर डाल दिये जाते है। जिससे वह पेड़ सूखने लगता हैं बच्चा ठीक हो जाता है।

बुखार यदि काफी समय तक ठीक ना हो तो शनिवार या बुध बार का सुबह चूल्हे की राख दोनो हाथों में भर कर यह कहते हुये घर से चलें कि चलों गंगा स्नान कर आये तिराहे या चौराहा मिलने पर उस राख को वही छोड़ दिया जाता हैं और कहा जाता है कि तुम्ही चले जाओं गंगा स्नान के लिये। इससे पुराना बुखार या एक दिन छोड़ कर एक दिन आने वाला बुखार ठीक हो जाता है।

चेचक निकल आने पर शीतला माता की मनौती मानी जाती है। नीम के पेड़ की छोटी सी डाल

(जिसे झौकां कहा जाता है) रोगी के पास रख दी जाती है घर में छौंक, बघार, नहीं लगाया जाता है मनौती मानने वाला व्यक्ति हजामत, बाल इत्यादि नहीं बनवाता जूते, चप्पल नही पहनता हैं। प्रतिदिन मंदिर जाकर शीतला माँ का जलाभिषेक करता है तथा चरणों से बह कर जो जल निकलता है उसे रोगी को पिलाया जाता है रोगी के ठीक होने पर माँ की विधिवत पूजा की जाती है।

आँखो मे इन्फैकशन होने को आँख आना कहा जाता है। इस समय नीम का झौंका सदैव अपने पास रखा जाता हैं क्योंकि लोक विश्वास है कि नीम में "देवी" का वास होता हैं। पीपल के वृक्ष में विष्णु भगवान का वास माना जाता है। यदा,

गोरी हारें ना जाव, पीपर के पत्तन में देवता

इसीलिये नीम एवं पीपल के हरे पेड़ नहीं काटे जाते है। यदि किसी स्त्री के शिशु जिन्दा नहीं रहते हो तो उस स्त्री के शिशु को किसी दूसरी स्त्री को दान या बेंच दिया जाता है या उसकी गोद में डाल दिया जाता है या बाँस की डलिया में डाल कर सात पाँच स्त्रियाँ उसे भूमि पर झूले की भाँति घसीट देती है जिनका प्रत्यक्ष उदाहरण है उस बच्चे का नाम करण उसी क्रिया के तहत पड़ जाता है यदा गोद में डालने वाले का नाम डरैले, बेचने बाले का बेंचें , कडोरे इत्यादि यह सभी घसीटने के पर्यायवाची शब्द हैं जो लोक भाषा में प्रचलित है

विवाह के समय भी किये जाने वाला सैंकड़ो विश्वास ऐसे ही हैं उनमे प्रमुख है बारात चली जाने पर सभी देवता अच्छी आत्मायें बारात चली जाती हैं किन्तु अनिष्ट कारी आत्माओं से निवेदन कर स्त्रियाँ उन्हें रोक लेती हैं उनके लिए जो रीति रिवाज, बधू पक्ष के यहाँ रात में होने वाले "नकटौरा" के अन्तर्गत करती हैं यथा द्वार–चार, बाजे बजना, पंगत होना कन्यादान, भांवर इत्यादि, इनमें इस कार्यक्रम में केवल स्त्रियॉ ही भाग लेती हैं जिनमें फूहड अश्लील शब्द बातें इत्यादि करती है। जिससे कि अनिष्ट कारी आत्मायें जादू, टोना, टोटका यही रहें तथा विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो सके।

लोक आत्मा के पुर्नजन्म को मान्यता देता है अतः जो व्यक्ति अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। या जिनको मोक्ष प्राप्त नही होता है, वह भूत , प्रेत पिशाच, चुडैल मसान इत्यादि की योनि को प्राप्त हो जाते हैं। इनके सम्पर्क में आने पर वह उसे परेशान करते है। मांत्रिक, गुनिया, ओझा, भगत आदि अपनी विशिष्ट क्रिया के द्वारा , उनसे निजात दिलाने का भी लोक मे विश्वास किया जाता है।

जीवन के अन्य कार्यो में लोक स्थापित है यथा बुध का बरोसी तथा मंगलवार को चारपाई तथा छत या छप्पर नहीं डाला जाता है। कहावत दृष्टव्य है

" बुघ बरोसी मंगल खाट, मरै नहीं तो आवै ताप"।। या

"मंगल मगरी (छत) बुधै खाट, भरै नहितो आवे ताप"।।

सावन में चारपाई में मूँज नहीं भरवाई जाती है सावन के महीने की भरी चारपाई पर सँाप चढ़ जाता है इसके अतिरिक्त सांप चारपाई पर नहीं चढ़ता वह चारपाई की आन मानता है।

पौष मास में कोई शुभ कार्य नही होते है। अधिक मास हिन्दू पंचाग के अनुसार 3 वर्ष में अधि मास पड़ता है या वर्ष में 13 महीने होने पर उसे शुभ मानते है। उस मास मे कथा भागवत व्रत पूजन इत्यादि किया जाता है।

त्यौहार वाले दिन किसी की मृत्यु होने पर उस परिवार मे वह त्यौहार खोटा हो जाता हैं मनाया नहीं जाता है पुनः उसी दिन पुत्र पैदा हो या गाय बछड़े को जन्म दे तो पुनः उस त्यौहार को मनाने लगते हैं।

लोक में विश्वास है कि शगुन अपशगुन अपना फल अवश्य देते हैं यात्रा में निकलने पर नेवला वेद पाठी ब्राहमण , दही, मछली, नीलकण्ठ, बालिकायें, मंगल घट रखे, स्त्री, सधवा स्त्री, मुर्दा या बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय, मेहतरानी, वेश्या देखना शगुन है।

सन्मुख गऊ चुखाबे बच्छा, ई है सगुना सबसे अच्छा,[1]

इसके विपरीत खाली वर्तन निपूता इन्सान, बाँझ स्त्री, विधवा स्त्री, गधा, काना व्यक्ति, या जिसकी एक आँख में कुछ खराबी हो भैंगा व्यक्ति जा जिसके वक्ष स्थल पर बाल न जमे हो , विल्लौरी आँखों वाला व्यक्ति या छींक होना अपशगुन माना जाता है यथा

सवा कोस तक मिलै जो काना, लौट आये वह परम सयाना,

या

सौ मे फुली, सहस में काना, सवा लाख में ऐंचकताना

ऐंचक ताना कहे पुकार, मैं मानूँ कजां से हार

कंजा कहता बारम्बार, जाकी छाती जमे न बार तो से तौ रहियो हुसयार।।

x x x x x x x x x x x x x x x x

छींकत घुडला पलाने अमान जू

(1)बुन्देली जन जीवन एक परिचय डॉ0 हरी मोहन पुरवार

बरजत पकरी लगाम,[1]

या

छींकत खैये, छींकत परियैं

छींकत पर घर कबहूँ ना जैइयैं।

या

एक नाक दो छीकें, जहाँ जाओ तहाँ नीकें।

इसके अतिरिक्त अंगो के फड़कने से होने वाले सगुन अपसगुन भी लोक विश्वास हैं पुरूषों की दाहिनी आँख, दाहिनी भुजा फड़कना शुभ होती है उदाहरण यथा–

''भरत नयन भुज दक्षिण फरकहि बांरहि बार

जान सगुन मन हरष अति लागे करन विचार।।

स्त्रियों की बाँयी भुजा, बाँयी आँख फड़कना शुभ होता है। यथा

''मिलन खौं तो बहियाँ फरकै, बहियाँ फरकै, दरस खों फरक रये दोई नैन''[2]

या

''डेरी आँख, औ,डेरी बइयाँ बीर मिलै कि सैंया।।

पुरूषों की बाँयी आँख तथा बाँह, स्त्रियों की दाहिनी आँख तथा भुजा फड़कना अपशगुन समझा जाता है

विवाह समय में भॉवर के बीच बधू का भाई धान बोता है जिसेस बहन धनी होती है यथा

धान वोओ वीरन धान वोओ बहिन धनवंती होय।।[3]

तथा दूध सीचनें से ननद पुतवंती होती है यथा

---

(1)अमान सिंह का राछरा

(2)बु0 स0 औ0 सा0 नर्मदा प्रसाद गुप्त 41

(3)उपयुक्त वही पृ051

कृषि संम्बन्धी भी लोक के अनुभव और विश्वास हैं जैसे ओले पड़ने पर गर्म तवा आंगन में डाल देना कुऋतु की आँधी को झाड़ू दिखाना, कुऋतु की वर्षा होन पर बादल को उल्टा मूसल दिखाना होती है यथा–

मघा नक्षत्र में अच्छी बरसात होने पर ही खेत संतृप्त होते है यथा–

"मघा न बरसे भरे ना खेत, माता ना परसै भरे ना पेट।।

बुन्देलखण्ड मे मघा नक्षत्रों मे माँ अपने बेटों को खीर बना कर स्वयं ही खीर परसती है।

"अक्का कोंदो नीम जौ, बमुर फरन्ते धान

जो कउँ अमुवा बौरे, तो, संवत होय महान"।।

यह भी लोक का कृषि परक विश्वास है कि अकउआ (मदार) ज्यादा होने पर कुदवॉ (धान्य) नीम ज्यांदा फलने पर जौ, बबूल के ज्यादा फलने पर धान अच्छा पैदा होता है, पर यदि कहीं आम में बौर अच्छा आये तो पूरे संवत अर्थात पूरे वर्ष सभी फसलें अच्छी होती हैं

लोक विश्वास अच्छाई बुराई में समेटना कठिन कार्य हैं यथा–

'हंसा बैला पहलो पूत, बड़े भाग्य जो कडै सपूत।।

बाढै कथा ना पार नईं लहई। उनको लेखनी में समेटना कठिन कार्य है।

धार्मिक लोक विश्वासों में सभी धार्मिक कार्य सम्मिलित है। गाय और गंगा मोक्ष दायिनी है दान सभी विधि कल्याण करता है जिसका सारांश यही है कि यथा

"चलती चाकी देख के दिया कमाला हँस।

किल्ली नल्ले जो रहा सो साबुत गया बच।।"

यह लोक का परम विश्वास है कि ईश्वर द्वारा बताये गये पुण्य कार्य करना ईश्वर वादी या ईश्वर के आधीन रहना। जो ईश्वर की शरण पकड़े रहेगा, वह दो पाटों के बीच में नहीं पिस पायेगा, अर्थात मोक्ष को प्राप्त कर लेगा।

अतएव ये सभी – लोक विश्वास हमें समाज में रहकर एक दिशा प्रदान करते है और जीने की प्रेरणा देते है हम संघर्ष करते हुए सुख–दुख में सम रहकर– या एक दूसरे को शारीरिक व मानसिक सहारा देकर समाज में परिवार की भावना को सुदृढ़ बनाते चलते हैं।

लोकाचार

लोकाचार जीवन की एक शैली होती है जिसमें जीवन जीने के लिये कुछ आचरण व्यवहार आदि अपनाये जाते है, ऐसे आचार व्यवहार जो सामान्य लोक द्वारा अपनाकर समाज को गति प्रदान की जाती है वे ही लोकाचार कहलाते हैं बुन्देलखण्ड के लोक जीवन द्वारा अपनाये जाने वाले लोकाचारों का निम्न वर्गो के अन्तर्गत सुगमता से जाना जा सकता है–

1–व्यक्तिगत लोकाचार 2–सामाजिक लोकाचार

3–धार्मिक लोकाचार 4–कृषि आधारित लोकाचार आदि

समनर के शब्दों में लोकाचारों से तात्पर्य ऐसे लोक प्रिय रिवाजों और परंपराओं से है जिसमें जनता के इस निर्णय का सम्मिलन हो चुका है कि वे सामाजिक कल्याण के सहायक है''

''जब जन रीतियॉ अपने समूह के कल्याण की भावना व सही गलत के मापदण्ड मिला लेती हैं तो लोकाचारों में बदल जाती है।[1]

''एक जनरीति उसी समय लोकचारों से एक हो जाती है जब उसके साथ कल्याण तत्व जोड़ दिया जाता है'' ।[2] ''जब जनरीतियों में उचित जीवन निर्वाह की एक दार्शनिकता और कल्याण की एक नीति आकर मिल जाती है तब वे लोकाचार बन जाती है। [3]

भाषा विदों ने भारतीय आर्य भाषाओं का उदय लगभग 1000 ई0 से माना है, बुन्देली का उद्भव काल निर्धारित करने के लिए इतिहास के लोक साक्ष्य पर विचार करना जरूरी है चन्देल नरेश महाराज गण्डदेव की 1023 ई0 में बुन्देली में साहित्य की एक कविता का उल्लेख इतिहास में मिलता है। 1023 में बुन्देली भाषा में रचना होने लगी थी, निश्चित है कि उसके दो –डेढ सौ वर्ष पूर्व अर्थात 9 वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे ही बुन्देली का प्रार्दुभाव हो गया था वस्तुतः 9 वीं शताबदी से ही चन्देल राज्य काल में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का सूत्र पात होता है इसीलिये बुन्देली का उद्भव 9 वीं शताब्दी में हुआ था [4]अतः यह निश्चित है बुन्देली संस्कृति चन्देलकाल में अपनी चरम सीमा पर थी। लोकाचार संस्कृति का प्रमुख तत्व है। लोकाचार शब्द दो शब्दों से

---

(1)मैकाईवर और पेज– 214 (2) लूम्ले

(3)समनर समाज शास्त्र के मूल तत्वरवीन्द्र नाथ मुकर्जी , भरत अग्रवाल पृ0–218

विवेक प्रकाशन–जवाहर नगर नई दिल्ली पुनमुद्रण 1998–99

(4)बुन्देली संस्कृति और साहित्य नर्मदा प्रसाद गुप्त पृ0 82

मिल कर बना है लोक + आचार अर्थात वह जनरीति जिसमें समाज का कल्याण हो सके। आवश्कता आविष्कार की जननी है तथा समय के साथ वस्तु समाज में बदलाव आता है। समाज के चिन्तन आचार विचार रहन, सहन खानपान में भी परिवर्तन हो जाता है उसी प्रकार समाज में प्रचलित लोकाचारों में न्यूनय्ता या अधिकता आती रहती है बुन्देलखण्ड में लोकाचार जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक निभाये जाते हैं षोडस संस्कार तो होते ही है किन्तु लोकाचार अपनी सीमा बढ़ा या घटा लेते हैं, सभी संस्कारों में समाज को सम्मिलित करना, सुख दुःख मिलकर भोगने की प्रवृति नजर आती है। प्रसव पीड़ा प्रारम्भ होने पर सर्वप्रथम घर, परिवार, आस पड़ोस की बड़ी बूढ़ी महिलाओं को आंमत्रित किया जाता है, उनके परामर्श पर दाई तथा पंडित को बुलाया जाता है तथा स्त्रियां हर्षातिरेक में गा उठती है''। ''कम्मर में उठी पीर राजा अपने''

1—ऐसी मिजाजिन दाई लाल को नरला ना छीने रे,[1]

x x x x x x x x x x x x x x x

2—कैसी मचल रही दाई अवध में कैसी मचल रही रे [2]

x x x x x x x x x x x x x x x x

प्रसविणी स्त्री के हाथ का पंजा तेल में डुबाकर दीवाल पर थापा लगाया जाता है जिसे बहरिया, बेइया विधि माता के नाम से जाना जाता है। प्रसव होते ही दाई नारा काट अपना नेग लेती है पृथ्वी पर स्पर्श होते ही थाली बजायी जाती है।

''मेरे भू पे डरे कहराय गोबिन्द लाल भुई पे डरे है''[3]

''आम घने महुआ घने'' आदि [4]

ताकि दरवाजे पर बैठा पंडित समय की गणना कर सके। छठी या षष्ठी पर छठवें दिन विधि माता की पूजा होती है। जात कर्म संस्कार में लकड़ी की तख्ती पर पंण्डित लिखता है उस तख्ती को प्रसविणी के चारपाई के नीचे रख देते हैं। निष्क्रमण संस्कार पर जच्चा एवं बच्चा को यथा रीति सूर्य या चन्द्र का दर्शन कराया जाता है दसवें दिन दष्टोन होता है

''दशरथ जू की रनियॉ राम लये कनियाँ'' [5]

4 दिन या 6 दिन दाई ही प्रसविणी की सेवा करती है जिसे बसोर की सोर कहा जाता है उसके पश्चात् नाइन प्रसिवणी की सेवा करती है 21 दिन बाद प्रसूत का सूतक समाप्त हो जाता है ननद के द्वारा प्रसूत गृह के दरवाजे स्वस्तिक रखवाया जाता है।

---

(1)(2)(3)(4)(5)—संकलित

"आई आई ननद बाई पाहुनी मन रंजना लाग"

बाई गिन गिन रोपों सींक अरे मन रंजना लाग।।"[1]

x x x x x x x x x x x x x x x x

सासो जो आवे चरूआ धरावें

जिठनी जो आवे लडुआ बँधावे

बहुआ जो आवे पलंग विछावें, विजना डुलावे

देवरा जो आवें वंसी बजावे

सखियाँ जो आवे मंगल गावे[2]

x x x x x x x x x x x x x x x x

कुआँ पूजने, पर

उपर बढ़र गहराय रे, तरै गोरी पनिया खौं निकरी

x x x x x x x x x x x x x x x x

गिर्रा ये डोरी डार गुइयाँ

x x x x x x x x x x x x x x x x

रून झुनियन बरसे गेह हो राजा गोरी भींज गयीं गैलन में

x x x x x x x x x x x x x x x x

हम पे मोतिन की माला [3] हमार कोऊ गगरी उतारे

x x x x x x x x x x x x x x x x

सास द्वारा चरूआ तथा जेठानियो द्वारा विस्वार के लडडू बनवाना देवरानियों द्वारा पंलग विछाय अन्य सेवा करना। आस पड़ोस की स्त्रियों द्वारा मंगल गान, तथा देवर द्वारा बन्दूक चलवाना बाजे बजवाना सवा मास में कुल देवी, कुल देवता की पूजा की जाती है। कुआँ पूजने के बाद ही प्रसूता स्त्री घर के काम काज करती है। एक वर्ष के अन्दर मुण्डन तथा तीसरे या 5 वे वर्ष में कन छेदन पाटी पूजन (बिद्यारंम) तत्पश्चात यज्ञोपवीत किया जाता है करना यज्ञोपवीत में भी विवाह के समान ही पूर्व मांगलिक कृत्य किये जाते है केवल बारात नहीं जाती है, वधू नहीं आती है विवाह के लोकोचारों में मातापिता ही कन्या के लिये वर की तलाश करते है। चुनाव के बाद 'वरीक्षा' (वर की इच्छा में) वर एवं वर पक्ष को आश्वसन दिया जाता है कि सम्बंध पक्का है। इसे पक्कयात भी कहते है। इसमें कन्या पक्ष वर का वस्त्र तथा कुछ मुद्रा भेंट स्वरूप प्रदान करता है तथा वर को पान खिलाता है विवाह की तिथि निश्चित हो जाने पर कन्या का पिता वर पक्ष को सूचना भेजता है जिसे पीली चिट्टी य सुत करा कहते है इसके बाद ही विवाह के पूर्व जो तैयारी की जाती है उनसे सम्बन्धित कार्य प्रारम्भ कर दिये जाते है सीधो छूना या महिलाये बुलौआ लगा कर अनाज बेसन मसाले दालें सत्तू चूल्हे इत्यादि बनाने का कार्य प्रारम्भ कर देती है लगुन के लिये कन्या

---

(1)(2)(3)—संकलित

का पिता पंडित बुला कर वैवाहिक कार्यक्रम तिथि व समय वार लग्न पत्रिका में लिखवाता है। एवं थान, थार, हल्दी, सुपारी, धान या गेहूँ, वस्त्र मुद्रिका या मुहर चन्दन सोने या चाँदी से मढ़ी सुपारी, हल्दी मिष्ठान, सूखे मेवे सहित लग्न पत्रिका वर पक्ष के यहाँ भेजता है। वर पक्ष लगुनियों का स्वागत भोजन शयन आदि की व्यवस्था करता है तथा अपने रिश्तेदार व्यवहारियों को बुलौआ द्वारा बुलाता है। ब्राहमण द्वारा वर तथा कन्या का भाई गणेश, गौरी नवग्रह का पूजन करते है तथा कन्या का भाई वर के पैर पखार कर आरती उतारता है और तिलक कर माला पहनाता है, पान खिलाता है, तथा उपर्युक्त समस्त साम्रगी सहित लग्न पत्रिका वर के हाथ पर रखता है स्त्रियां गा उठती है "राजा दशरथ फूले न समाय" [1] वर का पिता व्यवहारियों को लडडू बतासा इत्यादि बॉटता है विवाह कार्यक्रम 5 दिनों तक चलने वाला संस्कार है सर्वप्रथम मंगलवार रविवार को छोड़कर दोनों पक्षों के यहाँ मण्डप स्थापित किया जाता हैं पंडित को बुलाकर भूमि पूजन कर 5 मान्य वर्ग के व्यक्ति भूमि खोद कर मण्डप गाड़ देते है गणेश कलश स्थापित कर मण्डप के चारों ओर जौ बोये जाते है। सर्वप्रथम तिलाई होती हैं महिलाये तेल के पापड (खकरियाँ), बनाती है कडाही का पूजन करती है। देवा तुमरे भरौसे चढ़ी करइयॉ [2] तेल के दिन सर्वप्रथम लाला हरदौल तथा अन्य देवी देवताओं को तेल समर्पित कर गणेश जी को तेल चढ़ाया जाता है इसके पश्चात् वर कन्या को हल्दी तेल चढ़ाया जाता है। कुआँरी कन्याये तेल चढ़ाती है कौना बेटी तेल चढ़ाय[3] भाभी या मामी तेल को पूरे शरीर में फैलाकर मिला देती है। मण्डप के दिन सभी देवताओं को पूवर्जो को निमंत्रित किया जाता है "सरग नसेनी पाटे की लुइया ता चढ़ न्यौतो देय [4]तथा कुल देवता कुल देवी की पूजा हेतु संकल्प लिया जाता है। निमंत्रण देवताओं को पधारने का तथा सांप विच्छू, चीटीं चीटां आँधी, पानी, लड़ाई, भिड़ाई, बाल तथा अन्य मक्खी मकड़ी को याद कर तीन दिन तक ना आने की बिनती की जाती है। मण्डपाच्छादन किया जाता है। मण्डप के नीचे नये मिटटी के (घड़ा गगरी), इत्यादि में पानी भरा जाता है घर के सदस्यों को हल्दी पानी में घोल कर थापे लगाये जाते है। वर पक्ष अपने इष्ट मित्रों व्यवहारियों रिश्ततेदारो को मण्डप की पंगत भोजन पर आमंत्रित करता है कन्या पक्ष के यहाँ कच्चा भोजन बनाया जाता है।

वर तथा कन्या की मातायें अपने –2 मायके में भाइयों को निमंत्रण देने जाती है। "काँसे को बेला सबा सेर सतुआ" [5]पीले चावल देकर विवाह यज्ञ में सहयोग करने का निवेदन करती हैं

---

(1)(2)(3)(4)(5)–संकलित

इतने कार्य लोकाचार वर तथा कन्या पक्ष के यहाँ समान रूप से चलते है। टीका द्वारचार वाले दिन से वर एवं कन्या के यहाँ होने वाले लोकाचार अलग हो जाते है। वर पक्ष में वर के मामा के माता पिता को वस्त्र भेंट करता है जिसे भात कहते है। "अँगॅना बुहार आऊँ री" [1] वर को सजाया जाता है । वर की निकासी कर बारात प्रस्थान करती है। "अबेरे बन्ना काए सजे" [2] कन्या पक्ष में कन्या के घर सुहाग मांगने जाती है "सुहाग मांगन चली लाडली" [3] सात सुहागिन स्त्रियां व्रत रखती है तथा कन्या के साथ गुड़ घी खाकर व्रत तोड़ती हैं कन्या के माता पिता गाँठ जोड़कर उनको घी गुड खिलाते है पिता कन्या के चरणों पर सिर रख देता है कन्या उठाती है बारात आने पर कन्या पक्ष गाँव से कुछ दूर पर बारात का स्वागत अगवानी करता है जिसमें शर्बत और पूड़ियाँ भेट की जाती है जिसे पौन छक कहा जाता है बारात आने पर वर पक्ष कन्या पक्ष के यहॉ नाइ के द्वारा ऐपनवारी भेजता है जिससे सूचना मिलती है बारात द्वारचार के लिए तैयार है। द्वारचार द्वार + आचार में कन्या का पिता वर का स्वागत वस्त्र श्री फल, भेंट कर, तिलक, आरती, माला पहनाकर करता है अन्य सभी बारातियों का स्वागत माला, इत्र, भेंट प्रदान कर किया जाता है। कन्या वर के ऊपर चावल फेंक कर यह संदेश देती है कि पिता द्वारा चयनित वर उसे स्वीकार है। भोजनोपरान्त वर पक्ष कन्या के लिए लाई गयी भेंट वस्त्र आभूषण इत्यादि भेंट करता है तथा पावड़े विछा कर कन्या का सम्मान करता है जिसे चढ़ावा चढ़ाओं कहते है। "जनक भवन में मैं दिखआइ" [4] इसके पश्चात कन्या की माँ वर का स्वागत आरती उतार कर करती है। तथा अपना आँचल पकड़ा कर मण्डप के नीचे तक ले आती है जिसे परछन करना कहते है कन्यादान के समय कन्या का पिता कन्या को गोद में बिठाकर कन्या के हाथ हल्दी द्वारा पीले करता है माँ पानी डालकर सहयोग करती है। आटे की लोई बनाकर उसमें गुप्त दान के रूप में कुछ यथा सामर्थ रखा जाता है उस लोई को कन्या के हाथ पर रखता है तथा माता पिता कन्या का हाथ वर के हाथ में सौप देते है जिसे हथलोई तथा कन्या दान कहा जाता है। इसके पश्चात माता पिता कन्या के पैर पूजते है "इत गंगा उत जमुना" [5] जिसे बुन्देलखण्ड मे अत्यन्त पुण्य कार्य समझा जाता है। फेरे होते है, वर सात वचन कन्या को, कन्या पॉच वचन वर को देती है, और वर कन्या पति पत्नी के रूप में दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते हैं अन्य लौकिक रीतियों, कुवॅर कलेवा, बाती मिलाना, वर के जूते सालियों द्वारा गायब कर वर को परेशानी में डाल कर

---

(1)(2)(3)(4)(5)—संकलित

हँसी मजाक का वातावरण बनाती है। दूसरे दिन वर पक्ष कन्या पक्ष को सांयकाल आमंत्रित करता है उसके नाश्ते का इन्तजाम, इत्र फुलेल इत्यादि लगाये जाते है पान खिलाये जाते है तथा दोनों पक्षो द्वारा कविता कवित्त छन्द शास्त्रार्थ गायन, वादन होता है। या वर पक्ष द्वारा स्वांग नौटंकी, भड़ैती या बेड़िनियों का नृत्य का आयोजन करता है जिसे नौटाठी कहते है। कन्या पक्ष भोजन का इन्तजाम दोनों पक्षों के लिए करता है तीसरे दिन विदाई होती है बाबुल दये कन्यादान [1] कन्या पक्ष यथा सामर्थ दहेज देता है। ससुराल आने पर वर की बहन शर्वत पिला कर वधू का स्वागत करती है। देवी देवता के मंदिर हरदौल लाला के चबूतरा पर सर्वप्रथम आर्शीवाद लेने जाते है। यहाँ पर वर वधू को गोद में लेकर महिलायें नृत्य करती है। घर आने पर सास गुना (सूर्य के आकार का गोला मीठा पकवान के अन्दर से बधू का मुख सर्वप्रथम देखती है अन्य महिलाएँ बाद में देहरी से लेकर मण्डप तक ऐपन का आलेखन किया जाता है जिस पर वधू गृह प्रवेश करती है सास किसी ना किसी बहाने से वधू के पैर बधू को गृह लक्ष्मी मान कर छू लेती है मण्डप के नीचे वर वधू एक दूसरे का कंकन छोड़ते है जो नइयाँ धनुष को तोड़वो [2]तथा बधू चावल चने की दाल सभी महिलाअें को बाँटती है तत्पश्चात कुल देवता की पूजा होती है जिसे मॉय कहा जाता है। वधू उस पूजा में सम्मिलित होकर उस कुल में सम्मिलित हो जाती है रामचरित मानस क़ा अखण्ड पाठ या सत्य नारायण की कथा समाप्त होने पर मण्डप उखाड़ दिया जाता है।

अन्य लौकिक आचारों में दान का महत्व अत्यधिक है हर अच्छे बुरे समय दान देने का आचार होता है मृत्यु समय भी दान दिया जाता है। गोबर से लीप कर उस काले तिल, कुश डाल कर मरणासन्न मनुष्य को पृथ्वी पर दक्षिण दिशा की ओर करके लिटा दिया जाता है तथा अंतिम श्वॉस निकलने तक भगवान का संकीर्तन किया जाता है। मृत्यु उपरान्त सुंदर विमान सजाकर पिण्ड दान देकर शमशान ले जाया जाता है। शव यात्रा में शमिल होना पुण्य माना जाता है। शव को नहलाया जाता है, चन्दन लेपन के बाद कर्पूर हवन सामग्री से दसे इन्द्रियों को बन्द कर दिया जाता है शव को चिता पर लिटाकर सम्पूर्ण रूपसे लकड़ी एवं उपलो से ढँक दिया जाता है। अंन्त्येष्टि कर्म करने वाले के बाल घुटवा दिये जाते है। पिता के मरने पर मूँछ भी कटवा दी जाती है। पिण्डदान देने के पश्चात चिता को मुखाग्नि दी जाती है। तथा मनुष्यदेह पंचतत्व में विलीन हो जाती है। शव यात्रा में शामिल व्यक्ति श्मशान से लौटकर नीम की पत्ती चबाते है या नीम का

(1)(2)–संकलित

दातौन करते है। परिवार के सदस्य कालातिल, जौ के साथ तिलांजलि देते है। तालाब नदी के पास पीपल के पेड़ पर, एक गगरी जिसमें छिद्र होते है, लटकायी जाती है उसमें सुबह शाम दूध एवं शाम को दीपक रख कर प्रकाश की व्यवस्था करते है। मृत्यु पर सूतक मनाया जाता है अंत्येष्टि क्रिया करने वाला पवित्र होता है उसे छुआ नहीं जाता है। वह ब्रम्ह चारियों की भाँति भूमि शयन तथा अपने हाथ का बनाया हुआ भोजन (जो उपले की आग पर हाथ से बनायी हुई रोटी) ग्रहण करता है। नमक नहीं खाता है। घर में दो दिन चूल्हा नहीं जलाया जाता है। तीसरे दिन मृतक की अस्थियाँ चुन ली जाती है तथा भस्म को भर कर नदी में प्रवाह कर दी जाती है। भूमि जो दग्ध होती है उसे विधि विधान द्वारा दूध मिश्रित जल गंगा जल से सिंचन कर शान्त किया जाता है। सातवें दिन शुद्धता होती है, वैदिक विधान द्वारा पिण्ड दान दिया जाता है घर की भीतर से बाहर तक सफाई धुलाई या लिपाई होती है खून केरिश्ते वाले तालाब पर अपने बाल घुटवाते है स्त्रियॉ भी तालाब पर कपड़े पहिन कर ही स्नान करती है। नौवे दिन महा ब्राहमण को शैया वस्त्र सीधा समान इत्यादि दान दिया जाता है वह प्रसन्न होकर सूतक समाप्त करने का आदेश देता है। भोजन में कढी चावल नन्हें–2 दही बड़े जिन्हे कुचइयाँ कहते हैं बनाये जाते है सांय काल मृतक के नाम की पत्तल उसी पीपल के पास रख दी जाती है। परिवारीजन बिना बुलाये बिना आसन के दक्षिण की ओर मुँह करके, उकडूँ बैठकर भोजन कर जाते है वह मुँह से नहीं बोलते हैं एक बार ही भोजन दिया जाता है दुबारा नही परसा जाता है। बचा बचाया भोजन एवं साम्रगी गाय को खिलायी जाती है अथवा गढढा खोद कर गाड दी जाती है। घर की पुनः सफाई की जाती है तथा महिलाये पुनः रात्रि में स्नान करने के पश्चात ही घर में घुसती है 11 वें दिन दसगात्र किया जाता है। मृतक आत्मा पूवर्जो के साथ शामिल हो जाती है। सुहागिन स्त्री की त्रयोदशी 12 दिन में पुरूष एवं विधवा स्त्री की तेरहवी 13 दिन में की जाती है सुहागिन के मरने पर उसका श्रृंगार किया जाता है उसके दोनो हाथों में 4–4 लडडू दिये जाते है। पति का देहान्त हो जाने पर स्त्री को ब्रहमचारिणी की भांति जीवन व्यतीत करना पड़ता है वह श्रृंगार नहीं करती है। तेरहवी से इष्ट मित्र व्यवहारी रिश्तेदार सभी शामिल होते है ब्राह्मणों को पद या दक्षिणा दी जाती है। मान्य को दक्षिणा दी जाती है। स्त्री पुरूष नये कपडे पहिनते है स्त्रियाँ श्रृगांर करती हैं(चोटी मांग, बिन्दी , महावर लगाती है) तेरहवी के बाद पहला त्यौहार पड़ने पर रिश्तेदार पुनः आकर संवेदना व्यक्त करते हैं जिसे अनराये का त्यौहार कहा जाता है पितृ पक्ष में पितरों को पानी दिया

जाता है, श्राद्ध किया जाता है गया, वद्रीनाथ, कुरूक्षेत्र में पिण्डदान करने पर पितरो को मोक्ष प्राप्त हो जाता है ऐसा माना जाता है। उसके पश्चात तर्पण, पानी नहीं दिया जाता है तीर्थ जाना पुण्य होता है बाबड़ी मंदिर धर्मशाला, कुँआ तालाब, विद्यालय बनवाना पुण्य के कार्य माने जाते है। अहिंसा परम धर्म है। कन्या के विवाह में मदद भी पुण्य कार्य है। भोजन बाँटना भिक्षा देना परमार्थ करना दुःखी संकट ग्रस्त की रक्षा करना इत्यादि अन्य लोकाचारों में है। स्त्री रजस्वला होने के समय में 4 दिन अपृस्य मानी जाती है। मद्य निषेघ गौ माँस भक्षण दूसरों को सताना, पीड़ा देना गाय ब्राह्मण की हत्या पाप है उसके लिये प्राश्यचित स्वरूप मुहं ढंक्कर चार गाँवों में भिक्षा मांगना उसके पश्चात तीर्थ जाना भागवत या पुराण का वाचन कथा इत्यादि ब्राह्मणों को समाज को भोजन करवाना पड़ता है एक पत्नी एक पति रखना ही श्रेष्ठ है। बहुपत्नि बहुपति व्यभिचार माना जाता है काशी में प्राण त्याग करना शुभ है। प्रयाग संगम में शरीर छोड़ने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। अन्तःपुर पर पुरूष का प्रवेश निषेध होता है। जेठ से कुल बधुयें पर्दा करती है बड़े बूढ़ो का आदर सम्मान उनकी सेवा करना, बच्चों को भगवान स्वरूप मान कर स्नेह करना, प्यार करना आदि लोकाचार प्रचलित है।

लोक दर्शन

लोकदर्शन अर्थात लोक का दर्शन भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से है। वेद अपोरूषेय हैं, वेद उपनिषद पुराणों की लम्बी श्रृखंला है। ऋषियों की हजारो वर्षो की तपस्या और उनके चिन्तन का ही सुफल दर्शन है मनुष्यं क्या है? कहाँ से आया है ? कहाँ जायेगा,? ईश्वर क्या हैं ? इत्यादि यक्ष प्रश्न थे जिनका उत्तर ढूँढने में ऋषियों मुनियों ने युग के युग गवाँ दिये तत्पश्चात वेद वाणी, उपनिषद, पुराण आदि में उनका सारांश यह आया कि ईश्वर अजन्मा है, अनंत है, वह साकार भी है, निराकर भी है, उसका साक्षात्कार भी किया जा सकता है उसका अनुभव भी किया जा सकता है। प्रकृति ईश्वर है, समस्त वृहमाण्ड ईश्वर हैं जिसको ज्ञानियों ने नेति–2 कह निगम कह छोड़ दिया है। आत्मा ईश्वर का अंश है वह जीव रूप में पृथ्वी पर आती है तथा मोक्ष को प्राप्त कर उसी में समा जाती है। रामचरित मानस की पंक्ति कितनी उपयुक्त है "ईश्वर अंसजीव अविनाशी" जीव ईश्वर का अंश है, वह अविनासी है, वह कभी नही समाप्त होता है इन्ही जटिलताओं को समझने का प्रयास दर्शन हैं। बुन्देली लोक ने भारतीय संस्कृति की मुमुक्षु की चाह को मन से स्वीकारा है बुन्देली लोक में पुरूषार्थ के चारों अंगो का यथा समय पालन ही दर्शन है धर्म अर्थ काम मोक्ष में से मोक्ष लोक का प्रत्येक प्राणी चाहता हैं चाहे वह बधिक हो या गणिका वह किसी वर्ग का हो, उसका जीवकोपार्जन का माध्यम कोई भी कर्म रहा हो।

वेद उपनिषद, पुराणों की कथाओं की संजीवनी ने लोक दर्शन के वृक्ष की जड़ों को इतना गहरा कर दिया है लोक का साधारण से साधारण व्यक्ति अनपढ़ कृषक, "बृहम सत्यं, जगत मिथ्या" को भली भाँति महसूस करता था, समझता था। "आत्मापम्येन सर्वत्र" यही भारतीय लोक संस्कृति सिद्धान्त का स्वाभावत पालन करती हुई बुन्देलखण्ड की साधारण जनता वृहम तत्व और माया तत्व को जाने अनजाने समझती है। ब्रहम तो एंक मात्र चेतन सत्ता है जो कि जगत का कारण है वह सत्चित आनन्द स्वरूप तत्व है। ब्रहम के अतिरिक्त ओर कुछ सत्य नहीं है इसी कारण कहा जाता है–

सतगुरू परमेश्वर को मान देते हुये पार बृम्ह परमेश्वर सतगुरू का ध्यान करके बुन्देली जन मानस गाता है

तज के सतगुरू परमेश्वर को

इत उत फिरत झुकानौ

दुनियां अजब दिवानी

हजार कहा एकऊ न मानी।।[1]

भारतीय ग्राम वासी संस्कृति के मूलाधार, जिन्हें आज कल की परिभाषा में अपठ बनेंचर कहा जाता है भारतीय संस्कृति के जीवित जाग्रत प्रहरी है। जिस माया तत्व को हर्बर्ट स्पेन्सर आजीवन समझने में असमर्थ रहा, उसे हमारे अपठ भारतीय किसान सरलता से समझते है। भारतीय लोक संस्कृति के संरक्षक प्रतिष्ठापक ये ग्रामीण , परमहंस अथवा अबोध बालक की भांति स्वयं अपने को कुछ भी नहीं समझा करते ।"[2]

बुन्देली लोक दर्शन की व्यापकता ने लोक मानस के हृदय में कूट–कूट यह भाव भर दिया कि मनुष्य जीवन क्षण भंगुर है। मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है। वह कभी भी आ सकती है। उक्त पक्तियॉ दृष्टव्य है कि "पानी केरा बुलबुला अस मानस की जात"[3]

मनुष्य जन्म पानी के बुलबुले की भांति है जो किसी भी क्षण फूट सकता है। कल का कोई ठिकाना नहीं है। कल आवे अथवा ना आवे, ' वह आज पर अभी पर विश्वास करता है। उदाहरणार्थ दान मांगने वाले को युधिष्ठिर ने पूजा कार्य में व्यस्त होने के कारण कल आने के लिये कह दिया था, इस पर भीम खुशी से पागल हो उठे तथा तालियाँ बजा–2 कर कहने लगे कि भइया काल जयी हो गये है। युधिष्ठिर ने अपनी भूल महसूस की तथा क्षमा माँगी। इस प्रकरण का ही प्रभाव रहा होगा कि बुदेंलखण्ड का लोक मानस यह कह उठा कि

काल करै सो आज कर आज करै सौ अब।

पल मे परलय होयगी, बहुर करैगो कब।[4]

यह उक्ति लोक जीवन में चरितार्थ है सर्वत्र देखने को मिलती है धर्म चर्चाओं के माध्यम से लोक जानता है कि योनिया 84 लाख हैं जीव इन योनियों में भटकता रहता है

---

(1)बुन्देली लोक गीतों का दार्शनिक पक्ष–डॉ0 हरी मोहन पुरवार दै0 आज दि0 28 अक्टूबर 2003

(2)सम्मेलन पत्रिका महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज पृ0 21

(3)(4)कबीर

यह प्राणियों का चेतन तत्व है। बुन्देली लोक गीतों में इस जीव को हंस की संज्ञा देते हुये कहा गया है–

उड़ जायेगा हंस अकेला, दो दिन का जग मेला

कहीं कहीं पर इस जीव को मुनिया कहा गया हैं

पिंजरा से उड़ गई मुनियां हमार का कोऊ हैं नहियां। [1]

तथा मनुष्य का जन्म इन 84 लाख योनियाँ को धारण करने के पश्चात् ही मिलता है। मनुष्य का शरीर मिलना दुर्लभ है इसको पाने के लिये प्रत्येक जीवात्मा ईश्वर का ध्यान करती है। देवता,, ऋषि, मुनि, भी इसको पाने की याचना करते है। यथा– नर सम नहिं कबनिऊ देही। सुर नर मुनि सब जाचत येही"[2]। क्योकिं मनुष्य देह ही एक ऐसी है जिसके द्वारा साधन करके ही मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है, तथा मनुष्य का शरीर भी कुछ समयं के लिये ही मिलता है, इसमें आलस्य नहीं करना चाहिये जितना भी अर्चन कर सके उतना कर लेना चाहिये क्योंकि अन्त में पश्चाताप के सिवा कुछ भी नही रह जाता है।

दो पक्तियाँ दृष्टव्य है

"राम नाम की लूट हैं लूटत बनै से लूट।

अन्त काल पछतायेगों जब प्राण जायेगें छूट।।"[3]

क्योकि मृत्यु शाश्वत सत्य है एक दिन सभी को मरना है। यह पंच तत्व की काया के पॉचों तत्व छिति, जल, पावक, गगन, समीर अपने–2 में विलीन हो जायेगें, केवल इतिहास रह जाता है। मनुष्य चाहे चारपाई पर पड़े–2 ही मर जाये या फिर सत्कर्मो के द्वारा इतिहास में अमर हो जाय या साधन करके मोक्ष को प्राप्त हो जाय लोक जन इससे भली भॅाति परिचित थे–यथा।

"मनुष्य बने हैं मर जेबै को खटिया परे–परे मर जाँये"[4]

लोक की उक्ति कितनी सटीक है। जन्म और मृत्यु को लोक की दृष्टि में चिन्तन इस प्रकार से समझा है, मनुष्य देह दुर्लभ है, यह बहुत ही पुण्य एवं पूर्व जन्म के सत्कर्मो के फल

---

(1)बुन्देली लोक गीतों का दार्शनिक पक्ष–डॉ0 हरीमोहन पुरवार दै0 आज–दि0 28 अक्टूबर 2003

(2)तुलसी

(3)कबीर

(4)आल्हा नर्मदा प्रसाद गुप्त

स्वरूप ही प्राप्त होती है इसको व्यर्थ में नहीं गँवाना चाहिये ऐसा सुअवसर बार–2नहीं प्राप्त होता है। जिस प्रकार पेड़ से पत्ता अलग होकर निष्प्राण हो जाता है मृत्यु होने के पश्चात कार्य करने की क्षमता नहीं रह जाती है उदाहरणार्थ आल्हा काव्य की ये पक्तियाँ में देखा जा सकता है–

''मानुस देही जा दुर्लभ है, आहै समै ना बांरबार

पात टूट के ज्यों तरूवर को कभँऊ लौट ना लागै डार।।[1]

उक्त पक्तियॉ लोक के गहन चिन्तन, ज्ञान, दर्शन की परिचायक हैं, लोक के इसी दर्शन ने शायद सूफी सन्त कबीर को यह कहने के लिए बाध्य कर दिया होगा कि डाल से पत्ता टूटता है तो वह वायु के प्रवाह के ऊपर निर्भर हो जाता है वायु उसे किसी भी दिशा में ले जा सकती है वह पेड़ पर पुनः नूतन जन्म तभी ले सकता है जब ईश्वर उसकी सहायता करेगा। यथा

''टूटा पत्ता डाल से, ले गई पवन उड़ाय। अब के बिछड़े तब मिले जो हरि होय सुहाय''।।[2]

बुन्देली लोक मानस का बचपन लोक कथा, लोकगाथाओं में वर्णित पुराणों को सुनते–2 ही जवान होता है वह मृत्यु की सच्चाई को समझ लेता है कि पॉच तत्व की यह काया पॉच तत्वों के योग से बनी है। प्राण तत्व के निकल जाने पर अन्य चार तत्व बेकार हो जाते हैं वह अपने साथ कुछ भी नहीं ले जाता है। और न ही किसी की प्रतीक्षा करता है किसी भी प्रकार उसको रोका नहीं जा सकता है तथा वह किसी की भी बात नही मानता है। लोकोक्ति है '' मन चेती नई होत है, प्रभु चेती तत्काल''[3]

प्रभु का अंश प्रभु के उपर ही निर्भर करता है प्रभु की ही मर्जी चलती है जिसका साक्ष्य लोकगीत है। ''उड़ जैहे हंस अकेला, सो काऊ दिना''[4]

आत्मा रूपी हंस अपने साथ कुछ भी नहीं ले जाता है यद्यपि प्राणी माया के फेर में पड़कर जीवन भर संग्रह करता रहता है। परन्तु लोक दर्शन का लोक साक्ष्य है यह लोकगीत जन मानस को हमेशा सचेत करता रहता है कि संग्रह करना बेकार हैं ये तेरे महल बगीचे, सोना चॉदी , कपड़ा लत्ता तेरे कुछ भी काम नही आयेगा।

''कपड़े लत्ते बहुत हैं तेरे , बकसा रखे भरे–भरे।

---

(1)आल्हखण्ड

(2)कबीर

(3)(4)संकलित

अन्त समय ढाई गज कपड़ा तन पे जैहे डरे–डरे।।

रूपया पैसा सोना चाँदी ठुँसी तिजोरी भरे घरे।

एक टका ना प्यारें जैहै, अन्त समय मे साथ तेरे।।[1]

किन्तु माया तो माया ही है, वह चंचला, चपला है, वह सिवा नारायण के किसी की भी मीत नहीं होती है। उस माया के चगुंल से बचने के लिये लोक की चेतना पहले से जाग्रत है। यह ईश्वर की काल्पनिक शक्ति है जो उसकी ही आज्ञा से इस चराचर जगत में सभी कार्य करती है इस जाल में सभी जीव उसके पाश में बधें हैं। जीव जैसे ही ब्रहम से थोड़ा सा विलग होता है, यह माया उसे अपने जाल में जकड़ लेती है। इसी माया के लिये बुन्देलखण्ड का जनसामान्य गाता है–

"कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, इतई धरी रह जानें" [2]

यह माया ही है जो विषय वासर और मोह जाल, का ताना बाना बुनकर मनुष्य की बुद्धि पर ज्ञानी होने का विचार पैदा कर देती है यथा–

विसय वासना के फंदे पर मोह जाल में पानी

औरन को मूरख ठहरावत, आप बनत है ज्ञानी

आओ कुमत महरानी, तुम्हार गति कौनऊ ने न जानी।।" [3]

बाबा तुलसी जनमानस के रग रग में समाये हुये है। रामचरित मानस क्या स्त्री, पुरूष, बाल, वृद्ध, अबला,सबला, सभी का मार्ग दर्शक है पल–पल वह लोक को सन्मार्ग दिखाता है बाबा तुलसी ने जीवन के प्रत्येक पहलू, प्रत्येक रिश्ते को इस तरह व्यवहृत किया है बुन्देली लोक में प्रचलित गीत इस बात के प्रमाण है कि हर घर में जन्म लेने वाला बच्चा राम या कृष्ण है। हर गाँव अयोध्या तथा नन्दगाँव है, हर पिता दशरथ है या नन्द बाबा है। हरगाँ कौशिल्या है, या यशोदा है हर बहिन सुभद्रा है हर भाई लक्ष्मण है, तो मित्र सुग्रीव है, देवर लक्ष्मण है, हर गृहस्थ

---

(1)संकलित

(2)बुन्देली लोक गीतों का दार्शनिक पक्ष– डॉ0 हरी मोहन पुरवार दैनिक आज 28 अक्टूबर 2003

(3)वही

राम है। तो हर गृहिणी सीता है, हर गाय कामधेनु या सुरहिन है। गरीब से गरीब घर के कौरे (कोने) में कंचन दीपक सोने के दियला ही जलते है प्रत्येक छत पर कंचन कलस ही धराये जाते है। सोने के गडुआ है, हर कुँये का पानी गंगा जल है हर नदी गंगा, जमुना , सरयू बन जाती है सोने के थाल में भोजन परोसा जाता है, सूखी रोटी, चटनी छप्पन प्रकार के व्यंजन बन जाते है। पुत्र जन्म पर हर ससुर, ज्येष्ठ हीरा मोती ही लुटाते है। जोशियों को हाथी ही दान में दिया जाता है। ब्राहमण की दक्षिणा सुरहिन या कामधेनु ही होती है। रामचरित मानस रग रग रंगा लोक का जन मानस है तभी तो वह प्रत्येक व्यक्ति राम प्रत्येक स्त्री को सीता के रूप में देख कर प्रणाम करता है।

सीय राम मय सब जग जानी।

करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी [1]

इस भावना के प्रगाढ़ होने के फल स्वरूप ही यहाँ प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान , आदर होता हैं चाहे वह किसी भी देश प्रदेश का हो कोई भी भाषा भाषी हो किसी भी वर्ग का हो किसी भी वय का हो। यही भावना "अतिथि देवो भव के रूप में दर्शनीय है। अतिथि का सत्कार बुंदेली लोक में इस प्रकार किया जाता है कि जैसे सुदामा श्री कृष्ण के घर पहुँच गये हो या श्री कृष्ण विदुर की कुटिया में। मनुष्य की तो बात ही निराली है जिस लोक में नदी पर्वत, पेड़ हिंसक जानवरों तक की पूजा की जाती है वहाँ अपने पुत्र को भी नाम लेकर नहीं बुलाते है।

जब पुत्र बराबर का हो जाता है उसको भी लला या इसके साथ विशेषण बड़े, बारे, मँझले संझले लला इत्यादि से सम्बोधित किया जाता है। इसी प्रकार अनुज बधू एवं पुत्र बधुओं को मायके के गाँव के नाम से यथा झांसी वारी, मउ बारी, दतिया बारी, इत्यादि सम्बोधन प्रयोग किया जाता है।

किन्तु माया तो माया है। वह देवताओं और ऋषियें मुनियो को भी नहीं छोड़ती है वह माया तो जन्म लेते ही माँ की ममता भरी गोद तथा स्तन पान के सुख के रूप में ही अपना शिंकजा कसना शुरू कर देती है। यद्यपि भिक्षा याचन करते साधु बार-2 यही सन्देश देकर लोक को सचेत करते रहते है कि कलियुग में केवल प्रभुका नाम ही आधार है उसका स्मरण करने से ही भव सागर के पार उतरा जा सकता है।

---

(1)रामचरित मानस गो0 तुलसीदास

"कलिजुग केवल नाम अधारा, सुमिर–2 नर उतरहि पारा"[1]

तुलसी दास जी के इस महामंत्र की कितनी सरलतम वर्जना भावाव्यक्ति है जिसका लोक व्याकुल होकर अकेले में गा उठता है कि यह शरीर तो बिना आभूषण के सूना है किन्तु स्वर्ण आभूषण तो मिथ्या है सच्चा आभूषण तो भजन है भजन के आभूषण से अपने शरीर का श्रंगार कर ले, वह भी इस प्रकार कि सीता राम को अपने ह्रदय के स्थाई रूप बसा ले , सिया , रघुवीर के भजन गा ले, उसी से तेरा बेड़ा पार हो जायेगा

अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो जायेगा।

और सूनी देहिया हिरदे में बसा लेओं सीताराम भजन बोलो सिया रघुबर के

अरे सिया रघुवर के भजनई से लगा देव बेंडा पार हो" ।[2]

अरे मूर्ख मन तू अभी तक अन्जान है, तू जानता है हाड़ मांस का पिजंड़ा है, जिसमे आत्मा रूपी तोता अनमोल है वह श्वांस की डोरी से अटका हुआ है उसी में किलोल करता है इसका मन चंचल है। उसके वेग की गणना नही हो सकती है। लोक चिन्तन बार–2 यही कहता है कि रे मूर्ख मन, गति की चंचलता को छोड़ केवल प्रभु श्री राम नाम का स्मरण कर।

"केवल राम सुमिर लेओ मन मोरे अजान,

आठ काठ को पिजड़ा रे, पंछी अनमोल।

टंगों सांस की डोरी, बाधें करत किलोल।।[3]

मन को माया के चंगुल से बचाने के लिये बाबा कबीर दास जी लोक की भाषा में बच्चों के मुख से गा उठे। ये प्राणी भाग। माया रूपी बिल्ली प्रति पल घात लगाये बैठी है। वह किसी को भी नहीं छोड़ती है।

"ओ बाबा दौरों बिलैया झपटी,[4]

---

(1)रामचरित मानस गोस्वामी तुलसी दास

(2) बु0 स0 और साहित्य नर्मदा प्रसाद गुप्त पे ज 150

(3)(4) बुन्देलखण्डी लोकगीतो में सांगीतिक तत्व–डॉ वीणा श्रीवास्तव

इतना सावधान, इतनी चेतावनी के बाद भी माया से बचने के लिये हृदय की विशालता आवश्यक हैं बुन्देली लोक जीवन का उद्देश्य है

"दूसरों के लिये जिओ"

शास्त्रानुसार "सत्य अहिंसा परमोधर्मा: लोक वाक्य बन गये , परोपकार से बढकर कोई पुण्य नहीं, दूसरों को पीड़ा देने से बड़ा जघन्य कोई अपराध नहीं है। रामचरित मानस की चौपाई दृष्टव्य है।

परिहत सरिस धर्म नहि भाई पर पीड़ा सम नहि अधमाई"[1]

किसी निर्बल गरीब असहाय को कभी मत सताओ, क्योंकि आत्मा परमात्मा का अंश है।

"आत्मा सो परमात्मा"[2]

विधि का विधान है आत्मा से निकला हुआ वाक्य चुनौती दे देता है यथा।

"निर्बल का ना सताइयो, जाकी मोटी हाय।

मुई खाल की श्वांस सों, सार भस्म हुई जाय।।[3] .

माया का पर्दा चर्म चक्षुओ पर पडा रहता है चर्म चक्षुओ से इस पर्दा को हटाने तथा ज्ञान चक्षुओ को खोलने के लिये लोक सदैव चिन्तित रहा है यही तो लोक का दर्शन है। लोक बार–बार कहता हैं कि "माया महा ठगिनी हभ जानी" केवल ब्रहम सत्य है जगत मिथ्या है झूठा है, सारे चर्म चक्षुओं से देखे जाना वाला जगत असत्य है। सारे रिश्ते नाते, केवल देह तक ही सीमित है। सारे बाग बगीचे केवल यही के है, प्राण के निकल जाने के बाद निर्जीव देह मिट्टी मोल हो जाती है उसको जला कर भस्म कर देते हैं अपना होने का दंम भरने वाले एक भी कोई पास नहीं आते, बल्कि वही लोग जो प्राणी की मृत्यु की कल्पना करने मात्र से सिहर उठते है, प्राणों के रहते यह जो कहते है, कि हम आपके बिना कैसे जीवन व्यतीत करेगें हम तो मर जायेगें यह दु:ख हम नहीं सह पायेगे आपके बिना जिन्दगी की मैने कल्पना भी नहीं की हैं, वही लोग उस

---

(1)रामचरित मानस गो0 तुलसीदास

(2)संकलित

(3)कबीर

व्यक्ति के नश्वर शरीर से घृणा करने लगते है, तथा उसको होली के समान जला कर नष्ट कर देते है। बुदेली लोक ने आत्म सात कर लिया है कि "जहाँ लग देह तहाँ लग नाते"[1]।

देह कि सजीव रहते ही सारे रिश्ते नाते रहते है, प्राण के निकल जाने के बाद एक ही पल में सब बदल जाते है यह दृश्य देख लोक चिन्तन स्वयं ही गा उठा

"अपनो कोऊ नइयाँ रे, अपनो कोऊ नइयौरे

बिना राम रंघुनन्दन अपनो कोऊ नइयारे

(1)बाग लगाये बगैचा लगाये, बीच विच रोपे केरा राम जू बीज विच रोपे केरा

जब जे हंसा निकर जात है लुटन लगे सब डेरा।।

(2) चार जनै मिल खाट उठायी, चढ़े काठ की छोड़ी

राम जू " " "

जाय उतारी जमुन रेत पे, फूँक दई जैसी होरी।।

(3)हाड़ जरै. जैसें चन्दन लकड़ी केस जरैं जैसे घास

राम जू " " "

कुन्दन जैसी काया जर गेयी कोऊ ना आयो पास।।[2]

ऐसे दारूण दृश्य को देखकर लोक दहल उठा. आवा गमन, बार बार आना बार प्रत्येक बार यही दुर्दशा, आने में भी घोर नर्क भोगना माता का गर्भ में वास भी नर्क का वास है हाथ पैर बॅधें चारों ओर धुप्प अधेंरा न प्रकाश न हवा न भोजन न पानी, माता के भोजन पर आश्रित, चाहे खट्ठा या तीखा, या निर्जला। मां के आचार विचार का खान पान,रहन सहन का प्रत्यक्ष असर गर्भ से बाहर आने पर भी असहनीय पीड़ा भोगना। यह भी चिन्तन है।

"जनमत मरत दुसह दुःख होई"[3]

यह विचार करके देखे तो प्रकृति ने दोनों समय कष्ट को ब्यान करने की इजाजत नहीं दी है। जन्म के समय भी प्राणी भौतिक जगत के संसर्ग में आकर चौक उठता है और "कहाँ"

---

(1)रामचरित मानस गो0 तुलसीदास

(2)संकलित

(3)रामचरित मानस गो0 तुलसीदास

"कहाँ" ही कह पाता है तथा मृत्यु के समय भी ज्ञानेन्द्रियाँ कर्मेन्द्रियॉ एक–2 करके शिथिल होती हैं मृत्यु समय के दृश्य का लोकगीत साक्ष्य स्वरूप प्रस्तुत है।

"बालापन हॅस खेल गवाये
जवानी में लग गये काम,
आये बुढ़ापा सिर डोलन लागे
मुख निकरत नई राम
कफ और खॉसी ने रूंद लये है।
जम के बजत निसान
कहै कबीर सुनो भई साधो,
धोखे में कड गये प्रान[1]

लोक मानस वैरागी हो गया, वैराग्य ने सन्यास की ओर प्रस्थान किया तथा सन्यास ने मोक्ष की ओर लोक का मानस मुमुक्षु हो उठा और मोक्ष के साधन की तलाश मे वह वैरागी हँस को घर आँगन सगे सम्बन्धी कुछ भी सुख नही देता है वह तो अपने प्रीतम प्यारे के पास उड़ कर कैलास पर्वत के शिखर पर कदली वन के जंगल में पहुँच जाना चाहता है।

"उड़ जारे पर्वत बारे सुअना,
घर आंगना न सुहाय
के उड़ जा रे कैलास सिखर पे,
के कदली वन डाँग हो।।[2]

घर ऑगन परिवार समाज रिश्ते नाते, सबसे विरक्ति होने पर उन सीमाओं से उपर उठकर लोक दर्शन की "बसुधैव कुटुम्बकम" की धारा ही रास आती है। अधीर मन लोक भाषा में गा उठता है–

"नर्मदा अरे माता लगै रे
अरे माता लगैरे तिरबेनी लगै मोरी बेन रे [3]

---

(1)संकलित

(2)संकलित

(3)बुन्देलखण्डी लोकगीतों में सांगीतिक तत्व डॉ0 वीणा श्रीवास्तव

नर्मदा पुण्य सलिला सदा प्रवाह मयी माता समान तथा गंगा यमुना का संगम त्रिवेणी बहन के समान लगने लगती है। जो मोक्ष प्रदायिनी है।

ईश्वर एक है। उसके रूप विभिन्न हैं भारत वर्ष के प्रत्येक तीर्थ एक दूसरे से जुड़े हुये है।चाहे वह मथुरा हो, द्वारिका हो, जगन्नाथ पुरी हो लोक भाषा में इसको कितनी सरल, भाषा में अभिव्यक्त किया हैं।

"एक पेड़ मथुरा जमो, डार गयी जग़न्नाथ रे [1]

फूलो फल जो द्वारिका, फल लागे बद्रीनाथ रे।।

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना की कितनी सरलतम् अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय एकता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है।

मोक्ष की तलाश में मुमक्षु "लोक चिन्तन "कासी" की भी याद दिलाता है। जहाँ भगवान शिव सायुज्य मुक्ति प्रदान करते हैं। कहते हैं काशी में शरीर त्यागने पर मुक्ति मिलती है। इसी धारणा को लोक दर्शन मान्यता प्रदान करता हुआ कहता है।

"सपर लेओ कासी जू की झिंरियाँ

अरे कासी जू की झिंरियॉ

कट जैहे जनम को पाप रे [2]

दर्शन का चतुर्थ स्तम्भ जगत माना गया है इस जगत की वास्तविक स्थिति मिथ्या अथवा असत्य है क्योंकि यहां पर सभी कुछ काल को प्राप्त होता है, इस जगत अथवा संसार की तुलना तो रैन बसेरा से की गई हैं।

अरे मन जौ जात नाम बसेरा, हात पसारे चला जायेगा

या देही का गरव न कीजै, पंछी रैन बसेरा

इस जगत को कागज का महल भी कहा गया हैं इसकी स्थिति कावर्णन करते हुये उससे अलग रहने का उपाय बतलाते हुये कहा गया है–

---

(1)बुन्देलखण्डी लोकगीतो में सांगीतिक तत्व डॉ0 वीणा श्रीवास्तव

(2)उर्पयुक्त

यह संसार महत, कागद कौ, बूंद पड़े घुर जाने

हमखौ रूप जगत में आकै, राम नाम गुन गाने।"[1]

यह जगत कैसे मिटता हैं इसका अति सुन्दर वर्णन इस बुन्देली दोहे में दृष्टव्य हैं–

वही देह वही नाम हैं वही ग्राम वही ठाम

दुल्हन कहिबो मिट गयो, भयो डुकरिया नाम

एक अन्य उदाहरण में इस नश्वर शरीर के लक्षण का अति सुन्दर वर्णन करते हुये कहा गया हैं–

सुरती कहै में सुन्दर नार, पहले देती दांत उखार

दूसरे आंख जोति हर लेऊँ तिसरे जल्द बूढ़ कर देऊं।।[2]

---

(1)बुन्देली लोक गीतों का दार्शनिक पक्ष–डॉ0 हरीमोहन पुरवार दैनिक आज दिनांक 28 अक्टूबर 2003

(2)उर्पयुक्त

लोक शब्द की व्याख्या

लोक शब्द इतना व्यापक है कि उसे शब्दों में बाँधना आसान नही है। लोको का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाला मानव ही सर्व दर्शी होता है अर्थात लोक जीवन जो अुनभूति के स्तर पर हृदयंगम करता है मानस चक्षु से देखता परखता है वह सर्वदर्शी बन जाता है।

प्रत्यक्ष दर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः[1]

लोक का अर्थ है " प्रकाश" उसका अर्थ है– इन्द्रिय गोचर संसार।

इन्द्रिय अनुभव का जो भी विषय है वह अनुभव अकेले पर्याप्त नही होता – यह सही है क्योंकि सब कुछ प्रत्यक्ष नहीं होता [2]

हलायुध कोष में लोक का एक अर्थ मनुष्य है – सम्पूर्ण मनुष्य जाति और आप्टे के संस्कृत में अंग्रेजी कोष में भी इसके प्रजा समूह और संसार जैसे अर्थ बतायें है [3]

लोक ही सबकुछ है लोक से परे कुछ भी नहीं है। लोक से इतर कोई स्थान नही है हम लोक से ही आते हैं लोक में रहते हैं लोक में ही जाते हैं अर्थात लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है उसमें भूत वर्तमान और भविष्य सभी कुछ संचित रहता है। [4]

लोक शब्द संस्कृत व्याकरण के अनुसार लोक दर्शन के अर्थ में प्रयुक्त होता है जैस अबलोकन में "विलोक" में लोक इसी देखने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है 'अ' उपसर्ग के साथ जुड़कर आलोक बन जाता है और वह उस प्रकाश का धोतन करता है जिसके माध्यम से हम वस्तु या सृष्टि को ठीक–ठाक देख सकते है। लोक शब्द संस्कृत के लोक दर्शन धातु में ठञ प्रत्यय लगने से बना है [5] जिसका अर्थ भी देखना है लट् लकार अन्य पुरूष एक बचन में लोकते रूप बनता हैं। जिसका अर्थ हैं देखने वाला अतः दर्शक जन–समुदाय लोक है [6]

---

(1)डॉ0 विद्या निवास मिश्र– लोक कलादर्पण राष्ट्रीय कला महोत्सव स्मारिका, वी 203 ओन्ती आर

(2)भवन विधान सभा मार्ग, लखनऊ उत्तर प्रदेश

(3)डॉ0 शैलेन्द्र नाथ श्रीवास्तव –राष्ट्रीय अध्यक्ष संकार भारती

(4)डॉ0 सुरेश गौतम –

(5)महाभारत – उद्योग पर्व 43–36 सिद्धान्त कौमुदी पृ0 417 (वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई 1989)

(6)हिन्दी साहित्य का वृत्त इतिहास –सोडस भाग प्रस्तावना पृ0 1

धार्मिक ग्रन्थो पुराणों संस्कृत ग्रन्थों (आचार) में बार–बार लोक शब्द का प्रयोग हुआ, जिसका अर्थ समस्त संसार से ही लगाया जाता है। ईश्वर के नामों की श्रृंखला में त्रिलोकी नाथ नाम आता है जिसका अर्थ है तीनों लोकों के नाथ – अर्थात त्रिलोक का अर्थ पृथ्वी लोक, आकाश, लोक , पाताल लोक है

लोकशब्द का अर्थ पूर्ण रूपेण व्यक्तं करना कठिन है लोक भारतीय वांग्मय का एक बहुत प्रचीन शब्द है। और अनेक अर्थो में इसको व्यवहृत किया जाता रहा है।

शब्द कोषों के अनुसार लोक के दो ही प्रमुख अर्थ है प्रथम तो त्रिलोक जिसके अन्तर्गत पृथ्वी आकाश पाताल, या दूसरे शब्दों में इहलोक, परलोक शब्दों का ही प्रयोग जन सामान्य या जन साधारण का बोधक है [1]

ईसा पर्व से ही इस शब्द का प्रयोग भारतीय बाङ्मय में होता रहा है।

प्रयोग की दृष्टि से इस शब्द की प्राचीनता को सभी ने एक मत से स्वीकार किया हैं वेदों में पुराणों, उपनिषदों, सहिंताओं, ब्रह्मण ग्रन्थों में इस शब्द का बार–बार प्रयोग इसकी प्रचीनता को सिद्ध करता है।

विभिन्न अर्थो मे इस शब्द का प्रयोग इसकी व्यापकता तथा अर्थ विस्तार को स्पष्ट करती है साहित्यिक ऐतिहासिक ग्रन्थ तथा मध्यकालीन ग्रन्थों में इसके प्रयोग ने इसमें और वृद्धि कर दी।

संस्कृत में लोक शब्द का अर्थ स्थानवाची हैं तो साथ ही जीववाची भी है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में एक स्थान पर जीव तथा स्थान दोनों ही अर्थो में प्रयोग हुआ है। [2] प्रायः जन शब्द भी लोक का समानार्थी माना जाता है इस शब्द का एक अर्थ बहुत पहले से चला आ रहा है। पृथ्वी सूक्त में जन शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में मिलता है

---

(1) हिन्दी विश्व कोष (1) लोक (सु0 पु0) लोकयते इतिहास कार जिसके अनुसार लोक सात है भूलोक, भुवलोक, स्वलाक, महलोक (भवन) जनलोक, तपलोक और सप्य लोक हिन्दी विश्व कोष सं0 धीरेन्द्र वर्मा पृ0 86

(2)ऋग्वेद पुरूष सूक्त–10/90/14 नाम्या आसीदं

अर्थात इसके अनुसार विभिन्नताओं के रहते हुये धरती एक है उसमें रहने वाले सभी व्यक्ति एक है पृथ्वी सूक्त में जन का धरती पर समान अधिकार स्वीकार किया गया है। एक अन्यस्थल पर भारतीयों के लिए जन शब्द का प्रयोग किया गया है।[1]

लोक शब्द का प्रयोग अर्थो में (जैसे–स्थान जन, समुदाय मानव शरीर आदि) के लिए प्रयोग किया गया है।[2]

एक नयनवा भवाप्तव्यं पर्व एव चकर्यर्णि। गीता 3/22

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम।" 3/24

महाभारत कार व्यास ने लोक को अंजन की शलाका भी बताया है जो उन्मीलित चक्षुओं को खोल दे। ताकि अज्ञान के अंधकार का नाश हो जावे।[3]

अथर्ववेद में लोक शब्द का इस प्रकार प्रयोग किया गया है, कि पृथ्वी पर प्राप्त सभी वस्तुओं के लिये लोक शब्द का प्रयोग हुआ है 'यहॉ पृथ्वी से यह प्रार्थना की गई है कि वह इस विशद लोक को हमारे अनुकूल करे। जैमिनीय उपनिषद में लोक शब्द का प्रयोग विराट तथा विस्तृत के अर्थ में हुआ है लोक इतना व्यापक और विशाल है जिसे जानना सरल नही है।[5]

लोक विशद व्यापक विराट विस्तृत सर्व व्यापक , सार्वकालिक, सार्वदेशिक तथा परम्परानुमोदित मानसिकता है, जो किसी शास्त्रीय अथवा अभिजात्य संस्कारों तथा पांडित्य की लक्ष्मण रेखा में बद्ध नहीं है

---

(1)य इमें रोदली उमें अहमिन्द्रमतु परवं विश्वाभिउस्य रक्षति ब्रहोदं भारतं जनं।।

ऋग्वेद 3/53/12

(2)नमे पार्थारिन्त कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किवन

(3)महाभारत–

(4)सत्यं बृहददत मुग्रं दीक्षा तयो, बृहम् यज्ञः यज्ञः पृथिवी धारयंति।

सा नो भूतस्य मथस्य, पल्यु, सं लोकं पृथिवी नः कृणो तु।।

(5)बहु व्याहितों वा अयं बहुतो लोकः क एतदअस्य पुनरीहितो अयात् जैमिनीय उपनिषद ब्रा 3/28

यह गाँव की झोपड़ी से महानगरीय जीवन की आकाशचुम्बी अदालिका में रहने वाले मानस तक विद्यमान है'' [1] महान वैयाकरण पाणिनि ने अपने महान व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी में लोक शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है उन्होने इसमें ठञ प्रत्यय लगा कर लौकिक सार्वलौकिक शब्दो की निष्पत्ति की है [2]पाणिनी ने लोक और वेद में एडत्र गो शब्द के पद के अन्त में विकल्प भाव होना स्वीकारते हुये वेद से लोक की पृथक सत्ता स्वीकार की है [3]

इस धारणा की पुष्टि प्राचीन आर्य ग्रन्थों में वर्णित ''लोके च वेदे च'' की उक्ति से होती है जो विद्वान वेदों से लोक को भिन्न मानते है। वे भी उसके महत्व तथा अस्तित्व को मानते थे। लोक सदैव वेद का अनुसरण नहीं करता है कुछ विद्वान मानते है कि वेद से पहले लोक का अस्तित्व था तथा बहुत बातें ऐसी भी थी जो वेदों में नही थी, तथा कुछ चीजे वेदों में ही थी लोक में नहीं है। किन्तु ''लोके च वेदे'' के अन्तर्गत वही सभी कुछ था जो दोनों में ही विद्यमान था। ''कुछ आधुनिक विद्वानों के अनुसार वेदों में शक्तिपूजा का विधान लोक जीवन से आया वैदिक साहित्य में विवाह संस्कार और पुत्र जन्म आदि के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों का अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है।'' [4]

लोक शब्द का प्रयोग महाभाष्यकार पतंजलि ने लोक प्रचलित गौः शब्द के अनेक रूपों का उल्लेख अपने ग्रन्थ महाभाष्य में किया है। [5]

अज्ञानाविमिरा हस्य लोकस्य तु विचेपटतः। ज्ञानाजनं शकाकमिः नेत्रोंन्मीलन कारकम्।।

---

(1)हिन्दी का प्रादेशिक लोक साहित्य शास्त्र पृ0 189–90 स्मारिका लोक कला दर्पण

(2)लोक सर्व लोकष्ठज /5/1/44 तत्र विदित इव्यर्षे/लौकिकः/अनुशतिका दित्वा दुमयपद वृद्धिः सर्व लौकिकः।

(3)लोके वेदे चैड़यन्त गोरति का प्रकृतिभाव स्यात्पंदातें।

गो अभ्रमा गोडयम। 6/1/22 सूत्र की वृति दृष्टव्य है।

(4)लोककला दर्पण – डॉ0 शैलेन्द्र नाथ चक्रवर्ती पृ0 20

(5)केषां शब्दानाम् लौकिकानां वैदिकानांच । एकस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशा तद्यथा गौरिल्यस्य शब्दस्य गावी–गौवी – गोता– गोपोतलिकेप्ये व मादयोडप भ्रंशाः।।

महाभाष्य –प्रथम आहि्नक

श्रीमद्भागवत गीता में एक स्थान पर लोक शब्द अर्थ लोक संग्रह के लिए प्रयुक्त हुआ, जिसका आशय हैं'' सृष्टि संचालन को सुरक्षित बनाये रखना, उसकी व्यवस्था में किसी प्रकार व्यवधान ना डाल कर उसके सहायक बन कर उनकी सहायता करना 'लोक संग्रह'' कहलाता हैं, लोक संग्रह और लोकोक्षय द्वारा क्रमशः त्रिलोक, जनसाधारण अथवा जन समूह का बोध कराया गया है।[1]

प्रायः जन शब्द भी लोक का समानार्थी माना जाता है। परन्तु इस शब्द का एक ही अर्थ बहुत पहले से चला आ रहा हैं। लोक अनेकार्थी नहीं रहा है पृथ्वी सूक्त में ''जन'' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ हुआ है जानपद शब्द से भी जन शब्द का व्यापक अर्थ निकलता है अशोक के शिला लेख में भी ''जनपद पद पदमा च मनसा'' में भी इसका प्रयोग ही सामान्य प्रजावर्ग के लिए हुआ है[2]। अमरकोष कार ने अनेक लोकों का उल्लेख करते हुये हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक विस्तृत प्रदेश अर्थात भारत वर्ष को लोक कहा है, और लोक का प्रयोग स्वर्गादि लोक तथा जन के अर्थो में भी किया है[3]। पर जन, परिजन ''ऋग्वेद और अथर्ववेद में दिव्य और पार्थिक इन दो अर्थो में लोक शब्द का प्रयोग किया गया है बाजसनेयी संहिता में समानार्थी प्रयोग मिलता है व्राहमण ग्रन्थों और वृहदारण्यक में भी यही प्रचिलित रूप पाया जाता है। लोक का विशिष्ट अर्थ वेद विरोधी भी है ऐसा प्रतीत होता है कि उसी समय से लोक और वेद कहने की परंम्परा चल पड़ी होगी।''[4] मनु स्मृति में की एक टीका के अनुसार वेद की दो धारायें चली वैदिकी और तात्रिंकी

''मनु स्मृति की दो धाराओं में तात्रिंकी

---

(1)कर्मसेव हि संसिद्विमास्थित जनकादयः।

लोक सग्रंहमेवापि संपश्यन कर्तुमहसि।। भगवदगीता 3/20

(2)अशोक के शिलालेख पृ0 177 गिरिवार धारा मुख्यतः

(3)अर्थो जगती लोकोविष्टयं भुवनं जगत।

लोकोत्यं भारतवर्ष शरावत्या स्तुगो बधें।।

अमरकोश 6 पृ0 47

आकरोति दिवेवाकः लोकस्तु भुवने जने।

(3) वही पृ0 192 लोक 21

(4)नमर्देश्वर चतुर्वेदी लोक संस्कृति की आत्मा सम्मेलन पत्रिका पृ0 119

लोकानुवर्तिनी थी जिसमें नियम, आग्रह का अभाव था, ऊँच नीच का अभेद था लोकायत दर्शन भी वैदिक दर्शन से भिन्न था धीरे–धीरे वैदिक़ प्रभाव घटता गया तथा लौकिक प्रभाव बढ़ता गया लोक का विस्तार होता चला गया।" [1]

आर्य ग्रन्थों में लोक का अर्थ व्यापक विराट आदि अर्थो में प्रयुक्त हुआ है आंग्ल भाषा में लोक के लिए फोक (FOLK) शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो कि एंग्लोसेक्शन शब्द (FOIC) से व्युत्पन्न हैं जर्मन में इसका (VOLK) रूप मिलता है। योरोप की भाषाओं में वर्तनी तथा उच्चारण में भिन्नता होने के कारण इसके रूपान्तर प्राप्त होते है इन्साइकलोपीडिया पाश्चात्य विद्वानों ने विशेषत नृतत्व शास्त्री, जाति शास्त्री, समाजशास्त्री, विद्वानों ने फोक शब्द का प्रयोग किया है उनके लिए फोक ग्राम्य ग्रामीण असभ्य, और असंस्कृत मानव समूह था। हेडेन रिवर्स, रेडक्लिफ, सिजविक आदि आदिम समाज, वैचित्रय पूर्ण रीति रिवाजों जादू– टोनों आदि में विश्वास रखने वाले दुर्गम, जंगलों पहाड़ों और अल्पज्ञात वासियों को ही फोक के अन्तर्गत परिगणित किया जो विकसित सम्यता के प्रभाव और अनुकरण से अलग थे वे मुख्य धारा में नही थे अविशिष्ट थे अपेक्षिति है। "[2]

इन्साईकलोपीडिया विट्रेनिका 1953 खण्ड में फोक का अर्थ है ग्रामीण समुदाय। भारतीय विद्वानों ने भी इस अनुवाद के ही अर्थ में लोक को देखा है। लोक का तात्पर्य सर्व साधारण जनता से है, तथा दीन, हीन, दलित, शोषित, पतित, पीड़ित, लोग और जंगली जातियों

कोल, भील, संथाल, गोंड, नाग, शक, हूण , किरात, पुक्कस, यवन, खस इत्यादि सभी लोक समुदाय मिलकर लोक संज्ञा को प्राप्त होता है। [3] लोक को फोक अर्थ नहीं मानते हुये लोक को व्यापक अर्थ में ही देखा गया पर लोक का शब्द अत्यन्त. व्यापक और सम है। यह वृहम की ही तरह अनन्त अक्षर और असीम हैं जीवन का प्रतीक है। और जन का पर्याय है, लोक सीमा केवल ग्राम यासाधारण जनता तक ही नही ऐसा संकीर्ण अर्थ

---

(1)डॉ0 शैलेन्द्र नाथ श्रीवास्तव –स्मारिका लोक कला संग्रह पृ0 19

(2) " " "' " 20

(3)डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल –सम्मेलन पत्रिका पृ0 67

तो बहुत बड़ी साहित्यिक ही नहीं, सामाजिक और सांस्कृतिक भूल का द्योतक है [1] गाँव तथा गॉव की अपढ़, बनेचर, असभ्य समाज ही लोक का पर्याय हैं। भारत में पाश्चात्य सभ्यता के पाँव पसारने से ही गॉव और नगर जैसे दो स्थान हो गये है ग्राम लोक का पर्याय है नगर से उपेक्षित स्थान विशेष के रूप में ग्राम का चित्रांकन मानवीय संस्कृति के पतन का प्रतीक हैं , यह ग्राम और नगर का आवरण समाप्त होते हुये सम्पूर्ण भारत को आत्म वाद, ईश्वर वाद आस्तिकता एक सूत्र में बांधती है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले हुये भू–भाग पर पनपता हुआ समाज भारतीय लोक है''। [2]

इस प्रकार वर्तमान समय में लोक के अर्थ के सम्बन्ध में दो प्रकार के मत मिलते है एक वह जो फोक को लोक मानते है, और उनके अनुसार लोक आदिन, असभ्य, जंगली, बनेचर तथा ग्राम्य जीवन है जो नगरीय सभ्यता से दूर जंगलों पहाड़ों पर निवास करते है। दूसरे लोक की व्यापक समग्र राष्ट्र या सम्पूर्ण जन समुदाय मानते है। भारतीय साहित्य के और संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में ''लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है। उसने भूत वर्तमान भविष्य सभी कुछ संचित रहता है लोक राष्ट्र का स्वरूप है लोक । लोक धात्री सर्व भूता माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव–यही हमारे जीवन का अध्यात्म शास्त्र है '[3] इसी विचार को डॉ0 विद्या निवास मिश्र ने अपने शब्दों में प्रकट करते हुये कहा है कि '' लोक देश का ही एक अनुभाविक रूप है इस प्रकार लोक अपने में विशाल अर्थ समेटता है इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय चिन्तन की अवधारणा में लोक विराट परिकल्पना में परिलक्षित है। लोक को ग्राम नगर, जंगल, पहाड़ जैसें स्थानों में बाँटना अनुचित है।[4]

इस प्रकार भारतीय ग्रन्थों में लोक, पृथ्वी है अन्तरिक्ष हैं, स्थान है, इहलोक , परलोक है, वायु लोक सप्त लोक है, तथा उसका संसार स्थान विशेष, निवास, स्थान, दिशा, लोग, प्राणी, समाज प्रजा, जन सामान्य आदि है इन अर्थो में लोक कही वेदों पर आधारित है तो कहीं लोकानुवर्ती है किन्तु दोनों एक दूसरे के

---

(1)लक्ष्मीधर बाजपेई –सम्मेलन पत्रिका पृ0 112

(2)श्री राम लाल– '' '' 87

(3)डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल –'' '' 67

(4) डॉ0 विद्या निवास मिश्र–

पूरक है। जहाँ परम्परा लिखित , शास्त्रीय प्रभावित है, वैदिक है तो वही लोक परम्पराओं की धारा अनुमोदित, सांस्कारिक, व्यवहार, एवं मानव जीवन की गतिविधियाँ है, । लोक और वेद भारतीय समाज रूपी गाड़ी के दो पहिये है। लोक और वेद एक दूसरे से परे नहीं हैं "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और गॉवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नही है ये लोग नगर के परिष्कृत रूचि सम्पन्न, सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते है, और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुतः आवश्यक होती है उनको उत्पन्न करते है। [1]

यह सत्य है कि लोक ग्राम तथा शहर दोनों में ही निवास करने वाली जनता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है भारत की अधिकांश जनता गाँवों में ही रहती है किन्तु जैसा वर्तमान में परिवर्तित हो रहा है। गाँव नगर बनते जा रहें हैं, हर नगर अपने पूर्व समय में गाँव ही रहा होगा जो शनैः शनैः नगर की ओर अग्रसर होता चला गया होगा। उसके पश्चात गाँव बासी नगर से सम्मोहित होकर ग्राम छोड़ कर नगर वासी बनते चले गये तथा अपने साथ अपनी मान्यतायें रीति–रिवाज संस्कार भी ले आये। जो कुछ परिवर्तन के साथ नगर में ही प्रचलित हो गये। अतः समस्त भारतीय जनता को ही भारतीय लोक स्वीकार करना अधिक उचित जान पड़ता है।

---

(1)डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी –जनपद खण्ड। अंक 1 (अक्टूबर 1952)

चतुर्थ अध्याय

लोकगीत का उद्गम और विकास

सृष्टि की रचना के बाद जब मनुष्य ने स्वयं को पहचाना तब वह जंगली बर्बर था। पशु आचरण रत रहता था किन्तु प्रकृति ने उसे पशु से प्रथक बनाया था अतः उसे एक उपहार दिया जो अन्य पशु योनियों को नही मिला। वह अप्रतिम उपहार था 'वाणी'। शेष लक्षण खाना, पीना, शौच, सन्तति पैदा करना जैसे कार्य सभी योनियों में सम थे। इस उपहार को मनुष्य ने बहुत अभ्यास एवं कठिन परिश्रम के बाद पहचाना। बर्बर मनुष्य वृक्षों पर वानरों की भाँति जीवन यापन करता था तथा फल–फूल खाकर ही क्षुधा शान्त करता था किन्तु वाणी का उपहार मिला होने के कारण घोर पीड़ा या अत्यन्त हर्षातिरेक के क्षणों में मुंह से आ, हू, हुश, अई, सी, इत्यादि तो निकल ही जाते होगें। समय बीतते उन्होने इन शब्दों पर भी विचार किया होगा। मानव ने अपनी सुरक्षा को देखते हुए संगठित रूप से समूह में रहना सीखा। प्राकृतिक आपदा एवं जंगली जानवरों से बचने के लिए गुफाओं में रहे। सर्वप्रथम आपसी संकेतों से आगे बातचीत की श्रेणी में फिर ह्रदय में उठे संवेगों के उतार –चढ़ाव से गीत का उदय हुआ।

यही भावोच्छ्वास, हर्षातिरेक से युक्त शब्द, क्रमशः उत्तरोतर विकसित होते अन्ततः गीत की श्रेणी में आ गए।

जो विकृत आलाप सजते सवंरते मानव जाति की थाती बने" भाषा की उत्पत्ति भावा भिव्यंजक, अनुकरण तक तथा प्रतीकात्मक शब्दों से हुई और इसमें इंगित सिद्धान्त, संगीत सिद्धान्त एवं संपर्क सिद्धान्त को सहायता मिली है।" 1

यद्यपि भाषा उत्पत्ति के अन्य सिद्धान्तों पर भाषा विज्ञान बेत्ता एक मत ना हो सकें। किन्तु संगीत सिद्धान्त पर अधिकांश विददत्जन सहमत हैं इस सिद्धान्त के अनुसार उपर्युक्त भावनाओं के आधार पर यह माना जा सकता है। कि बर्बर जंगली, आदिम ने भाषा के नाम पर सर्वप्रथम गीत को ही देखा होगा, भले ही उसका स्वरूप कुछ भी रहा हो।

"गीत की रचना आदि मानव के विकास के साथ–साथ ही हुई है इसमें मानव का जातीय संगीत सुरक्षित है। जब मानव सभ्य और असभ्य के अन्तर को नही पहचानता था यह तभी का संगीत हैं यह संगी मानव के प्राकृतिक जीवन स्वाभाविक स्वरूप है।" 2

1–डॉ0 भोलानाथ तिवारी –भाषा विज्ञान पृ0 451

2–डॉ0 सुरेश गौतम– लोक कला महोत्सव प्र0 39

"समूह की शक्ति को पहचान कर संगठित रूप में गुफा में रहने का ज्ञान विकसित हुआ। गुफाओं में संगठित रूप में रहने पर मानव की अपनी विशेषता है कि मूक कब तक रहते। अतः संकेतो से ऊपर उठ कर गायन की अपेक्षा का प्रयोग करना प्रारंम्भ किया होगा, जो अनगढ़ या अस्पष्ट रूप जन्मी होगी, गीत के बाद बात चीत का जन्म होना स्वाभाविक हैं क्योंकि

यही उद्गम है– "लोकगीत" का जो मानव के हृदय में उठी भावनाओं के ज्वार की अभिव्यक्ति थे। वह अनगढ़ भाषा, अपरिष्कृत स्वर, वह लयात्मक पदा–घात आगे चलकर देशी में बोलियों के जन्म होने पर उनमें भिन्न–भिन्न पुष्पों को भाँति अपनी सुगन्ध बिखेरने लगे।

बीज से वृक्ष का उद्गम है, बीज और थल दोनों ही मिलने पर ही वृक्ष का अस्तित्व सम्भव है। "थल बिहीन तरू कबहु कि जामा" इस तथ्यानुसार कालन्तर में यही लोकगीत परिष्कृत भाषा शास्त्रीय विधान से सुसज्जित हो गये उनमे नियम और छन्दों का समावेश हुआ तो वह गीत संगीत मय गीत हो गये। "इन लोक गीतो की उत्पत्ति सम्भवतः मानव सृष्टि के साथ ही हुई होगी और सृष्टि के आदि से लेकर आज तक निरन्तर वह परंपरा अबाध गति से चली आ रही है।" 1

प्रकृति की आपदायें झेलते, समय के झंझाबातों से टकाराते यह लोक गीत अपनी यात्रा को निर्बाध गतिशील किए रहे। मानव प्रवृति के साथ यह अपने नित्य नये कलेवर बदलते रहे। नवीन रूप धारण करते हुये मानव को संदेश देने के साथ उनका मार्ग दर्शन करते समाज में मनोरंजन का साधन रहे।

"गीत का सृजन तो आरंम्भ में एक ही व्यक्ति करता है लेकिन जब वह साथ–साथ समूह में या परिवार के साथ गाता है तो उसमें संशोधन, संवर्धन तथा धुन का श्रृंगार स्वतः हो जाता है और वह लोकगीत बन जाता है।"2

ये लोकगीत किसी व्यक्ति विशेष की निजी थाती नही हैं यह तो युगो से चले आ रहे मानवों के अनुभव हैं जो भाषा के बन्धन में बँधे हैं तथा अनुकरण के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहे हैं। यह तो मानव विकास की लम्बी कहानी है।

1–डॉ0 शिवशेखर मिश्र– सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ 141

2–रमेश मोरोलिया, –लोक कला महोत्सव पृष्ठ 39

ऐसा अनुमान है कि जब से लोक का सृजन हुआ तभी से लोक गीतों का प्रचलन हुआ। समय के साथ मानवता के विकास के साथ लोकगीत भी विकसित होते गये, मानव मस्तिष्क की परिपक्वता के साथ उनके अनुभव, एहसास, विश्वास में बदलते चले गये। लोक गीत इन विश्वासों के प्रमाण बनते गये। सामूहिकता की भावना ने समाज को ग्रामों को जन्म दिया। उनके गाँव की खुशहाली उनके समाज का संघर्ष और समाज के विजय पराजय सब कुछ अपने में लोक गीत समेटते रहे। ज्ञान का अर्जन करते–2 मनुष्य जब शिष्ट हुआ तो उनकी इस पूंजी में भी वृद्धि हुई। समाज के आचार विचार, तीज, त्यौहार, उत्सव, मेले, समाज की प्रत्येक इकाई के अपने भाव लोक गीत में निरूपित होते गये।

लोक और लोकगीत की यात्रा के पड़ाव हर युग में दृष्टव्य हैं। "वैदिक युग में पुत्र जन्म, यज्ञोपवीत तथा विवाहादि तथा उत्सवों पर सरस एवं सुमनोहर पदावली में गाये जाने वाले गीतों का उल्लेख वैदिक ग्रन्थों में हुआ है। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में गाथाओं का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। इन गीतों के लिए वेद में 'गाथा' शब्द प्रयुक्त हुआ है इसके अतिरिक्त 'पद्य या "गीत' के अर्थ में 'गाथा' शब्द का प्रयोग 'ऋग्वेद' के अनेक मंत्रों में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में गाने वाले के लिए 'गाथिन' शब्द का प्रयोग हुआ है। उस समय विवाहादि अवसर पर गाये जाने वाले गीत ऋग्वेद में "रैनी या नाराशंसी" तथा गाथा आदि शब्दों के नाम से प्रसिद्ध थे। वैदिक गाथाओं के दृष्टान्त शतपथ ब्राहमण, तथा ऐतरेय ब्राह्मण में भी उपलब्ध है" 1

लोकगीतों के विषय में लेखक का आगे कथन है कि "लोकगीतों की यात्रा का अगला पड़ाव इतिहास के साथ पौराणिक एवं महाकाव्यों में मिलता है। लोक ने जो देखा जो सुना जो अनुभव किया है। वह निष्कपट होकर लोक वाणी में व्यक्त किया है तत्कालीन समाज के लेखक भी लोक के इन लोकाचारों, लोकानुभवों लोकादर्शो को अनेदखा नहीं कर पाये उनके ग्रन्थों में वह वर्णित हो गये। "वैदिक युग के पश्चात् महाकाव्य एवं पौराणिक युग में भी लोक गीतों की परंपरा का व्यापक रूप देखने में आता है, संस्कृति साहित्य के अनेक कवियों ने लोक गीतों के गाये जाने का वर्णन अपनी कृतियों में किया है। संस्कृत की प्रसिद्ध लेखिका 'विज्जका' ने धान काटने वाली स्त्रियों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों का वर्णन बहुत ही रोचक एवं सरस

1–डॉ0 शिवशेखर –सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ 41

पदावलियों में किया है, संस्कृत के नैषधीय.चरित के रचयिता श्री हर्ष ने अपने इस महाकाव्य में (2–85) में स्त्रियों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों का वर्णन बड़ी सुन्दरता से किया है" [1] लोकगीत लोक का दर्पण है, लोक गीतों में लोक का स्पष्ट चित्रण होता है लोक अपनी भाषा में अपने उद्‌गार व्यक्त करता है।

डॉ0 सत्येन्द्र का कथन है" लोकगीत के शब्द समस्त लोक के होते है लोक गीत का ज्ञान समस्त लोक का ज्ञान कोष होता है। इसकी कल्पना–मूर्तियाँ लोक सम्भव होती हैं लोकगीत लोक समूह द्वारा ही निर्मित होता है वस्तुतः ऐसा सम्भव नहीं। गीत का निर्माण तो व्यक्ति ही करता हैं पर उस व्यक्ति का लोक से ऐसा तादात्म होता है ना कि निर्माण के समय ही , न उसके प्रसार के समय ही, यह विदित हो सकता हैं कि उसे कोई.बना रहा है। या वह बनाया जा रहा है। कभी कभी ऐसे गीतों के निर्माण में यह भी होता है। कि एक व्यक्ति आरम्भ करता हैं। , या दूसरा भी या तीसरा भी उसमें कोई कड़ी जोड़ देता है और वह कड़ी या कड़ियॉ भी उस मूल गीत में अपनी बन कर परम्परा में चल पड़ती है। [2]

आदि काल से लेकर अद्यवधि तक लोक गीतों की अक्षुण्ण पंरपरा कायम रही है लोक में लोक सदैव ही लोक गायकों के कण्ठों पर विराजते है जो मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते है। उनका प्रवाह सतत चलता रहा है। लोक जनों द्वारा ही लोक गीत उपजते हैं, पनपते है। उनमें बदलाव भी आता रहता है कण्ठ धर्म के कारण उनकी गायकी मेंपरिवर्तन होता रहता है। उनका कलेवर बदलता रहता है क़िन्तु लोकगीत अजर अमर होते है। लोकगीत के सन्दर्भ में विद्वान मनीषियों के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हमारी दृष्टि में लोक संस्कृति लोकविश्वास एवं लोक परम्परा की रक्षा एवं निर्वाह करते हुये लोक जीवन अपनी रागात्मक–प्रवृतियों की तत्स्फूर्त अभिव्यक्ति जिस माध्यम से करता है उसे लोक गीत कहते है। [3]

1–डॉ0 शिवशेखर –सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ 41

2–डॉ0 सत्येन्द्र –लोक साहित्य विज्ञान पृ0 390–91

3–डॉ0 कुन्दन लाल –उप्रेती लोक साहित्य के प्रतिमान पृ0 47

लोकगीत विधा देवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नही वे मानों अकृत्रिम विसर्ग के श्वास–प्रश्वास है वे भारी विद्वता के भार से, सूक्ष्म नली के हजारे से छूटने वाला तर्क–वितर्क का फब्बारा नहीं , अज्ञात मलयाचल से आने वाली सुगंधित लहरियों उद्भूत हृदय की सूक्ष्म तरंगे हैं। वे सहजानन्द में से ही उत्पन्न होने वाली तथा श्रुति मनोहरता से सहजानन्द में ही विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफायें है। 1

डॉ सदाशिव फड़के

वास्तव में लोकगीत कभी ना छीजने वाले रस के सोते है। वे कंठ से गाने के लिये हृदय से आनन्द लेने के लिये है इनकी स्वामाविकता, सरसता , स्वच्छंदता, तथा निर्बाधता हृदय को आनन्दित कर प्रभाव उत्पन्न करती है। जिस तरह लहराता हुआ सागर गंभीर एवं गहन है, जिस तरह गंगा की धारा पवित्र एवं स्वच्छन्द है। जिसतरह नीलाकाश में उड़ने वाला पक्षी स्वतंत्र और सरल है उसी प्रकार हमारे लोकगीत स्वच्छता सरलता एवं सरसता की पीयूष धारा है 2

डॉ0 सुरेश गौतम

ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार है। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस हैं छन्द नहीं, केवल लय है लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्य के, स्त्री पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम गीत है। 3

रामनरेश त्रिपाठी

लोकगीत की एक–2 बहू के चित्रण पर रीतिकाल सौ सौ मुग्धायें, खण्डितायें, और धारायें न्यौछावर की जा सकती है क्योंकि निरलंकार होने पर भी प्राणमयी है और वे अलंकारों से लदी होकर भी निष्प्राण है ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं, और अपने आप में परिपूर्ण है। 4

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

1–डॉ0 सदाशिव फड़के –हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति अंक) पृ0 250–51

2–डॉ0 सुरेश गौतम– लोकगीत कालातीत धरोहर , लोककला दर्पण स्मारिका पृ0 34

3–पं0 रामनरेश त्रिपाठी –कविता कौमुदी भाग5 प्रस्तावना पृ0 1–21

4–डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी –हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ0 138

अन्ततः लोक गीत अनादि काल से वही चली आ रही अजस्त्र धारा है जो जनमानस के हृदय का सिंचन आज तक कर रही है। लोकगीत मनुष्य के प्राकृतिक जीवन का स्वाभाविक स्वरूप है। इनमें शास्त्रीयता का अभाव है बनावट की कमी हैं यह अकृत्रिम है तथा शुद्ध हवा का संचार करते हैं। लोक इनमें प्रकृति का दर्शन है पारिवारिक, व्यक्तिगत, सामाजिक सम्बन्धों का दर्पण है अतीत से चले आ रहे विचार मंथन , अनुशासन प्रेम द्वेष, हँसी, अनुराग, बात्सल्य, विरह, मिलन की भावनाओं के उद्गार स्वरूप रूपी लोकगीत हमारे पूर्वजों की सहज कृत्रियों संस्कारो मूल्यों की मूल ध्वनियों को ज्यों का त्यों संजोये है इनकी रचना किसने की है किस व्यक्ति ने इनका श्रृंगार किया? तथा कैसे लोक के आँचल का हीरा बन गया? कोई नहीं जानता यह लोक जीवन में इतने गहरे बैठ गये है यह लोक की पहचान बन गये है इनमें समाज का रूप, व्यवहार, संस्कार, उसकी परंपरा, रीति रिवाज, अर्थात संस्कृति की आत्मा समाये रहती है। लोकगीत समाज के दर्पण हैं जिससे समाज की अन्तर्भावना तथा संस्कृति का ज्ञान किया जा सकता है।

धर्म क्या है बुन्देली लोक–जीवन में धर्म का स्वरूप

धर्म शब्द इतना अधिक व्यापक है कई युगों से इसका अर्थ व्यापक रूप से प्रयोग होता रहा है और वर्तमान समय में हो रहा है। इस कारण यदि एक तरफ इसका महत्व बहुत बड़ा है तो दूसरी तरफ इसकी परिभाषा को सीमा में बॉधना कठिन है। साधारण प्रकार में इसका अर्थ में अंग्रेजी में 'रिलीजन' तथा फारसी में 'मजहब' बताया गया है पर यदि इन शब्दों के पर्याय स्वरूप 'सम्प्रदाय' शब्द का प्रयोग हो, तो अधिक उपयुक्त होगा हमारे यहाँ सभी बातों, सभी चीजों और परिस्थितियों में 'धर्म' शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है। इसी कारण "मैकसमूलर" ने कहा है कि "हिन्दू लोग सोने–जगाने , उठने –बैठने, खाने–पीने, चलने –फिरनें, सभी मे धर्म का सन्निवेश करते हैं।

भगवद् गीता में कितने ही स्थानों पर धर्म शब्द का अर्थ कर्तव्य प्रतीत होता है रीति–रस्म आचार–विचार, प्रतिदिन के साधारण से साधारण कार्य के सम्बन्ध में हम यह कह सकते है कि ऐसा करना, ऐसा ना करना धर्म है, अथवा अधर्म है धर्म को छोटी सी छोटी बात में परिभाषित किया गया है।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

यथार्थ में धर्म का जन्म भय की कोख से हुआ है मानव के विकास क्रम में मनुष्य जिन चीजों पर विजय प्राप्त नहीं कर सका उनसे डर कंर उन्हें पूजने लगा, ऐसा उसका विश्वास था, कि उसकी पूजा करने पर मनुष्य को नही सतायेंगे। यह आपदादैवीय हो, या प्राकृतिक या हिंसक जानवर। इसके अलावा जिसने भी उसकी मदद की उन्हें वह हितैषी समझ कर उसकी आराधना करने लगा। विकास यात्रा के आगे बढ़ने पर ऋषियों , मुनियों, ज्ञानियों ने उसको अपने तप के बल पर दिव्य दृष्टि से देखा उनका अनुभव किया उनको परखा तत्पश्चात उसको प्रचलित किया। इस प्रकार अपने–2 अनुभव उन्होने प्रतिपादित किये, यह सब वैज्ञानिक थे। जिनको साधारण जनता अशिक्षित होने के कारण समझने में कठिनाइ महसूस करती थी, उनको समझाना कठिन एवं दुष्कर कार्य था, अतः जन

साधारण को भय दिखला कर उन्हें धर्म से जोड़ दिया गया। मनुष्य सोने, जागने, उठने, बैठने, भोजन बनाने, भोजन ग्रहण करने, घर की सफाई, वस्त्र, आचार–विचार, जीविकापार्जन सन्तानोपत्ति, उसका पालन–पोषण, सामाजिक विचार, रीति रिवाज, रस्में, समाज उत्थान, समाज–कल्याण कारक क्रिया–कलाप इत्यादि कार्य धर्म से जोड़ दिये गये। इनका प्रचलन युग–युग तक चलते रहने के कारण इतना अधिक विस्तृत एवं प्रसारित हो गया कि समाज का प्रत्येक प्राणी इसको भली–भांति समझने लगा तथा इनका प्रयोग नित्य प्रति करने लगा। वर्तमान समय में भी लोक का प्राणी इस प्रकार के कार्यो को सम्पादित कर अपना सौभाग्य समझता है। यह सब विचार प्रत्येक इकाई की रग–रग में समाया हुआ है इसका क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत हो गया है कि उसको परिभाषा के रूप में समेटना संम्भव नहीं है। फिर भी विद्वानों ने प्रयास किया है।

"मानव समाज में धर्म इतना सार्व भौमिक स्थायी और व्यापक है कि उसको पूर्ण रूप से समझे बिना हम समाज को नहीं समझ सकते।[1]

मानव संसार की समस्त घटनाओं यासृष्टि के समस्त रहस्यों को पूर्ण रूप में समझने में असमर्थ रहा है। अपने जीवन के नित्य प्रति के अनुभवों से वह सीखता हैं अनेक एसी घटनायें हैं जिन पर उसका वश नही है स्वभावतः उसमें यह भावना पनपती है कि कोई ऐसी शक्ति है जो दिखायी नहीं देती है और वह अत्यधिक शक्तिशाली है यह शक्ति अलौकिक है।

"सत्तामता लसति योड स्तितया
लसतु य यश्रचेतेनेषु व चिदात्मा प्रकासित
आनन्दिषु स्फुरित श्श्रदमन्द मोदरतं
नन्द नन्दन तनुं प्रणमाणि धर्ममः

संसार में जिनका अस्तित्व है जो अपने अस्तित्व से सुशोभित है उनमें सत्ता रूप में प्रकाशित होता है तथा आनन्द की अनुभूति करने बालों में आनन्द बन कर छा रहा है धर्म साक्षात नन्द नन्दन का रूप है[2]

1–किंग्सले डेविस –पृष्ठ 333

2–पाण्डेय पं0 राम नारायण शास्त्री राम साहित्याचार्य–कल्याण अंक धर्मांक, व्यवस्थापक कल्याण गीता प्रेस गोरखापुर पेज नं0 2

जो अलौकिक शक्ति है जिसे किसी प्रकार वश में नहीं किया जा सकता है। इसका बस एक ही उपाय है कि इस शक्ति को अपने पक्ष में लाने के लिए इसक सम्मुख सिर झुका कर पूजा प्रार्थना या आराधना की जाय।

"यो रक्षति जगत रक्षति सर्वबीजान,।

नीतः क्षतिं क्षपयन्ते निहतो निहन्ति।।

संतिष्ठते कचन येन बिना किचिंत।

संघारणो विजयते भगवान सुधर्मः।।

जो अपना रक्षण पालन किये जाने पर समस्त जीवों की रक्षा करता है अपने को क्षति पहुँचाई जाने पर उन क्षति पहुँचाने वालों को क्षीण कर देता है। तथा अपने पर आघात होने पर उन धर्म द्रोहियों का भी सर्वनाश कर डालता है। जिनके बिना कोई भी वस्तु टिक नहीं सकती वह धर्म साक्षात भगवान है।1

सभी कष्टों एंव दुखों से छुटकारा एक ही शक्ति दिला सकती है, जिसे वेदों, पुराणों में परबृहम परमेश्वर कहा गया है। वही अलौकिक शक्ति है अर्थात उसी की पूजा करना ही साक्षात् धर्म है।

"एषमें सर्व धम्राण धर्मोधिकतयो मतः।

यद् मक्तयापुण्डरी काक्षं स्तंवैरर्च्येश्ररः।। 2

मेरी दृष्टि में धर्मो में सबसे बड़ा धर्म यही है, कि मनुष्य सदा कमल नयन भगवान की स्तुति द्वारा अर्चना किया करे।

इसी आलौकिक शक्तियों पर विश्वास एवं इसी से संम्बन्धित क्रियाओं कोधर्म कहा गया है "धर्म आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास है" 3 शक्ति अध्यात्म से जुड़ी हुई है। इसी आध्यात्मिक

1–पाण्डेय पं० राम नारायण शास्त्री राम साहित्याचार्य–कल्याण अंक धर्मांक, व्यवस्थापक कल्याण गीता प्रेस गोरखापुर पेज नं० 2

2–कांची काम कोटि पीठाधीश्वर स्वामी चन्द्रशेखर सरस्वती पेजनं० 4

3–एडवर्ड टायलर –समाज शास्त्र के मूल तत्व पृष्ठ 334

शक्ति पर विश्वास करने हेतु जो क्रियायें की जाती है वह धर्म से जुड़ी हुईं हैं। उसमें समाज का अनुभव जुड़ा रहता है। "धर्म क्रिया का एक वेग है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था की ओर धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ एक व्यक्तिगत अनुभव की है।[1]

परन्तु केवल विश्वास से ही धर्म सम्पूर्ण नही होता है साथ ही उस शक्ति के प्रति श्रृद्धा भक्ति या प्रेमभाव भी धर्म का एक अन्य आवश्यक संवेगात्मक अंग है, उस शक्ति से लाभ उठाने के लिये प्रार्थना पूजा या आराधना करने की बिधियॉ या संस्कार भी होने है इन धार्मिक क्रियाओं मे अलग–2 समाज के अलग–2 धार्मिक सामग्रियाँ, धार्मिक प्रतीक, पौराणिक कथाओं आदि का समावेश रहता है जिस शक्ति पर विश्वास किया जाता है उसका रूप स्वरूप भी अलग–2 समाज से अलग–2 स्थापित किया जाता है कहीं निराकार शक्ति की आराधना की जाती है तो कहीं साकार बृहम् उसके साकार रूप (मूर्ति अथवा प्रतिमा) की पूजा की जाती है।

यही शक्ति हमको नियंत्रित करती है तथा कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

"धर्म से मैं मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों को सन्तुष्टि या आराधना समझता हूँ कि जिनके सम्बंध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव जीवन को मार्ग दिखलाती और नियंत्रित करती है।[2]

यहॉ धर्म के सम्बंध में विभिन्न विद्वानौ के मत निम्न प्रकार से है–

1–मालिनो वास्की –समाज शास्त्र के मूल तत्व पृष्ठ 334

2–सर जेम्स फेजर –समाज शास्त्र के मूल तत्व पृष्ठ 334

"रामो विग्रहवान धर्मः " रामायण के श्री राम धर्म की साक्षात मूर्ति है" [1]

"धारणाद धर्म" धर्म वह है जो हमें सब तरह के विनाश से बचा कर उन्नति की ओर ले जाता है। [2] "धिन्वानाद़ धर्मः धारणा" धारणा या आश्वासन देना दुःख से पीड़ित समाज को धीरज देकर सुख का मार्ग दिखाना। [3]

"धरणाद धर्म धारण करना दुःख से बचाना [4]

"यतो म्युदयनिः श्रेय समिद्धि स धर्मः" जिसके आचरण से अभ्युदय तथा निश्रेयस की प्राप्ति होती है। उसका नाम धर्म है। [5]

"धर्मा ही वीर्यध्रियते ही धर्मो घृतो घारयते ही रूपम्पा धर्म एक शक्ति एक शक्ति है। स्वरूप लाभ तथा स्वरूप की रक्षा के लिये पदार्थ द्वारा घृत होने से वह धर्म है। [6]

अनन्त अपौरूषेय वेद में "धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा" अर्थात धर्म विश्व की जगत की प्रतिष्ठा बताया है। [7]

"धरतिइति धर्म " अर्थात जो धारण करता है [8]

"ध्रियेत येन स धर्मः" जिसमें इस वृहयाणु को धारण किया है। वह धर्म है। [9]

1–सर जेम्स फेजर– समाज शास्त्र के मूल तत्व पृष्ठ 334

2–श्री श्रृगेरी पीणधीश्वर पाषद गुरू शंकराचार्य –सुउपदेश पृ0 5

3–श्री गोर्वधन गणधीश्वर स्वामी भारती –कृष्ण तीर्थ पृ0 6

4–स्वामी अनुरूद्धाचार्य वैंकटाचार्य जी महाराज पृ0 17

5–स्वामी चिदानन्द जी महाराज पृष्ठ 21

6–स्वामी अनुरूदृाचार्य वैकंटाचार्य जी महाराज पृ017

7–जगदगुरू भानुजाचार्य आचार्य विधिपति स्वामी जी राधावाचार्य महाराज पृ0 19

8–वही ,,

9–वही ,,

"त्रीणपदा विचकमे विश्णुर्गापा अदाम्यः

अतो धर्माणि धारयन"

ऋक सहिंता 1/22/18

परमेश्वर ने आकाश के बीच में त्रिपाद परिमित स्थान में त्रिलोक का निर्माण करके उनके भीतर धर्मो का (जगनिर्वाहक कर्म समूहो) को स्थापित किया। 1

"यज्ञेन यामंय देवास्तानि धर्माण प्रक्ष्मा न्यासन"

ऋग्वेद 10/90/16

यज्ञ के द्वारा यहू पुरूष की देवताओं ने पूजा की थी वह प्राथमिक धर्म था"

"हिरण्यमयेंन पात्रेण सत्यास्या वितिं मुखम!

तत्वं पूषण पावृणु सत्य धर्माय दृष्टये।।2

ज्योर्तिमय पाक के

द्वारा सत्य का (अर्थात आदित्य मण्डलस्थ व्याहूति अवयव पुरूष का) मुख (मुक्ष्य स्वरूप) आवृत है, हे जगत के परितोषक सूर्य देव! सत्य स्वरूप तुम्हारी उपासना के फल स्वरूप मेंरी उपलब्धि के लिये उस आचरण को हटा दो" 3

"धर्म है आत्मा से आत्मा को देखना, आत्मा से आत्मा को जानना, और आत्मा से आत्मा में स्थित होना" 4

"धर्म का अर्थ है द्रव्य का स्वभाव । जो आत्मा का स्वभाव है, वह धर्म है, जो आत्मा का स्वभाव नहीं है वह धर्म का स्वभाव नही है, धर्म का अर्थ है वस्तु का स्वरूप" 5

1—महात्मा सीता राम दास ओंकार नाथ पृ0 21

2—वही ,,

3—वही ,,

4—स्वामी विद्यानन्द जी विदेह महाराज पृ0 42

5—वही ,,

"शून्यीमव दिदं विश्व स्वरूपेण घृतांयथा।

तहमाद वस्तु स्वरूपं हि प्राहुधम्र ग्रहवर्यः।।

यह विश्व पयार्यो से शून्य होता है पर्याय अवस्था के नष्ट हो जाने पर भी स्वरूप द्वारा घृत रहता है। इसलिये वस्तु का स्वरूप धर्म कहलाता है। 1

धर्म के लक्षण

नवजात शिशु सर्वदा अज्ञ होता है वह केवल भूख और पीड़ा का अनुभव कर पाता है। इन दोनो ही स्थितियों में रूदन करता है। उसे मुनष्य बनाने के लिये उसे संस्कारित किया जाता है। समय–2 पर आवश्यक शिक्षा द्वारा तथा संस्कार द्वारा सर्वागीण विकास किया जाता है, ताकि वह श्रेष्ठ मनुष्य बन सकें। इन क्रिया कलापों मे धर्म का अत्यधिक महत्व है संस्कारों पर भी धार्मिक अनुष्ठान किये जाते है। "धर्म संस्कृति का कवच है जब ये लोक के साथ जुड़ जाते है तब वह वर्ग से मुक्त हो जाता है मनु स्मृति में निर्दिष्ट धर्म इन्ही– भावों में गर्भित है" 2

"घृतिः क्षमा दमोस्तेयं शैय मिन्द्रिय विग्रह।

घी विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षण।।

मनु स्मृति 16–97

घृति क्षमा, मन का निग्रह, अस्तेय, शोच, इद्रियनिग्रह, घी, विद्या, सत्य, अक्रोध, ये दस धर्म के लक्षण मनु स्मृति में बताये गये है।

यह दस प्रकार के धर्म ऐसे है। जिनसे किसी वर्ग सम्प्रदाय, को किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती है अपितु यह दस लक्षण मानव को मनुष्यता की श्रेष्ठता की ओर ले जाते हैं यह मानव के स्वाभाविक धर्म है मानव में मानवता का विकास, प्रकाश, संरक्षण, संवर्धन इन्ही धर्मो के पालन से होता है, यदि मनुष्य से इन लक्षणों को हटा दिया जाय तो वह निरा पशु समान रह जायेगा, वह पतित हो जायेगा। उसमें पशु–प्रकृति पनपने लगेगी। इन धर्मो का पालन करने से उसके जीवन में पवित्रता कर्तव्य पालन, आचरण मं उदारता, समाज के प्रति अपने का उत्तर दायित्य का ज्ञान होता है।

1–स्वामी विद्यानन्द जी विदेह महाराज –पृ0 42

2–डॉ0 त्रिभुवन नाथ शुक्ल–लोक कला दर्पण पृ0 27

घृति—घृति एक ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य अपना लक्ष्य प्राप्ति हेतु क्रिया की भावना या वृति के धारण कर दृढ़ता पूर्वक उसको स्थिर रखता है।, उसके द्वारा धारण किया लक्ष्य, प्राप्ति तक मार्ग साफ रहता है। वह उस क्रिया में कहीं विचलित नहीं होता है तथा चिरकाल तक स्थिर रहती है। इसी को घृति नाम से सम्बोधित किया जाता है इसी का घृति के बल पर मनुष्य अपने जीवन क्षेत्र ही अपना परम लक्ष्य प्राप्त करता है जब मनुष्य अपना लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति निश्चित कर लेता है। अर्थात ईश्वर की प्राप्ति एक अटल उद्देश्य में स्थिर हो जाती है तब यह घृति शक्ति उस साधना मार्ग में किसी भी कारण से मनुष्य की मन इन्द्रियों को विषयों में आसक्त नहीं होने देती है मन को चंचल नहीं होने देती हैं तथा साधक का ध्यान सदा परमात्मा की प्राप्ति में ही लगाये रखती है ऐसी घृति का नाम सात्विक घृति है इसे अव्यगीणी घृति भी कहते है।

क्षमा—क्षमा का अर्थ सर्व विदित है कि बदला ना लेकर सहन करने की कृति क्षमा है, अपने उपर उपकार करने वाले से बदला लेने की पूरी ताकत रखते हुये भी उसका अपकार ना करना, बदले की भावना ना रखना, क्षमा है, अपकारी के अपकार का केवल सहन कर लेना ही नही वरन उसका हितेषी बनना , उसका हित करने की चेष्ट करना ही क्षमा है " क्षमा में दुर्भावना और द्वेष का खाता चुकता कर दिया है अक्रोध अपकार—सहन है, परन्तु अपकारी के अपराध का फल उसे प्राप्त हो, इस प्रकार की एक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भावना मन में रही जाती है। क्षमा इस वासना का सर्वथा नाश कर देती है।"1

मनसा, वाचा, कर्मणा, इन तीनों का शामिल करके ही दी गयी क्षमा ही वास्तविक क्षमा है। अपकार करने वाले प्रति अपकार कर देना बदला लेना है। आप भी अपकारी हो गये दोनो बराबर के भागीदार हो गये, दूसरी स्थित अक्रोध है कि अपकार का बदला ना ले सकने की स्थित में अपकारी को न्यायाधीश के हवाले कर दिया जाय था। भगवान के भरोसे पर छोड़ दिया जाय, कि इन्हे ईश्वर इस अपकार दण्ड आप स्वयं ही देगा, यह स्थित अक्रोध भी है किन्तु क्षमा इन सबसे बढ़ कर हैं

1—हनुमान प्रसाद पोद्दार—सम्मेलन पत्रिका पृ0 53

मन से, बचन से, कर्म से, "क्षमा कर दिये जाने पर प्रतिशोध और हिंसा की यह वृति छिपी नही रह जाती है। और चिन्त निर्मल हो जाता है।" 1

दम–साधारण अर्थ में दम का अर्थ इन्द्रिय को दमन करने से ही निकाला जाता है, इन्द्रियों को अपनी मनमानी करने को हठपूर्वक रोकना ही होता है। किन्तु उपर्युक्त श्लोक का गूढ़ अर्थ है जा इन्द्रिय निग्रह ना होकर मन का निग्रह है। मन बहुत ही चंचल है तथा श्रेष्ठ भी है सर्व सद् विचार , कुविचार, सर्व प्रथम मन भी ही आते है। द्वितीय अवस्था में वाणी में , तथा तृतीय चरण में कर्म में परिलक्षित होने लगते है, प्रथम चरण में ही नीर, क्षीर, करना ही मन निग्रह है। मन रूपी नदी का प्रबल प्रवाह को अभ्यास औरवैराग्य के साधन द्वारा रोक कर ईश्वर की उन्मुख करना ही मन का निग्रह है।

"असंयतालना योगो दुष्प्राप इति में मतिः।

वश्यात्मना तु ययता शकयोऽवाप्तु मुपायतः।।

गीता 6/36

प्रस्तुत गीताश्लोक में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि जिसका मन वश में नहीं है। उसके लिये परमात्मा की प्राप्ति तप योग का प्राप्त करना कठिन है। परन्तु मन का वश में करने वाले प्रयत्नशील पुरूष साधन द्वारा इस योग को प्राप्त कर सकते हैं मन के कुविचार ही पतन के हेतु है और सदविचार उत्थान के उत्पथगामी मन में अपवित्र विचार रहते है। और सत्पथ गामी पवित्र मन में शुद्ध विचार। शुद्ध विचार केवल निगृहीत नन में ही रहते है।

4–**अस्तेय–अर्थात चोरी**– स्थूल रूप से किसी की वस्तु उसकी बिना अनुमति के बिना ले लेना चोरी कहलाता है, किन्तु अस्तेय के अर्न्तभाव में वे सब प्रकार के कार्य अस्तेय है जो धर्म के का ग्रहण करनाचोरी है, स्थूल चोरी के अपराध के लिये दण्ड का विधान है। किन्तु बहुत सी चोरी ऐसी हैं जो मन को वश में करने से रूकती ळैप्रतिकूल है सिमें प्रथम हैं कि वे दूसरे का हक (खत्म) का ग्रहण करना चोरी है, स्थूल चोरी के अपराध के लिये दण्ड का विधान है किन्तु बहुत सी चोरी ऐसी है जो मन को वश में करने से रूकती है।

1–हनुमान प्रसाद पोद्दार –सम्मेलन पत्रिका पृ0 54

ऐसी चोरियों में किसी की वस्तु ले लेना, वाणी से छिपाना, धोखा देना, अपहरण करना, विश्वास घात करना अधिक काम करवा कर पैसा कम देना। अधिक पैसे लेकर काम कम करना । इत्यादि

इस प्रकार बहुत सी सभ्य चोरियॉ है जो कानून की पकड़ में नहीं आती हैं ये चोरी स्थूल चोरी से अधिक भयानक होती है। उच्च पदों पर रहकर भी ऐसी चोरियाँ होती है अपराध करने वालों का लोक समाज स्तर बहुत नीचा हो जाता है इस प्रकार की चोरियॉ को रोकने लिये जब तक मन को पर 'स्वा'' अपहरण रोकना अत्यन्त आवश्यक है जब मन से चोरी करना अपराध समझा जायेगा सबसे बड़ा अधर्म समझा जायेगा तब अस्तेय का पालन करना समझा जायेगा। इस चोरी से बचने के लिये अस्तेय का पालन करना मनुष्य का साधारण धर्म है।

शौच–शौच का अर्थ पवित्रता से है साधारण अर्थ में शौच का अर्थ शारीरिक सफाई से ही लगाया जाता है किन्तु मनु स्मृति के अनुसार यह पवित्रता दो प्रकार की मानी गई है।

1–बाहरी पवित्रता

2–आन्तरिक पवित्रता

बाहरी पवित्रता में शरीर ग्रह स्थान, गली, मुहल्ला की सफाई से है सर्वप्रथम शरीर का साफ रखना, प्रतिदिन स्नान करना, वस्त्र को साफ रखना, वैज्ञानिक तोर यह सफाई स्वस्थ रहने के लिये आवश्यक है ताकि कीटाणु या विषाणु प्रति–दिन नष्ट होते रहे, भारतीय समाज कृषि प्रधान समाज रहा है कृषि कार्य करते समय, मृदा कीटाणु अन्य प्रकार के विषाणु शरीर वस्त्रों में लग जाते है। उन्हे साफ करने के लिये शरीर को स्वस्थ रखने के लिये स्नान एवं वस्त्र ग्रह की सफाई प्रतिदिन ही आवश्यक है। भारत में त्यौहारों पर भी मासिक , त्रैमासिक छिमाही सालाना, सफाई का भी विधान बताया गया है। शारीरिक सफाई के भी दो प्रकार बताये गये है प्रथम शारीरिक सफाई बाहृय सफाई है जिसके अन्तर्गत मृदा स्नान, जल अस्नान, धूप अस्नान, आदि तथा गन्दे पदार्थो को पदार्थो का ना छूना। इन क्रिया–कलापों को धर्म से जोड़ दिया था, ताकि धार्मिक आस्था होने के कारण व्यक्ति इनका कड़ाई से पालने करें। द्वितीय शारीरिक शुद्धि भोज्य पदार्थो से सम्बधित है।

कि ''जैसा खाये अन्न, बैसा बने मन''

इस प्रकार की शुद्धि को वर्तमान समय में हम लोग अन्याय, अव्यवहार्य, व्यर्थ और आडंम्बर समझते हैं किसी भी समय कैसे भी पदार्थ का छूना, एक. दूसरे का जूठा खाना, जूठे वर्तन में खाना, एक ही वर्तन में भोजन करना, अपवित्र पदार्थो को खाना, हाँथ मुँह ना धोना, जूते पहन कर खाने आदि में कोई हानि नहीं समझते हैं।।

किन्तु इस प्रकार की शुद्धि में न्याय पूर्वक अर्जित किया हुआ धन, अन्न, पवित्र पदार्थ के भक्षण करने से शरीर में साधक रस तथा सप्त धातुओं को भी शुद्ध रखा जाता है।

शरीर की आन्तरिक शुद्धि में आहर की बड़ी आवश्यकता है एवं उसका महत्व सर्वोपरि है भोज्य पदार्थ जिस द्रव्य (धन) से लिये गये है वह धन सत्यानुमोदित और न्यायोचित हो।

आजकल यह विचार (सत्य–न्याय) धनोपार्जन में छोड़ दिया जाता है जिससे बुद्धि और मन का स्तर नीचे गिर जाता है। तथा अराजकता और भ्रष्टाचार का जन्म होने लगता है।

आन्तरिक पवित्रता (आत्म शुद्धि) मनुष्य शरीर को कर्मेद्रियों ज्ञानेन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ है बुद्धि, मन ही अविवेक विवेक का नीर–क्षीर का वितरण करता है मन में जब तक अहं हैं, घमण्ड है 'स्व'' है तब तक मनुष्य इस हाड़ मांस के शरीर को अपना मानता है जिस शरीर में त्वचा के आवरण के अन्दर मल, मूत्र, वीर्य, मांस, मज्जा रक्त आदि मरे हुये है जिन्हे प्रत्यक्ष देख कर मानव में घृणा हो जाय। इसके अलावा मनुष्य के सुस्वादु सुगंधित वस्तुओं के खाने पर अन्दर जाकर उपर्युक्त घृणा युक्त स्वरूपों में बदल देने वाले शरीर को ''मैं'' मानना ही आन्तरिक अपवित्रता है।

आत्मा का बृहमापर्ण मानना ही शुचि है शरीर में विराजमान आत्मा रूपी बृहय को अर्पण करना आन्तरिक शुचि है, इस भाव के लिये बाहय् शुचि अत्यन्त. आवश्यक है, प्रतिदिन बारम्बार वाह्य शुचि अभ्यास से प्राणी का नित्य पवित्रता का रूप प्रत्यक्ष हो जाता है तब दूसरे का मल युक्त शरीर का संसर्ग करना स्वयं ही छूट जाता है।

''सत्व शुद्धि सौमनस्यै काग्रेन्द्रियात्म दर्शन योग्य त्वानि च [1]

शौच के स्थिरता से सत्य शुद्धि, प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियोचर विजय और आत्म साक्षात्कार की योग्यता प्राप्त होती है।

---

(1)योग–पाद 2 सूक्त 41 महर्षि पंतजलि

आन्तर शुद्धि के साधनों से जब अन्तः करण के राग द्वेशादि मल कुछ धुल जाते हैं, तब रज और तम की न्यूनता से सत्य प्रबल हो उठता हैं चिन्त निर्मल हो जाता है निर्मलता होकर सकाग्रता आती है एकाग्र होने पर मन अपनी अधीनस्थ इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है, इस प्रकार जब मन भली–भॉति पवित्र और सूक्ष्म वस्तु के ग्रहण करने में समर्थ हो जाता है। तब उसमें आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त हो जाती है वही शौच का शुभ परिणाम है "मैत्री करूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां–भावनातश्चिन्त प्रसादनम"![1]

"सुखी मनुष्यों से प्रेम दुखियो के प्रति दया पुण्यात्माओ के प्रति प्रसन्नता और पापियों के प्रति उदासीनता की भावना से चिन्त प्रसन्न होता है"

क–जगत के सारे सुखी जीवों के साथ प्रेम करने से चित का ईर्ष्या –मल दूर होता है डाह की आग बुझ जाती है, संसार में लोग अपने को और अपने आत्मीय स्वजनों सुखी देख कर प्रसन्न होते है क्योकि वे उन लोगों को अपने प्राणों के समान प्रयि समझते हैं यदि भाव सारे संसार के सुखीयों के प्रति अर्पित कर दिया जय तो कितने आनन्द का कारण हो। दूसरे को सुखी देख कर जलन पैदा करने वाली वृत्ति का नाश ही हो जाय।

ख–दुःखी प्राणियों के प्रति दया करने से पर –अपकार रूप चिन्त का मल नष्ट हो जाता है। मनुष्य जैसे अपने कष्टों को दूर करने के लिये किसी से भी पूँछने की आवश्यकता नहीं समझता। भविष्य में कष्ट आने की सम्भवना होते ही पहले से उसे निवारण करने की चेष्टा करने लगता हैं यदि ऐसा ही भाव जगत के सारे जीवों के साथ ही हो जाय तो कितने ही लोगों का दुःख दूर हो सकता है। दुःख पीड़ित लोगों के दुःख दूर करने के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने की प्रबल भावना से मन सदा प्रफुल्लित रह सकता है।

ग–"धार्मिको को देखकर हर्षित होने से दोषा रोप नामक असूया मल नष्ट हो ता है साथ ध ार्मिक पुरूष की भाँति चिन्त में धार्मिक वृत्ति जागत हो उठती है असूया के नाश से चिन्त शान्त होता है ।

घ–पापियों के प्रति उपेक्षा करने से चिन्त का क्रोध रूप मल नष्ट होता हैं पापों का चिन्तन

---

(1)योग पाद 1 सूत्र 33 म0 पतंजलि

न होने से उनके संस्कार अतःकरण पर नहीं पड़ते। किसी से घृणा नहीं होती इससे चित्त शान्त रहता है। 1

हार्दिक प्रेम के साथ श्री भगवान के पवित्र नाम का स्मरण सदैव करते रहना शास्त्र न्यान्य विधियों का पालन करते हुये जप, स्मरण, कीर्तन आदि करते रहना ही शौच का सर्वोत्तम उपाय है।

इन्द्रिय निग्रह—इन्द्रियों को सदैव अपने वश मे रखना ही इन्द्रिय निग्रह है। इन्द्रियो को किसी बुरे काम की ओर ना जाने देना उनको सदैव कल्याण कारी कार्यो में लगाये रहना ही इन्द्रिय–निग्रह है।

समस्त कर्मो का सम्पादन इन्द्रियों द्वारा ही होता है। जो मनुष्य इन्द्रियो के वश में हो जाता है वह स्वयं ही अनेक प्रकार पाप कर्मो में फँस कंर पतन के गर्त में चले जाते हैं। तथा नाना प्रकार के दुःखों को आमंत्रण दे डालता है इन्द्रियासिक्त मनुष्य बुरे– से बुरे कर्मो से नही डरता है अपराध तथा हिंसा उसके लिये सामान्य तथा सुख देने वाले कर्म बन जाते है उसकी हिंसा की प्रवृति के कारण हिंसक जानवर की भांति सामान्य जन उससे डरने लगते है यह इन्द्रिय लोलुपता उसे धर्म से दूर नर्क में धकेल देती है। अतः इन्द्रियों पर नियत्रंण रखना अत्यन्त आवश्यक हैं जब तक इन्द्रियों का दमन नहीं होता तब तक पापों से बचना बहुत कठिन होता है इसलिये सुख प्राप्त करने की आंकाक्षा करने वाले प्रत्येक स्त्री पुरूष को इन्द्रिय दमन करना चाहिये और जो लोग ईश्वर प्राप्ति का सुख पाना चाहते है उनके लिये इन्द्रिय निग्रह एक अत्यन्त आवश्यक कर्त्वय है।

इनिद्रयाणां प्रसंगेन दोष मृच्छ संशयम।

संनि यम्य तु तान्येव ततः सिद्ध नियच्छति।।[2]

इन्द्रिया पॉच हैं श्रवण, त्वचा चक्षु, रसना और नासिका यह पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ कहीं गई हैं। कान चमड़ी, ऑख, जीभ, नाक इनके कर्म शब्द, स्पर्श , रस रूप गन्ध।

1—हनुमंत प्रसाद पोददार लाक संस्कृति अंक पृ0 57—58

(2)मनु स्मृति 2/93

इसके अलावा कोई और विषय नहीं है। जो इन इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सके। इन पॉच इन्द्रियों के उपयोग लिये कान, चमड़ी , ऑंख, जीभ नाक बने हैं अर्थात इन पौत्र की जो शक्ति है वही इन्द्रियां है ना कि पौत्र गोलक, इन पॉच ज्ञानेन्द्रियों की सहायता क़रने वाली पॉंच कमेन्द्रियां हैं। जो इन की आवश्यकता पूर्ति करने में सहायता करती हैं। यह हाथ, पैर, वाणी , गुदा और उपस्थ (लिंग या योनि) इन दसो इन्द्रियों में वाणी कर्मन्द्रिय का एक ही स्थान है। जीभ।

कमेन्द्रियों की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रियॉं अधिक श्रेष्ठ है तथा सूक्ष्म हैं अतः प्रथम ज्ञानेन्द्रियां का ही दमन करना चाहिये। क्योंकि ज्ञानेन्द्रियो का दमन करने से कर्मेन्द्रियों का दमन अपने आप हो जाता है यह इन्द्रियॉं मनुष्य को विषयों की ओर आकृष्ट करती रहती हैं। इन पर नियंत्रण शिथिल होने पर मनुष्य विषयों में लिप्त हो जाता है।

इन पॉचों इन्द्रियों के विषयासक्त होने पर उस अविवेकी पुरूष का पतन तो निशचित हो ही जाता है। परन्तु इनमें से किसी भी इन्द्रिय विषयान्मुख होने पर भी अनथ हो जाता हैं। जिस प्रकार जल पात्र में एक छिद्र हो जाने पर सारा जल निकल जाता है उसी प्रकार इन पॉंच इन्द्रियों में किसी एक इन्द्रिय के विषयसक्त होने पर सारी बुद्धि नष्ट हो जाती है।

इन्द्रियॉ का प्रयोग सदैव ही सदाचरण भगवप्राप्ति के मार्ग में आगे बढ़ने के लिये करना चाहिये। यही इनका सदुपयोग है। इन्द्रियो का सद्उपयोग करने से यर्थाथ उददेश्य की सिद्धि होती हैं इसलिये विषयों में आसक्त ना होकर उनका उचित व्यवहार करना चाहिये जब तक इन्द्रिया है तब तक उनका विषयों में लगे रहना अनिवार्य है। अतएव उन्हे आत्मा को मिटाने वाले, लोक –परलाक बिगाड़ने वाले निन्दित विषयों में ना लगा कर सद्विषयों लगाना चाहिये। इन्ही इन्द्रिय निग्रह है''। 1

जिस पुरूष ने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया हो वही जितेन्द्रिय कहलाता हैं स्मरणीय है हठपूर्वक विषयों को टोकने से इन्द्रियां वश में नही होती। बल्कि हर पल हर क्षण यह स्मरण करने से कि विषय शरीर क्षण भंगुर है यह किसी भी समय नष्ट हो सकता है अतः हर क्षण सदैव ही शुभ कर्मो को करना है इस प्रकार का नित्य विवेक इन्द्रिय निग्रह में सहायक होता है।

1–हनुमान प्रसाद पोददार लोक संस्कृति अंक पृष्ठ 59

<u>घी अर्थात बुद्धि</u>– समस्त ज्ञानेन्द्रिया कमेन्द्रियों में बुद्धि का नियंत्रण रहता है मनुष्य शरीर में बुद्धि ही एक ऐसी अदभुत वस्तु है जो इन्द्रियों पर नियत्रंण रख कर उसको पतन के मार्ग से बचाती है मनुष्य का उत्थान–पतन बुद्धि पर ही निर्भर रहता है बुद्धि यदि शुद्ध है, जाग्रत है, तो अपने कार्य में कुशल सात्विक, सुन्दर, सुखदायक, मंगलकारक, लोक कल्याण कारी तथा ममवत्प्राति को ओर के मार्ग की ओर ले जाने वाले होगे। यदि बुद्धि ही बिगड़ी है तो सर्वनाश निशचित ही है।

बुद्धि यदि परम शुद्ध होकर सूक्ष्म हो जाती है तो वह मनुष्य सूक्ष्मदर्शी होकर बृहम का साक्षात्कार करने में समर्थ हो जाता है।

बुद्धि ही प्रमुख साधन हैं जिसके द्वारा स्वयं की आत्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है।

"प्रवृति व निवृति व कार्याकार्ये भयावहे।

ब्रधं मोक्षं च या वेति बुंद्धि सा पार्थ सात्विको।।

भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! प्रवृति और निवृति, कर्त्वय और अकर्त्वय एवं भय और अभय तथा बन्धन और मोक्ष को जो (सूक्ष्म) बुद्धि तत्व से जानती है, वह बुद्धि सात्विकी है।

इसी बुद्धि रूपी साथी के द्वारा शरीर रथ भली भांति परिचालित होता हैं यह मन इन्द्रियों का नित्य–निरन्तर शुभ कार्यो में ही लगाती है जिनसे स्वाभाविक ही लोकहित होता है यह बुद्धि कल्याण मार्ग में निश्चयात्मिका एक ही होती है। परन्तु अज्ञानी पुरूषों की बुद्धि अनेक भेद बाली अनन्त रूप बन जाती है" 1

राजस पुरूषों की बुद्धि राजसी और तामसों की तामसी हाती है।

"यया धर्म न धर्म च कार्य चाकार्य मेव च।

अयथावत्र जानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।।

अधर्म धर्ममिति य मन्यते तमसावृता।।

सर्वाथीनिवप रीताश्च बुद्धिः सा पार्थ तामंसी।।

1–गीता 18 / 30

जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म –अधर्म तथा अकत्वर्य को अर्थ नही जानता है यह बुद्धि राजसी है और जो तमोगुण से ढ़की हुई बुद्धि अधर्म को धर्म मानती है तथा और भी समस्त अर्थो का विपरीत मानती है। वह बुद्धि तामसी है। [1]

इन तीन प्रकार की बुद्धियों मे से केवल सात्विक बुद्धि के लिये घी शब्द प्रयुक्त होता है जो बुद्धि श्रेष्ठ बुद्धि है। जो सत्संग और शास्त्रार्थ सत्यशास्त्रों के अनुशीलन , भगवदभजन, और आत्मविचार से प्राप्त होती है और जिससे लोक कल्याण आत्म कल्याण का अम्युदय और अन्त में कल्याण –स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है।

विद्या–विद्या मनुष्य महामानव बना देती है समान्य अर्थ में अंक ज्ञान लिपि ज्ञान को ही विद्या कह दिया जाता है किन्तु गूढ़ अर्थ में "विद्या दद्याति विनयम" या सा विद्या या विभुक्त्ये" जो मुक्ति प्रदान करे, वह विद्या है। जो मनुष्य को विनय प्रदान करे और अन्त में मुक्ति दिलाये, मोह के बन्धन को बन्धन से मुक्त से मुक्त कर दे अर्थात अध्यात्म विद्या ही सही मायने में विद्या है।

विद्या प्राप्तकर मनुष्य बड़े से बड़े ओहदो, पर पहुँच सकते है धन, ऐश्वर्य, सम्मान आदि प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु जो ईश्वर की प्राप्ति में सहायक नही है, वह विद्या नहीं है। वर्तमान समय में विद्या का प्रचार–प्रसार करने के लिये बड़े –2 विद्यालय , महा–विद्यालय, शैक्षिक प्रतिष्ठान कार्य कर रहे है–किन्तु ऐसी विद्या त्याग की शुभ वृत्ति पर कुठाराघात करती है वह भोग परायणता को बढ़ाती है –जो केवल इस लोक के सुख को ही परम सुख मानना सिखलाती है।

जो परमुखा पेक्षी बनाती है जो मिथ्या अभिमान उत्पन्न कर परमार्थ करने की प्रवृति को हानि पहुँचाती है जो त्याग और लोक कल्याण को अनदेखा कर मोह और अभिमान का बढ़ावा देती है। और यहॉ तक कि ईश्वर के अस्तित्व को भी नकार देती है ऐसी विद्या नही है।

विद्या तो वह हैं जो मनुष्य शील सदाचार, लोक कल्याणकारी भावना, श्रृद्धा उत्पन्न करती हैं जो "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना को प्रखर कर सारे विश्व में परमात्मा के स्वरूप को दिखाकर सबको निर्बेर बनाती है। ऐसी अध्यात्म विद्या (वृहम विद्या) ही विद्या है।

1–गीता 18/30/31

सत्य –जो नाशवान् नहीं है, जो नित्य है, जो एक है, एकरस है, वही परमात्मा सत्य है। "सत्य तेरह प्रकार का बताया गया है, समता, दम, मत्सर, हीनता, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूया, त्याग, ध्यान साधुता, धैर्य, अहिंसा।" 1

इन तेरह उपायों द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है सत्य सदैव विकार रहित होता है उसका कभी भी नाश नही होता है मन सहित वाणी के यर्थाय कथन का नाम सत्य है अर्थात ज्ञानेन्द्रियों, कमेन्द्रियों ने जैसा अनुभव किया उसको उसी प्रकार वर्ठित करना, जिससे दूसरा भी ठीक उसी प्रकार अनुभव करे, जैसा कि वर्णित किया गया हैं। यही सत्य है

किन्तु ऐसा सत्य भी मान्य नहीं है जो दूसरे का हित का ही ध्यान ना रखे, सत्य वही है जो दूसरे के हित का ध्यान रखते हुये हूदय की सरलता से यथा साध्य यर्थाथ भाषण करना ही वस्तुतः सत्य है।

आचारानिह सत्यस्य यथा वदनुपूर्वशः।

लक्षणञच प्रवक्ष्यामि सत्य स्येह यथा वुमम।।

प्राप्यते च तथा तच्च श्रो तुमिहार्हसि।

सत्यं त्रयोदश विद्यं सर्व लोकेषु भारत।।

सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः।

अमात्सर्य क्षमा चैव हीस्तितिक्षान सूयता।।

त्यागो ध्यान मथार्यत्वं घृतिश्च संततं दया।

अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारा स्त्रयोदश।।

सर्वधर्मा विरूद्धेन योगेनैतदवाप्यते।

अक्रोध–मनुष्य अधिकार कर्त्वय के क्रम में सभी कार्य करता है यह श्रृंखला चलती रहती है कहीं अधिकार तो कहीं कर्त्वय किन्तु जब मन अनुरूप कार्य नहीं होता है तो मनुष्य की कामना पर आघात होता है। कहीं अधिकार पर , तो कहीं स्वार्थ सिद्ध नहीं होता है ऐसी स्थित मे मन में ज्वाला मयी वृत्ति उत्पन्न होती है। उस अग्नि में मनुष्य की बुद्धि विवेक नष्ट हो जाता है कर्त्वयाकर्तव्य का ज्ञान लुप्त हो जाता है। उस समय वह ऐसा ही कार्य कर बैठता है जो

1–महाभारत शान्ति पर्व (162/6–10

निन्दनीय भी हो सकता हैं यही क्रोध है।

"काम, क्रोध , और लोभ आत्मा का पतन करने वाले–ये तीन नरक के दरवाजे है। अतः– एव इन तीनों का त्याग करना चाहिये" 1 क्योंकि "क्रोध पाप कर मूल" है वह क्रोध दूसरे का जितना नुकसान नहीं करता है जितना कि क्रोध करने वाले का। क्रोधावेश में चक्षु वर्ण रक्त हो जाता है ह्रदय से जलन होने लगती है शरीर में कम्पन होने लगता है रोमांच हो आता है तथा जीभ पर से नियत्रंण हट जाता हैं मन बेकाबू हो जाता है तथा मनुष्य अनर्गल प्रलाप करने लगता हैं ऐसे अपशब्द बोलने लगता है जो भले मुनष्यों को शोभा नहीं देते। सामने वाला यदि निर्बल हैं तो क्रोधी उसे मारने–पीटने लगता है यदि समक्ष सबल हैं सबल है तो क्रोधी स्वयं ही अपना सिर फोड़ने लगता है क्रोध की अधि ाकता में आत्महत्या तक करने की कोशिश करता है

इन्ही सब कारणों को देखते हुये अच्छे समर्थ पुरुष या ज्ञानी पुरूष निर्बल पुरूष द्वारा ही प्राप्त हुये दुःख को सहन कर लेते हैं। तथा क्रोध नहीं करते।

अक्रोध कायरता नहीं है अक्रोध से पुरूष डरता नहीं है अपितु सहिष्णु होता है। क्योंकि वह जानता है कि क्रोध का दमन किये बिना वह ना तो स्वयं सुखी रह सकता है और ना ही उसके द्वारा समाज देश का मंगल हो सकता है।

अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु समाज में समरसता हेतु जो नियम धारण किये जाते है वही ध ार्म है और लोक द्वारा अपने व समाज के उत्थान तथा आध्यात्मिक उन्नति हेतु जो रीति रिवाज, नियम आदि अपनाये जाते है वही लोक धर्म का रूप ले लेता है और लोक धर्म हो जाता है।

1–त्रिविधं नीरकस्येदं द्वारं नाशन मात्मनः।

कामः क्रोध स्तया लोभ स्क स्मादेत जयं त्यजेत।।

गीता 16/21

लोकसाहित्य

हर्षातिरेक के क्षण, मिलन का सुखद आनन्द, विरह की वेदना, असहनीय कष्ट, संसार की नश्वरता, वैराग्य की भावना, आदि अनुभूतियाँ ही साहित्य सृजन की प्रेरणा देती रही है अपने अनुभव अपने भाव अपनी कल्पना, शब्दों के माध्यम लेकर मुख से फूटें होगें। प्रकृति की मनोहारी छटा देखकर वाणी उसकी प्रशंसा किये बगैर नहीं रह सकी। यहाँ सुख–दुःख की भावनायें जब सघन रूप से मस्तिष्क पर छा जाती हैं तो ह्रदय के संवेग भी उद्वेलित हो उठते है और वाणी फूट कर शब्दों को सहारा लेकर कागज पर कलम द्वारा संजोयें गये फूल साहित्य बन गये। लोक तो बहुत विस्तृत है। लोक से अलग तो अस्तित्व ही नहीं है लोक साहित्य लौकिक है" लोक साहित्य लोक के द्वारा और लोक के लिए अर्थात लोक जनों की भाषा और भावों से सृजित होता है। [1]

लोक साहित्य प्राकृतिक है उसमें कठिनता नही है वह तो प्रकृति द्वारा संरक्षित है। वर्षा मेघ, आंधी, धूप, हवायें, ओस, नदी, पहाड़ी, झरनों आदि द्वारा पालित–पोषित वह पुष्प है जिसका संरक्षण लोक द्वारा होता है जो कभी मुरझाता नहीं है ओर ना ही उसकी महक मन्द होती है वह उन कागज के फूलों की तरह नहीं है जो इत्र की महक से कुछ दिन महक कर बेकार सावित हो जाते है।

लोक साहित्य की रचना का आधार लोक भाषा , या बोली है, तथा लोकानुभव में उसकी विषय वस्तु है, "लोक साहित्य समुद्र की भांति है जिसकी भाव लहरियों और भाव गह्वरो का पार जाना आसान काम नही है किन्तु लोक साहित्य के रचियताओं ने उस गहराई में डूब कर अनूठे रत्न निकाले है। जो लोक कन्ठों से मुखरित हो रहे है। राम कृष्ण और शिव के अमरत्व को

1– लोक कला दर्पण राष्ट्रीय लोक कला महोत्सव स्मारिका पृ0 39

लोक में जितना प्रचारित करने का श्रेय लोकगीतों को है उतना पुराणों और इतिहास को भी नही है। उन्होने लोक के साधारण व्यक्तियों को उनके जीवन से तादात्म्य स्थापित करने का भी श्रेय प्राप्त किया है।'' [1]

लोक की भाषा की अपनी बोली होने के कारण लोक के लिए सुबोध है सरल है उनमें किसी प्रकार किलरता नहीं है अपने ही रति रिवाज अपनी उपमायें उपमेय हैं जिनको समझने में लोक को कोई कठिनाई नहीं होती है।

''लोक साहित्य में लोक की अभिव्यक्ति प्रधान है तथा उसकी अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध यम लोक है उसमें वह उदभासित एवं पल्लवित होती है यह लोकाभिव्यक्ति जीवन की सर्वागीणता से अभिपूरित रहती है तथा अपने परिवेश की संस्कृति का सामान्य ही नही अपितु परम्परा गत स्वरूप का समालोकन करती है तभी तो वह अपने लोक या समाज का प्रतिनिधित्व करती है इस दृष्टि से लोक साहित्य और लोक जीवन का प्रगाढ़ सम्बन्ध है वस्तुतः लोक साहित्य लोक विशिष्ट भी जीवंत परम्परित उद्भावनाओं से सम्प्रिकृत रहता है यह सभी जानते है कि लोक साहित्य का लोक भाषा के प्राण और शरीर जैसा संबन्ध है क्योकि लोक वाणी या लोक सरस्वती का अर्थ हैं भाषा गर्मित सरल भाव सम्मति।

समाज परिवार संस्कृत आदि के तत्वों का भरपूर ज्ञान देने पर भी लोक साहित्य के विविध रूपों में अन्तर्निहित समाज तत्वीय सामग्री को पहचान जा सकता है।'' [2]

लोक साहित्य लोक जीवन के प्रत्येक क्षण का अनुभव करके उसको अभिव्यक्ति करता है उसका धरातल भी वही रहता है उसकी अपनी जमीन है, अपना बीज है निज का श्रम ही फसल तैयार करती है और वर्षो वर्ष पर्यन्त यही कार्य प्रक्रिया चलती है जिसका प्रचार–प्रसार मौखिक रीति से होता है इसीलिये ''वेयर्ड'' ने इसे मौखिक कला कहा है। जो परम्परागत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के हस्तान्तरित होता रहता हैं यह श्रृँखला चलती रहती है इसीलिये इसका प्राचीन स्वरूप सुरक्षित रहता है।

---

(1)बुन्देली लोक साहित्य –डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव पृष्ठ 26

(2)बुन्देली लोक सुभाषित–डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृष्ठ 1

"लोक साहित्य में किसी देश या जाति की हजारों वर्षो की परम्परा राष्ट्र के उत्थान पतन मानव जाति के सम्पूर्ण जीवन का कहानी गुम्फित है। अतीत से लेकर आज तक की समन्त, बोद्धिक धार्मिक , सामाजिक, प्रवृतियों का विकास शील इतिहास – लोक साहित्य है लोक साहित्य के विषय में एक मत इस प्रकार है– [1]

राष्ट्र की सम्पत्ति राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक की सम्पत्ति होती है उसकी रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। " लोक साहित्य भी जनता की चीज हैं अन्न, जल सांस की तरह उसके जीवन अंग है"।

लोक साहित्य असीमित है इसी कारण कहा गया हैं– [2] (लोकास्तु भुवने जने) लोक की सत्ता सीमित नहीं हैं। वह किसी सीमा में आबद्ध नहीं हैं। उसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हैं। जो जीवन का प्रतीक और पर्याय है। उसकी प्राकृतिक, भौगोलिक, सीमायें नही बनायी जा सकती है। "लोक संस्कृति नित्य जीवन का अमूल्य साहित्य है लोक साहित्य का आशय नहीं है कि उसको गीतों में ही नियंत्रित कर दिया जाय। लोक साहित्य को कबीर तुलसी जायसी ने उतना समृद्ध किया हैं जितना कि उसे लोक भाषा में रचना करने बालों ने सम्पन्न और समलंकृत किया है लोक संस्कृति के साहित्य रूप की परख की वास्तविक कसौटी जन जीवन और जनमत का सत्य है यह सत्य परम पवित्र और धर्म मय है [3]

लोक साहित्य का लोक संस्कृति से अटूट संम्बन्ध है लोक साहित्य वह माटी है जो लोक जन हाथों का सहारा पाकर लोक विश्वासों लोक मूल्य लोकाचारों लोक दर्शन के स्वरूप के नियमों को लोकोक्तिया मुहावरे लोकगीत लोक गाथाओं में गढ़ता है जो लोक संस्कृति के तत्व है। " साहित्य लोक संस्कृति की आत्मा है और संस्कृति उसकी काया,

लोक साहित्य लोक संस्कृति को निर्माण करने का भी उत्तर दायित्व वहन करना है और उसका निर्वाह बही कर सकता है [4] लोक साहित्य को परिभाषित करते हुये एक विद्वान का कथन है साहित्य की दूसरी धारा अभिजात साहित्य या शिष्ट साहित्य है

---

(1)बुन्देली लोक साहित्य– डॉ0 राम स्वरूप श्रीवास्तव पृ0 27

(2)सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति विशेषांक –डॉ0 महादेव साहा पृ0 16

(3)सम्मेलन पत्रिका –डॉ0 राम लाल पृ0 9

(4)सम्मेलन पत्रिका –कोमल सिंह सोंलकी पृ0 15

साहित्य तो लोक की ही चीज है साहित्य की दोनों धारायें लोक से ही अनुप्राणित है अभिजात्य साहित्य की भाषा संस्कृत निष्ठ होने के कारण तथा छन्द अलंकार आदि से अलंकृत होने के कारण क्लिष्ट हो जाती है। अतः वह अपने को लोक जनों के धरातल से उपर उठकर स्थापित करती है अर्थात अभिजात साहित्य का असली रसास्वादन वही कर सकता है जिसे संस्कृति और रस छन्द अलंकार आदि का समुचित ज्ञान हो, वह रस छन्द अलंकार,

समास तथा संस्कृत शब्दों के माध्यम से श्रृगांर करती है अतः वह कुशलता से गूँथी गयी वेणी के समान जटिल हो जाती है। इसके विपरीत लोक साहित्य हर तरह के बंधनों से मुक्त अल्हड़ उन्मुक्त पहाड़ी नदी की तरह इठलाती बलखाती हुई लोक को आनन्दित करती रहती है। "लोक साहित्य लोक भाषा का वह साहित्य है जो अपने अर्न्तनिहित लोकत्व के कारण लोक मान्य होकर लोकगृहीत हो गया है और लोक मुख में जीवित है। [1]

जब से मानव ने सामाजिक स्वरूप ग्रहण किया है तभी से लोक साहित्य का जन्म हुआ किन्तु एक विद्वान का मत है–

लोक साहित्य की आयु का अनुमान लगाना जटिल कार्य है। परन्तु वर्तमान समय में लोक साहित्य तथा संस्कृति के अनुसंधान का वास्तविक श्री गणेश का श्रेय (जेम्स टाड को प्राप्त है जिन्होने राजस्थान की लोक कथाओं लोक गाथाओं एवं जन श्रुतियों का संकलन कर उनके आधार पर अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "एनाल्स एण्ड एक्टिबिटीज ऑफ राजस्थान का निर्माण सन 1829 ई0 में किया।[2]

उत्तर प्रदेश में सर्वप्रथम पं0 राम गरीब चौबे ने सन 1839 ई0 में कुक की प्रेरणा से उत्तरप्रदेश के लोकगीतों का संग्रह कर नार्थ इण्डियन नोटस एण्ड कवरेज मे छपवाया। सम्भवतः पं0 रामगरीब चौबे प्रथम भारतीय थे जिन्होने हिन्दी प्रदेश के लोकगीतों का संकलन कर उन्हें प्रकाश में लाने का प्रयास किया।"[3]

---

(1)बुन्देली लोक साहित्य परंम्परा और इतिहास–डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त पृ0 36

(2)लोक कला महोत्सव –डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय पृ0 133

(3)बुन्देली लोक साहित्य –डॉ0 राम स्वरूप श्रीवास्तव पृ0 26

इसीलिये विदेशी विद्वानों ने भारतीय ग्राम गीतों की मुक्त कण्ठ से प्रसंशा की हैं कर्नल एफ0 एल0 ब्रेनर के शब्दों में "मुझे हिन्दुस्तान के गाँवों के गीत यूगोस्लाविया नार्वे डेनमार्क, रूस फ्रान्स, इटली और इग्लैण्ड के ग्राम गीतों की अपेक्षा अधिक संजीव और " ह्रदय स्पर्शी प्रतीत होते है।" लोक में प्रचलित साहित्य यद्यपि अधिकांशतः कंठस्थ है। फिर भी यह ह्रदयग्राही है एवं वर्तमान समय में विद्वत्जनों द्वारा इसे लिपिबद्ध करके संजोने का प्रयास किया जा रहा है।

संस्कृति

किसी समाज देश काल की विकास यात्रा का अध्ययन करने के लिये सबसे उत्तम दर्पण संस्कृति ही है। संस्कृति ही उसका महत्वपूर्ण पक्ष होती है। इस सम्पूर्ण जगत में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें विचार बोध है जो कर्म करने के लिए स्वतंत्र है अतः वह भले बुरे कर्मो का भी विचार करता है। और विचार करते हुये भी सभी कर्मो को करता है इस कर्म चेष्टाओं को पाप, पुण्य, सुकर्म, कुकर्म भला बुरा इत्यादि कहा जाता है जिनके आधार पर उसकी संस्कृति को भी विशेषण मिल जाता है अतः संस्कृति क्या है? उसका स्वरूप क्या है? इस पर विचार करना अत्यन्त ही समीचीन है सर्वप्रथम संस्कृति शब्द पर की व्युत्पत्ति पर विचार करना आवश्यक है।

"संस्कृति शब्द प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में कहीं व्यवहार में नहीं आया है। अग्रेंजी शब्द कल्चर शब्द के स्थान पर संस्कृति शब्द की नवीन कल्पना की गई है, प्राचीन साहित्य के कल्चर शब्द के अर्थ में, आचार–विचार शब्द का प्रयोग है, अर्थात अंग्रेंजी भाषा का कल्चर शब्द जितने अर्थ को अन्तर्गर्भित कर प्रयुक्त होता है उतने अर्थ के प्रतिपादन के लिये प्राचीन भारतीय आचार विचार शब्द का प्रयोग किया करते थे, आज की भाषा में उस अर्थ के लिए "संस्कृति " शब्द व्यवहार में आने लगा है।[1] संस्कृति शब्द में 'कृ' धातु है वह क्रिया के अर्थ में है। क्रिया गतिशील होती है, सम उपसर्ग कृ धातु तथा ति प्रत्यय से संस्कृति शब्द बना है। संस्कृति के स्वरूप पर एक विद्वान का मत है कि "संस्कृति का स्वरूप क्या है? इस सम्बन्ध में मतैक्य मिलना कठिन होता है,

---

(1)महामहोपाध्याय पं0 गिरधर शर्मा, लोक सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक, भाग 39

यदि कहीं भारत में और भारतीय समाज में इस विषय पर विचार हो रहा हो तो मत वैषम्य का ठिकाना नहीं रहता। इस प्रश्न का उत्तर केवल बुद्धि के सहारे नहीं दिया जा सकता, भावना भी काम करती हैं, धर्म और राजनीति विषयक मान्यताएँ बीच में आ पड़ती हैं और ठण्डा वातावरण आवेश से गरमा उठता हैं शब्द नये होने से और अड़चन पड़ती हैं व्याकरण की व्युत्पत्ति चाहे सैकड़ों वर्ष पूर्व हो परन्तु पश्चिम के कल्चर ने ही (जिसका अर्थ स्वयं ही विवादों से परे नही) संस्कृति को व्यवहार में स्थान दिलाया [1] संस्कृति शब्द व्याख्याओं में मकड़जाल में फँस गया है। एक विद्वान का मत है– " संस्कृति शब्द आजकल घपले में पड़ गया है कोई इसे सभ्यता का और कोई शिष्टाचार का पर्याय वाचक समझता है सम्प्रदाय विशेष के लोग अपने मूल सिद्धान्तों को संस्कृति मान कर इसका प्रयोग करते हैं कुछ लोग भारतीय संस्कृति आर्य संस्कृति तथा जैन, बौद्ध , मुस्लिम संस्कृति के भेद–भाव ढूँठने में लगे है। [2]

संस्कृति शब्द का आशय इस प्रकार हैं वस्तुत" संस्कृति का अर्थ सम्यक कृति हैं, और संभूय कृति भी है अर्थात मनुष्य व्यक्तिशः सम्यक् कृति भी करता रहे और संघशः संभूय कृति भी करता रहे, उस समय सम्यक् कृति मानव को अति मानव बनाने में समर्थ होती है मनुष्य के दो जीवन है, एक वैयक्तिक जीवन दूसरा सामाजिक जीवन है, इन दोनो प्रकार के जीवनों में मनुष्य को सम्यक कृति करना चाहिये। जिससे उसकी संस्कार सम्पन्नता बढ़ती हैं जो उसको जीव से शिव बना देती हैं मानवी संस्कृति का यही ध्येय है। इसमे सम्पूर्ण मानवी शक्तियों की संस्कार सम्पन्नता अभीष्ट है "निर्वाचन की दृष्टि से संस्कृति और कृष्टि शब्द समानार्थक है संस्कृति शब्द अधिक व्यापकार्थ है,[3] और विशुद्धि का द्योतक है कृष्टि का भी उद्देश्य भूमि की प्राकृतिक अवस्था को परिशुद्ध करना ही है। कृष्टि की विभिन्न पद्धतियों द्वारा भूमि की अशुद्धियाँ दूर की जाती है रोंड़े आदि हटाये जा सकते है और घास फूस अलग कर भूमि साफ की जाती है।

---

(1)डॉ0 सम्पूर्णानन्द सम्मेलन पत्रिका– पृष्ठ 25 "भारतीय संस्कृति का प्राण"संख्या 23 (चेके एवं आषाठ अंक सन 1975 ई0 सम्पादक श्री राम नाथ सुमन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 12 सम्मेलन मार्ग इलाहाबाद–3 के पृष्ठ संख्या 60– वैदिक संस्कृति का आधार लेख से उद्धिदित

(2)स्वः पं0 राम नारायण मिश्र –साहि0 वाय0 पृ0 75 "लोक संस्कृति कया है" सम्मे0 पत्रिका

(3)श्रीपाद दामोदर सात बलेकर –सम्मेलन पत्रिका पृ0 45 "वैदिक संस्कृति के मूल तत्व"

इस प्रकार शुद्ध हुई भूमि में जल सिंचन किया जाता है और खाद डाली जाती है। कि भूमि इस योग्य हो सके कि बीज अच्छी तरह उग सके। इसी प्रकार मनुष्य की मानसिक और वास्तविक अवस्थायें भी विकसित होती है जैसे प्रत्येक क्षेत्र को कृषि योग्य बनाने में समस्त प्रक्रियायें आवश्यक नही वैसे ही प्रत्येक परिवार के बालकों को भी कतिपय सहज संस्कारों के कारण सभी प्रारम्भिक संस्कार आवश्यक नहीं। संस्कृति का मुख्य उद्देश्य विभिन्न संस्कारों द्वारा बालक की प्रतिभा व योग्यता का पूर्ण विकास इसकी सहज अभिव्यक्ति वैयक्तिक व सामाजिक कर्त्तव्यता एवं कृतज्ञता के पालन के रूप में होती है'' [1]

संस्कृति का अर्थ हैं परिमार्जित करना, शुद्ध करना परावर्तित करना, ओर समय तथा स्थिति सापेक्ष–लाभ हेतु बदलना जो उचित है उसे सभांलना और जो जीर्ण हो गया है उसे त्यागना भी आवश्यक है,'' संस्कृति प्रवाह है प्रवाह में जल शुद्ध होता हैं। स्थिर जल गंदा हो जाता है। उसे उपयोग में लाने के लिए या तो उष्ण करना होगा या निर्जतुक बनाने के लिये दवा डालनी पड़ेगी या और क्रिया करनी पड़ेगी। [2]

संस्कृति को मानव जीवन के विचारों का शुद्धि करण मानते है इस अनुसार '' संस्कृति है मानव जीवन के विचार आचार का संशुद्धीकरण अथवा परिमार्जन । वह है मानव समाज की सजी संवरी हुयी अन्तः स्थिति वह है मानव समाज की परिमार्जित गति, रूचि और प्रवृत्ति पुन्ज'' संस्कृति का अर्थ हुआ जिन्दगी जीने की पद्धति है [3] जिन्दगी जीने का तरीका जिसमें उसके आचार विचार दिखायी पड़ते है। उसके अन्तस्थल की दशा विचार आदि स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। '' यह जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता हैं जिसमें हम जन्म लेते है। इसलिये जिस समाज में हम जी रहे है या जिस समाज में हमने जन्म लिया है, उसकी संस्कृति , हमारी संस्कृति हैं इस दृष्टि से

---

(1)डॉ0 प्रसन्न कुमार आचार्य –पृ0 29 सम्मेलन पत्रिका संस्कृति और सभ्यता

(2)भाऊसमर्थ परिच्र्यर्या– संपादक रमाकान्त, लोक संस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य महावीर अग्रवाल के पृ0 148, 149 से उद्यृत।

(3)डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र पृ0 9 भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योग दान

संस्कृति वह चीज , कही जा सकती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुये है तथा जिसकी रचना और विकास में सदियें के अनुभव का हाथ है।" [1]

सदियों क्या युगों की यात्रा करते करते परिष्कृत एवं परिमार्जित होते आचार विचारों का इतिहास है संस्कृति का भारत वर्ष में सर्वप्रथम वैदिक युग से ही लिखित इतिहास प्राप्त होता है वेदों के दर्पण में "वेदोऽखिलोधर्म मूलम" इस बचन के आधार पर प्रचिलित सभी धर्मो का मूल वेद ही है, क्योंकि विद्वानों का मत है कि वैदिक काल से भी पूर्व यहाँ एक संस्कृति थी [2]

"संस्कृति में परिवर्तन, परिवर्द्धन काल क्रमानुसार हुआ करते हैं किन्तु उसकी सत्ता सदैव अक्षुण्ण रहा करती है। वह कभी मरती नहीं, मिटती नही, इतिहास के उदय काल से अब तक की भारतीय संस्कृति का समालोचन करने से यह बात बहुत सरलता से स्पष्ट होती है कि वैदिक युग में वैदिक (आर्य) अवैदिक (अनार्य) दो संस्कृतियों का संघर्ष भारत वर्ष में रहा है। तमिल संस्कृति जिसे द्रविड़ सभ्यता या संस्कृति कहा जाता है। से वैदिक संस्कृति का सर्वप्रथम संघर्ष प्रारम्भ होता है, उपनिषद काल, स्मृति काल, सूत्र काल , पुराण काल तंत्रकाल बौद्ध काल और मध्य काल से अब तक लगातार यह संस्कृति संघर्ष चल रहा है इतने पर भी भारतीय संस्कृति विनष्ट नही हुई।" [3]

वर्तमान समय में साधारणतया प्रयोग में सभ्यता और संस्कृति में अन्तर नही किया जाता है वस्तुतः देखा जाये तो साहित्य में भी ये प्रायः समानार्थक के तुल्य ही प्रयुक्त होता है किन्तु किसी जाति और राष्ट्रीय संस्कृति और सभ्यता का ठीक ठीक माप करने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों के मौलिक अन्तर को स्वीकार किया जाय। संस्कृति बौद्धिक विकास की अवस्थाओं को सूचित करती है और सभ्यता का परिणाम शारीरिक एवं भौतिक विकास है संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से है और सभ्यता का सम्बन्ध कार्य कलाप से है"

---

(1)रामधारी सिंह दिनकर पृ0 4 "हमारी सांस्कृतिक एकता" महामहोपाध्याय "लोक संस्कृति का आगम मार्ग"

(2)पं0 नारायण शास्त्री खिस्ते –पृ0 36 "सम्मेलन पत्रिका"

(3)महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज एम0 ए0 –पृ0 19 सम्मेलन पत्रिका "भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की अभिव्यक्ति"

"वस्तुतः संस्कृति पद्धति या रिवाज या सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक संस्था नहीं है, नाचना, गाना, साहित्य, मूर्ति कला, चित्र कला, गृह निर्माण इन सब का अन्तर्भाव सभ्यता में होता है, संस्कृति अलंकरण है सभ्यता शरीर है, संस्कृति अपने को सभ्यता द्वारा व्यक्त करती है। संस्कृति वह ढ़ाचा है जिसमें समाज के विचार ढ़लते है वह बिन्दु है जहाँ से जीवन की समस्यायें देखी जाती है।[1]

"जगत का मूल तत्व चेतन है, जीव नित्य है। अपने सुख दुःख का स्वंयकर्ता है, कर्मफल भोगना ही होगा, जगत का विकास देवताओं अर्थात आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक, शक्तियों के सहयोग से हुआ है। संघर्ष से नहीं जब तक यह तथ्य समझ में ना आयेगा तब तक भारतीय संस्कृति से दूर रहेंगें भारतीय संस्कृति की सदृढ़ मान्यता है कि "एक शत वित्रा बहुधा बदन्ति"[2] वह तत्व जिसकी उपासना की जाती है वह एक है। उसे किसी नाम से पुकारा जाय, किसी भी भाषा में बुलाया जाये, भारतीय जीवन के दो आधार है धर्म का कर्त्तव्य का। अधिकारों का परित्याग कदापि नहीं होना चाहिये, व्यवहार में ध्यान रखना चाहिये कि परस्पर भावयन्त श्रेयः परं वाचस्थ। एक दूसरे के हित साधन से परम श्रेय की सिद्धि होती है।

"भारतीय संस्कृति का यही प्राण है इसकी अभिव्यक्ति के अनेक साधन है" [1]

"संस्कृति का अध्ययन साहित्य कला, समाज शास्त्र, नैतिक कला व धर्म भीरू के रूप में कर सकते है। सभ्यता का अर्थ है समाया, समाज में रहने की योग्यता अर्थात सामाजिकता बन्धन पर जोर देती है। सभ्यता राष्ट्र सभाकृ शब्द से बना है जिसका अर्थ है सभा में बैठने की योग्यता। सभा में शिष्टाचार के नियम का पालन किया जाता है सामाजिक भावना का अनुभव किया जाता है अतएव सभ्यता शब्द शिष्टाचार के नियमों के साथ ही सामाजिक उत्तरदायित्व सामाजिक बन्धन एवं सामाजिक व्यवहार का निर्देश देता है सभ्यता शब्द का सम्बन्ध नागरिकता से भी है ग्राम की अपेक्षा नगर में विभिन्न वर्ग के कहीं अधिक लोगों का सुख शान्ति पूर्वक रहना पड़ता है।

---

(1)डॉ0 सम्पूर्णानन्द –सम्मेलन पत्रिका पृ0 25 "भारतीय संस्कृति का प्राण"

(2)डॉ0 सम्पूर्णानन्द –सम्मेलन पत्रिका पृ0 28 "भारतीय संस्कृति का प्राण"

ग्रामीणों की अपेक्षा नागरिक अधिक शिक्षित अधिक संगठित और अधिक सभ्य होते है मौलिक दृष्टि से जो यह अन्तर था वह धीरे– धीरे व्यापक हो गया जो व्यक्ति सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास की दृष्टि से अधिक उन्नत थे वे अपने आपको सभ्य समझने लगे। इस प्रकार सभ्यता शब्द का अर्थ हो गया , शिक्षा बौद्धिक विकास उच्च नैतिक शिक्षा भौतिक सुख समृद्धि। [1]

सभ्यता का लक्ष्य मनुष्य को अधिक सुखी समृद्ध बनाना, अधिक सभ्य और शिष्ट बनाना। इसके विपरीत ''संस्कृति से मनुष्य की आत्मा संस्कारित होती है व्यक्तिगत जीवन के साथ साथ सामाजिक जीवन के हर पहलू में संस्कृति के दर्शन होते है। सभ्यता की नकल की जा सकती है, परन्तु संस्कृति की नहीं, मनुष्य वेश–भूषा, खान–पान, रहन–सहन, की नकल कर सकता है। किन्तु आंतरिक भावों और विचारों की नकल करना दुष्कर है, । संस्कृति के क्षेत्र में भी वर्ग जीवन और सामूहिक लोक जीवन में अन्तर रहा है वर्ग से मेरा अभिप्राय उन लोगों से है जो धनवान हैं जिनके पास अवकाश है जो शिक्षित हैं शेष समूह के अन्तर्गत हैं किन्तु संस्कृति के वे पहलू जो सामूहिक लोक जीवन में समाविष्ट नही है अल्पकाल में ही एंकागी एवं निस्तेज होकर पतनोन्मुख होने लगते है इसीलिये संस्कृति एवं मानव जाति के वास्तविक प्रेमियों ने सदैव लोक समूह से सम्बंध स्थापित करने का नवीन साधनों को खोज निकालने का तथा उनको अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न किया है। [2]

संस्कृति शब्द अपने गर्भ में विभिन्न अर्थो को छिपाये है विभिन्न विद्वानों ने इसको विभिन्न आलोकों में इसके दर्शन किये है। यह शब्द अत्यन्त व्यापक और गहरा है कि '' संस्कृति बृह्मा की भाँति अवर्णनीय है वह व्यापक अनेक तत्वों का बोंध कराने वाली जीवन को विविध प्रवृत्तियों से सम्बंधित है अतः विविध अर्थो एवं भावों में उसका प्रयोग होता है इस प्रकार यह एक पकड़ में ना आने वाला शब्द बन गया है संकुचित साम्प्रदायिकता से लेकर उच्च मानवादर्शो की अभिव्यक्ति तक इसका क्षेत्र है यह सब होते हुये भी प्रयोग की इस विविधता के बीच भी इसका एक निश्चित अर्थ तो है ही समाज जीवन के शरीर को लेकर जिन बाहयाचारो की सृष्टि हुई है। मानव

---

(1)डॉ0 प्रसन्न कुमार आचार्य सम्मेलन पत्रिका पृ0 31 संस्कृति और सभ्यता

(2)शुभमूर्ति रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर सम्मेलन पत्रिका पृ0 40'' धार्मिक लोक संस्कृति के कतिपय स्डीत''

मन की बाह्य प्रवृत्ति मूलक प्रेरणाओं से जो कुछ विकास हुआ है उसे सभ्यता कहेंगे और उसकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों से जो कुछ बना है उसे संस्कृति कहेंगे। शरीर और आत्मा की भाँति सभ्यता एवं संस्कृति जीवन की दो भिन्न प्रेरणाओं को व्यक्त करती है। दीपक की लौ सभ्यता हैं तो उसके अन्दर भरा स्नेह संस्कृति है सभ्यता जीवन का रूप है संस्कृति उसका सौन्दर्य है जो रूप से भिन्न भी है अभिन्न भी है जो उसके पीछे झाँकता है और जीवन के अवगुण्ठन से भी बाहर फूटा पड़ता है। पर वस्तुतः उसके अन्तर मे समाया हुआ है। इसीलिये संस्कृति अदृश्य जीवन –तत्वों की भाँति कुछ रहस्य मय एवं दुर्बोध हो गयी शब्दों की पकड़ में ठीक–ठीक नहीं आती फिर भी इतना कह सकते है कि संस्कृति किसी देश जाति को आत्मा है, इससे उसके उन सब संस्कारों का बोध होता है जिनके सहारे वह अपने सामूहिक, सामाजिक जीवन के आदर्शो का निर्माण करता है। वह विशिष्ट मानव समूह के उन उदात्त गुणों को सूचित करती है जो मानव जाति में सर्वत्र पाये जाने पर भी उस समूह की विशिष्टता प्रगट करते है जिन पर अधिक जोर दिया जाता है। [1]

मानव समूह जाति राष्ट्र के ऐसे गुण जो उसे अन्य से अलग पहिचान दिलाते है ऐसे क्रिया कलाप आचार विचार संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं, जिनमें कल्याण की भावना हो, जो मानवता को उच्च दिशा की ओर अग्रसित कर सकें। अपने संसाधनों को मानवता की रक्षा में लगाने की ओर उन्मुख करते हो "धन विद्या शक्ति की अवज्ञा हमारे यहाँ नहीं थी, यह सबने माना है कि औसत व्यक्ति वर्ग या समाज को इसकी आवश्यकता है पर इसका उपयोग मनुष्य किस प्रकार करता है। इसे देखकर ही संस्कृति का अनुमान लगाया जा सकता है। रावण परम विद्वान था शक्तिमान भी था उसने विद्या और शक्ति का दुरूपयोग किया इसीलिये राक्षस कहलाया,। आज संसार में विद्या की कमी नहीं है शक्ति को कमी नहीं, धन की कमी नहीं, बल्कि इनके महत्व में पूर्व काल से अधिक वृद्धि हो गयी है तब भी इनके द्वारा मानव जाति और मानव शक्तियों का भयंकर विनाश हो रहा है।

---

(1)रामनाथ "सुमन" सम्मेलन पत्रिका पृ0 6 सम्पादकीय

भयंकर आविष्कारों ने मानव जाति के भविष्य को खतेरे में डाल दिया है, यह विद्या का व्यभिचार है, इसे संस्कृति नही कह सकते ।[1]

विभिन्न विद्वानों ने संस्कृति को परिभाषाएं देकर उसके स्वरूप को समझाने का प्रयास किया है।

पाश्चात्य आधार

"रार्वट वस्टेड – संस्कृति को सामाजिक आचार–विचार मानते है– उनके अनुसार "संस्कृति वह सम्पूर्णजटिलता है जिसमें वे सभी वस्तुयें सम्मिलित हैं जिन पर हम विचार करते हैं कार्य करते है, और समाज के सदस्य होने के नाते अपने पास रखते है"[2]

फेयर चाइल्ड भी संस्कृति में समाज के महत्व को स्वीकार करते है उनके अनुसार "प्रतीको द्वारा सामाजिक रूप से प्राप्त और संचारित सभी व्यवहार प्रतिमानों के लिए सामूहिक नाम संस्कृति है" ।[3]

"संस्कृति सीखे हुये व्यवहार की वह समग्रता है जिसमें कि एक बच्चे का व्यक्तित्व पलता है और पनपता है।" "संस्कृति वह जटिल समग्रता हैं जिसमें ज्ञान, विश्वास कला आचार, कानून प्रथा तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है। "टायलर "[4]

"संस्कृति उन भौतिक तथा बौद्धिक साधनों या उपकरणों का सम्पूर्ण योग है जिनके द्वारा मानव अपनी प्राणि शास्त्रीय तथा सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि तथा अपने पर्यावरण से अनुकूलन करता है"। पिडिगटन [5]

"संस्कृति प्राप्त आवश्यकताओं की एक व्यवस्था तथा उददेश्य मूलक क्रियाओं की संगठित व्यवस्था है। मौलिनोवस्की [6]

(1)रामनाथ "सुमन" सम्मेलन पत्रिका 10 "सम्पादकीय"

(2)Rovert Beirstedt- The Socal orders (1957- P. 106

(3) H.P. Fairchild- Declionary of sociolgy p-80

(4)टायलर – रवीन्द्रनाथ मुकर्जी एवं भरत अग्रवाल

(5)पिडिगटन – समाज शास्त्र के मूल तत्व पृ0 194

(6)मैलिनोवस्की – वही

"संस्कृति सम्बद्ध सीखे हुये व्यवहार प्रतिमानों का सम्पूर्ण योग है जो कि एक समाज के सदस्यों की विशेषताओं को बतलाता है और जो इसीलिये प्राणी शास्त्रीय विरासत का परिणाम नही होता है[1] "हावल" "हमारे रहने सोचने के तरीकों में रोज की अन्तः क्रियाओं कला में धर्म में मनोरंजन तथा आमोद–प्रमोद में संस्कृति हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है"

[2] मैकाईवर और पेज

भारतीय आधार"

डॉ0 राधाकृष्णन ने संस्कृति को मानव जीवन के लिये प्रेरणादायी माना है इनके अनुसार "संस्कृति वह वस्तु हैं जो स्वभाव माधुर्य, मानसिक, नीरोगता एवं आत्मिक शक्ति का जन्म देती है।

डॉ0 राधा कृष्णन [3]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृति को धर्म के समान शाश्वत माना हैं उनके अनुसार " संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है धर्म के समान वह भी अविरोधी वस्तु हैं वह समस्त दृश्यमान विरोधों से सामंजस्य उत्पन्न करती हैं

आचार्य हजारी प्रसाद[4]

---

(1)हावल –

(2)मैकाईवर और पेज – विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली –7

(3)डॉ0 राधा कृष्णन –"स्वतंत्रता और संस्कृति " अनु0 विशम्भरनाथ त्रिपाठी पृ0 33

(4)अशोक के फूल– पृष्ठ 65

रवीन्द्रनाथ ठाकुर संस्कृति को जीवन का अंग मानते है। उनके अनुसार जीवन का संचार जीवित माध्यम से ही सम्भव है और संस्कृति में मन का जीवन है। यह केवल मनुष्यों के पारस्परिक आदान प्रदान और विचार विनिमय द्वारा फैल सकती है। संस्कृति विकासशील है और जीवन के विकास के साथ ही परिवर्द्धित और परिवर्तित होती है।

रवीन्द्र नाथ ठाकुर [1]

डॉ0 मोहन शर्मा आचार विचार को ही संस्कृति मानते हैं उनके अनुसार " आचार विचार का ही दूसरा नाम संस्कृति हैं। ये आचार विचार बुद्धि तथा अुनभव जन्य ज्ञान की भित्ति पर आश्रित हैं।

डॉ0 मन मोहन शर्मा [2]

डॉ0 सच्चिदानन्द राय भी संस्कृति को मानव जीवन के शुद्धि करण की प्रक्रिया मानते है उनके अनुसार "संस्कृति मानव जीवन की एक विशिष्ट क्रिया तथा स्थिति है जिससे सम्पूर्ण जीवन प्रभावित ही नही अपितु अलंकृत भी होता है।

डॉ0 सचिचदानन्द राय [3]

उपरोक्त सभी परिभाषाओं में आचार–विचार को ही संस्कृति का मुख्य प्रतिपाद्य माना गया है संस्कृति को हम किसी धर्म या मजहब से नहीं जोड़ सकते हैं, अपितु इसे लोकाचार से जोड़ना तर्क संगत और न्याय संगत होगा। प्रायः यह देखा गया हैं कि कहीं हिन्दू और मुसलमान विभिन्न धर्माबलम्बी होते हुये भी कुछ साझा संस्कृति व रीति रिवाजों का पालन करते है।

संस्कृति विचारों और शिक्षा पर आश्रित है उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति के विचारों में परिवर्तन होता है और यह परिवर्तन उसकी संस्कृति में दिखता है मनुष्य एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में पलायन करता है वह दूसरी संस्कृति के कुछ गुण अपने में समाहित कर एक नयी संस्कृति को जन्म देता है आज हम भारतीय संस्कृति को पुरातन समझ कर पाश्चात्य संस्कृति को अपना रहें है जिसकी चेतना हमें आज को आधुनिक शिक्षा प्रणाली से मिलती है।

"भारतीय संस्कृति अपने प्राचीन समाज के काल खण्ड एवं आचार विचार पर आधारित हैं आज

---

(1)विश्व मानवता की ओर, –अनु0 इलाचन्द्र जोशी पृ0 198

(2)भारतीय संस्कृति और साहित्य –पृ0 24

(3)हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानवतीवादी चेतना –पृ0 3

के परिवेश में उसमें कुछ कमियॉ नजर आ सकती है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है भारतीय संस्कृति को भुला दिया जाये। संस्कृति का सम्बन्ध जल वायु विशेष से भी है पाश्चात्य देशों की जलवायु के कारण ही उनके आचार– विचार रहन, सहन तथा, पहिनावा हमसे भिन्न है अतः उनकी संस्कृति भी हमसे भिन्न है। पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण उचित नहीं है हम उन पक्षों को अंगीकार कर सकते हैं जिनकी आवश्यकता आज के आधुनिक युग में हमारे लिये हो। हमारी भारतीय संस्कृति आवश्यकताओं पर आधारित है उनमें दिखावा या मिथ्याभिमान नहीं है आज के भौतिक युग में इस दिखावे के कारण ही हमारी संस्कृति में बदलाव आया है। आधुनिक विचार धारा के लोग इस संस्कृति को ग्रामीण व भद्दी कहने लगे है जबकि वास्तविकता यह नही है। आज के भौतिक वादी युग की जिन आवश्यकताओं को हम संस्कृति से जोड़ रहें है। वह हमारा विकास नही कर सकती है। आधुनिक संस्कृति में भोजन का अर्थ स्वाद है जीवित रहने के लिये भोजन नहीं किया जाता है यही कारण कि आज का मनुष्य उदर सम्बन्धी विकारो से ग्रस्त है। आज की संस्कृति में वस्त्र शरीर ढँकने या गर्मी सर्दी से बचने के लिए नहीं अपितु फैशन व सम्मान का.पर्याय बन गये है मकान बड़े– बड़े बॅगले व अन्य भौतिक सुविधायें भी सम्मान का पर्याय है आज के परिवेश में इन भौतिक सुविधाओं की आवश्यकता तो हो सकती है किन्तु स्वयं को इन वस्तुओं की प्राप्ति के लिये मिटा देना उचित नहीं है। इस भौतिक वादी युग में शिक्षा के प्रसार के साथ हमारे दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हो रहा है तथा नई चेतना जाग्रत हो रही है ऐसे संस्कृति में भी परिवर्तन होना अवश्यभावी होना दिखाई पड़ रहा है।

जबकि '' भारतीय संस्कृति की मूल धारा है आत्म शुद्धि त्याग एवं तप के जीवन द्वारा सच्ची सामाजिक सभ्यता का निर्माण हमारे धर्म में हमारी समाज व्यवस्था में हमारे शिक्षा क्रम में हमारे चिकित्सा शास्त्र में हमारे साहित्य में हमारी कला में जीवन के इसी उदान्त कल्पना और संस्कृति की धारा हैं अंधकार से उठकर प्रकाश असत्य से सत्य मृत्यु से अमरत्व के स्त्रोत को ओर यात्रा करने की वृत्रि''। [1]

जीवन की दैनिक दिनचर्या के माध्यम से आत्मा की शुद्धि करना, सामाजिक समरसता बनाये रखने के आचार व्यवहार को संस्कार रूप में ग्रहण करते हुये उसे जीवन यापन का अंग बनाना ही संस्कृति को दर्शाता है लोक जीवन जिस संस्कृति को माध्यम बनाकर जीवन यापन करात हैं वह संस्कृति ही लोक संस्कृति कहलाती है।

---

(1)रामनाथ ''सुमन''– सम्मेलन पत्रिका पृ0 10 ''सम्पादकीय''

लोक संस्कृति व धार्मिक लोक गीत

लोक संस्कृति शब्द लोक और संस्कृति दो शब्दों से निर्मित है लोक तथा संस्कृति के सम्बन्ध मं ईश्वर शरण पाण्डेय का कहना हैं संस्कृति सप्रष्यय कुछ अस्पष्ट सा है इसके स्थान पर सामाजिक चेतना एप्रत्यय का इस्तेमाल कहीं अधिक सटीक है संस्कृति की सभी कृतियाँ –यथा राजनीति, विधि, नैतिकता, कला, विज्ञान, दर्शन और धर्म लोगो के आत्मिक कार्य कलाप, मानव की सामाजिक चेतना के मुख्य रूप हैं मानव कृतित्व और कर्तव्य की व्याख्या संस्कृति है"[1]

यह तो सर्व विदित हैं कि वैदिक युग पहले भी कोई ना कोई संस्कृति तो होगी ही, जो परिष्कृत होते–2 वैदिक संस्कृति हो गई। मानव समाज की सभ्यता और संस्कृति सृष्टि के जन्म से प्रारम्भ होती हैं तथा विभिन्न पडावों पर चलते चलाते शिक्षित और परिष्कृत होती रही। वही लोक संस्कृति ही वैदिक संस्कृति को जननी है "भारतीय जीवन के अनन्त श्रोतो का मूल उद्‌गम लोक संस्कृति ही है संस्कृति शब्द बहुत ही व्यापक है और गम्भीर अर्थ का बोधक भी है मेरी समझ में सुधरे हुये संवारे हुये संस्कारों और आचार–विचारों का समुच्चय ही संस्कृति है। भारतीय संस्कृति का संस्कार लोक संस्कृति द्वारा हुआ है यह लोक संस्कृति अपने प्रकृत रूप में आज हमारे गाँवों जंगलों और पर्वतों में कुदरत की छाया में अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हुये है। यह ठीक हैं कि संस्कृति कभी भरती नहीं परन्तु यह भी सत्य है। कि समयानुसार संस्कृति मेंपरिवर्तन तो हुआ ही करते है परिवर्तन बुरा नहीं किन्तु आमूल परिवर्तन विनाशक भी होता है। [2]

"भारतीय चिन्तन में संस्कृति के पर्याय के रूप में आचार–विचार शब्द प्रचलित रहा। संस्कृति शब्द आंग्ल भाषा के शब्द कल्चर का अनुवाद है प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में इसका कहीं भी प्रयोग नहीं मिलता है। इस प्रकार लोक संस्कृति का मूलार्थ होगा "लोकाचार" अर्थात लोक में प्रचलित आचार–विचार यहाँ लोक शब्द ग्रामीण अथवा संस्कृति न होकर अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है। लोक यहाँ जन समस्त का संकेत हैं जहॉ तक मानव समाज का प्रसार है ।

---

(1)ईश्वर शरण पाण्डेय–(लोक संस्कृति महावीर अग्रवाल लोक संस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य) के पृ0 83 से उद्‌धृत

2–आचार्य जुगल किशोर–सम्मे0 पत्रिका पृ0 16

वहाँ तक लोक की व्याप्ति है इसी लोक की आचार–विचार सम्बन्धी क्रियायें जिस समूह चेतना में स्पन्दित होती है। उसे लोक संस्कृति कहा जायेगा। इस रूप से यह वेद से आगे का प्रस्थान है। प्रस्थान से आगे बढ़कर बीज भाव है कहने का तात्पर्य है लोक मूल है वेद का न कि वेद मूल हैं लोक का। लोक संस्कृति समग्र बोध की संज्ञा है। जिसे हम चैतन्य कहते हैं। जो समग्रोपयोगी भजनीय एवं स्वीकार्य बने रहने के लिये इसका देशकाल एवं अवसर के अनुसार स्वरूप संस्कार भी होता रहता है । इस रूप में लोक संस्कृति मानव का वह आयाम है। जिससे टकराये बिना उसकी यात्रा (जन्म से मृत्यु पर्यन्त) हो ही नहीं पाती । इसकी व्यप्ति के सन्दर्भ में जैमनीय उपनिषद ब्राहमण में कहा गया है कि–

बहु व्याहितो वा अयं बहुशोलोकः

कः एतद् अस्य पुनरी हतो, अग्रात।। 328

यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में यह प्रभूत हैं" [1] किसी भी देश की संस्कृति का मूल उद्‌गम लोक जीवन है और लोक संस्कृति को मानव की सामूहिक ऊर्जा स्रोत समझना चाहिये।

"संस्कृति को परिभाषा या उसका स्वरूप अध्ययन से ही नहीं वरन् अनुभव से जाना जा सकता हैं जैसे गुड़ बहुत मीठा होता है इतना कह देने से या सुन लेने मात्र से गुड़ की मिठास का परिचय नहीं मिलता अपितु खाकर अनुभव करने से माधुर्य का वास्तविक बोध होता है। संस्कृति में परिवर्तन और परिवर्द्धन काल क्रमानुसार हुआ करते है। किन्तु उसकी सत्ता सदैव अक्षुण्ण रहती हैं संस्कृति का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से लेकर अब तक विभिन्न संस्कृतियें में संघर्ष चलता रहा है। किन्तु भारतीय लोक संस्कृति कभी विनष्ट नहीं हुई है यह अवश्य कहा जा सकता है उसमें परिवर्तन स्वरूप कुछ विकार अवश्य आ गये। किन्तु अन्य देशों की संस्कृतियाँ अब लुप्त प्रायः हो गयी किन्तु हमारी भारतीय संस्कृति अपनी सत्ता ज्यों की त्यों सुरक्षित बनाये हुये है।

1–डॉ0 त्रिभुवन नाथ शुक्ल, लोक कला दर्पण पृष्ठ (26)

"लोक संस्कृति की आवधारणा" 'संस्कार भारती'

"राष्ट्रीय लोक कला महोत्सव संपादक अयोध्या प्रसाद गुप्त

वह इसलिये कि भारतीय संस्कृति की आत्मा लोक संस्कृति है यही उसका वैशिष्टय है" [1] भारतीय मूल संस्कृति का तात्विक अंश है लोक संस्कृति। संस्कृति के नाम पर भ्रमवश खान–पान रहन–सहन, और तरीकों की चर्चा होने लगती है। जो सभ्यता के तत्व हैं जो परिवर्तित होते रहते है। "शिष्टाचार तो देश काल के अनुसार परिवर्तित हुआ करते है। यदि रहन–सहन को संस्कृति मानते है तब वह परिवर्तन शील होगी, किन्तु गहराई से विचार किया जाय तो समाज के आचार–विचार , रहन सहन, पहनावा संस्कृति नही हो सकते। यह सब सभ्यता के अंग हैं संस्कृति का सम्बन्ध हमारे मन, हृदय और मस्तिष्क के संस्कारों में रहता है इस दृष्टि से संस्कृति स्थायी है, समयानुसार उसमें विकास और ह्रास अवश्य हुआ करते है। संस्कृति शब्द विशिष्ट जन समुदाय के विचारों का बोधक है और लोक संस्कृति साधारण जन समुदाय का।

लोक संस्कृति के मूल तत्व–

1–विभिन्नता मेंएकता

2–वाहय रूप परिवर्तन, पर तात्विक स्थिरता

3–मानवता और सहिष्णुता

4–प्रकृति की उपासना

5–अमर सत्य का (जो सदा सरल होता है।) पालन

6–सब प्रकार की सद्‌विद्या और कला कौशल की उन्नति

7–आध्यात्मिक विकास

8–सन्तो तत्वज्ञानियें, महापुरूषों का युग युगान्तर में अटूट प्रार्दुभाव

9–ज्ञान की पिपासा

10–प्रजा पालक शासन

इस तात्विक विवेचन से भारत का मुख सदा उज्जवल रहा है मित्रता से एकता मानवता ओर सहिष्णुता का तो यहाँ हर युग में आदर्श रहा है [2]

1–महामहोपाध्याय गोपी नाथ कविराज–पृ0 (21) सम्मेलन पत्रिका

2–पं0 राम नारायण मिश्र –पृ0 सम्मेलन पत्रिका पृ0 65

विभिन्न प्रान्तों के वेश–भूषा रहन सहन आहार–व्यवहार में भेद होते हुये भी राम कृष्ण, सीता सावित्री के नाम पर नामकरण संस्कार होता आया है।

लोक संस्कृति सहज सुलभ दर्पण लोक गीत हैं जिनमें लोक संस्कृति दिखलायी पड़ती है। भारतीय लोक में अनेक प्रकार की भाषा, शैली बोली प्रचलित हैं उन किन्तु उन में गाये जाने वाले लोक गीतों में महज एक ही शाश्वत संस्कृति के दर्शन होते है।

"सामान्य रूप से सम्पूर्ण भारत में पंरपरागत एक ही संस्कृति परिव्याप्त है। इस संस्कृति को अभ्यांतरिक एवं ब्राह्यांगिक दो वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है। यद्यपि उमय अंग परस्पर परिदापित एवं प्रभावीकरण क्रिया समन्वित रहने चले आते है। क्योंकि ब्राहय अंग का आहार भी लौकिक रूप से आन्तरिक क्रिया शीलता नहीं है किन्तु उसमें भौतिक अथवा लौकिक उपयोगिता की प्रतिब्द्धता प्रमुख रहती है।

अभ्यांतरिक अंग का आधार गहन चिन्तन उसकी संशुद्धि के साथ शब्द मय सद्चिद् आनन्द की संस्थापना की प्राथमिकता हैं जिसमें बाहय उपयोग की क्षीणता अभिभूत होती हैं। जिसमें बाहय उपयोग की क्षीणता अभिभूत होती हो, किन्तु वह शाश्वत यर्थात सम्पूरित चेतना एवंम आल्हादित हो।

भारत के जन–2 का उत्स एवंम परम्पराओं की श्रृँखलाओं को अर्गलाओं की मूल धारा का उद्गम भाव स्थल एक होने के कारण समस्त भारत की समग्र रूप एक ही संस्कृति है। किन्तु भौगोलिक स्थित वातावरण एवं परिस्थिति राज्य विभेद के कारण भारत के उच्चतम् वर्ती भू भागों की संस्कृति में स्वाभाविक रूप से अन्तर झलकने लगता है" 1 लोक जीवन में घटित सुख दुःख, हास–परिहास जय–पराजय का इतिहास साक्ष्य लोकगीत है। उनमें व्याप्त धर्म, विश्वास, सहजता, शालीनता, दया , परोपकार आदि जो लोक जीवन के प्राण है वे ही लोक संस्कृति केमूल तत्व कहे गये है। "भारतीय लोक संस्कृति को आत्मा भारतीय साधारण जनता है, जो नगरों से दूर गाँवो वनों, पर्वतों पर निवास करती है। "आत्मौपम्येन सर्वत्र" वही भारतीय लोक संस्कृति का सिद्धान्त है

1–डॉ0 कृष्णानन्द हुण्डैत–स्मारिका बुन्देलीवानी पृ0 41

इसी सिद्धान्त का पालन करती हुई भारतीय साधारण जनता बृहम तत्व और माया तत्व को अनजाने में ही समझ लेती है। भारतीय ग्राम वासिनी संस्कृति के मूलाधार जिन्हें आज कल की भाषा में बनेचर अपढ़ कहा जाता है। भारतीय संस्कृति कि जीवित जाग्रत प्रहरी है जिस भाषा तत्व को हर्वर्ट स्वेन्सर आजीवन समझने में लगे रहे तथा असमर्थ रहे उसे हमारे अपढ़ भारतीय किसान सरलता से समझते है। भारतीय लोक संस्कृति के संरक्षक प्रतिष्ठापक ये ग्रामीण परम हंस अथवा अबोध बालक की भांति स्वयं अपने को कुछ नहीं समझते। 1

"भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। उनकी संस्कृति लोक संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को सबसे बड़ा दान दिया हैं। वह है "आत्मीयता" अपने समान ही सबको समझना" 2

"हमारी लोक संस्कृति का मूल है। दूसरों के लिये जिओ। 3

लोक संस्कृति मे पग–2 लोक कल्याण की भावना झलकती है जैसे उनके दिन फिरे बेसेई सबके फिरे यह वाक्य प्रत्येक शुभ कार्य में अवश्य कहा जाता है। भारतीय समाज में कृषि प्रधान देश होने के कारण श्रम को अधिक महत्व दिया गया है।

लोक संस्कृति की आत्मा तो आज कल तो शारीरिक श्रम पर निहित है देश और जीवन को विकसित करने का सबसे महान उपय है"4

"किन्तु इसके साथ ही विद्वान इस बात पर एक मत नहीं है कुछ विद्वानों का मत हैं कि लोक संस्कृति की वह संकल्पना समग्र नहीं है जिसमें कहा गया है कि भारतीय लोक साधारण की आत्मा साधारण जनता है जो नगरों से दूर गाँवों, वनो पवर्तो पर निवास करती हैं यह लोक संस्कृति का एक प्रस्थान बिन्दु तो हो सकती हैं। किन्तु समग्र भारतीय लोक संस्कृति का प्रतिनिधत्व नहीं है।

1–महामहोपाध्याय गोपी नाथ कविराज पृ0 22 सम्मेलन पत्रिका

2–महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज पृष्ठ 22 सम्मेलन पित्रका

3–रामनरेश त्रिपाठी–पृ0 16 सम्मेलन पत्रिका

4–लीलावती मुंशी –पृ0 13 सम्मेलन पत्रिका

कारण कि लोक संस्कृति के अपने स्थानीय रंग (गुण/प्रभाव) होते है ये छोटे छोटे स्थानीय प्रभाव का समग्रता में जिन मूल्यों की स्थापना करते है उसे भारतीय लोक संस्कृति की संज्ञा से अभिहित किया जा सका है। वहाँ वह ग्राम और नगर की सीमाओं से उपर उठ कर समग्रानुभूति कराती है।[1]

"लोक संस्कृति के सम्बन्ध में अध्ययन लोक संस्कृति को अलग समानांतर संस्कृति मानकर (कम से कम भारतीय) न केवल अनुपयुक्त रहा है। यह अशुभ भी रहा है आदमी को दो आँखे दी गई है, इन दोनों की सुन्दरता एक दूसरे को लेकर है। सौन्दर्य की परिभाषा ही अन्विति है, सही लोक दृष्टि कोई अलग दृष्टि नहीं है वह न तो शास्त्र विरोधी है और न ही शास्त्र से निरपेक्ष है इसी प्रकार शास्त्र भी लोक विरोधी नही और लोक से निरपेक्ष नही है"। [2]

"लोक संस्कृति नित्य जीवन का अमूल्य साहित्य है लोक साहित्य का आशय यह नही, कि उसको केवल ग्राम गीतों में ही नियंत्रित कर दिया जाय, केवल कजरी बारहमासा रसिया, बिरहा, लोक गीत ही उसके अभिव्यंजन के माध्यम नहीं है वे तो है ही पर साथ–साथ साहित्य के संस्कृत अथवा परिष्कृत रूप में उसका विन्यास अत्यन्त सभीचीन और उचित हो सका है हिन्दी लोक साहित्य को कबीर जायसी, तुलसी ने उतना समृद्ध किया है जितना उसे लोक भाषा में रचना करने बालो ने सम्पन्न और समंलकृत किया है। [3] लोक संग्रही गोस्वामी तुलसी सूर, कबीर, मीरा लोक संस्कृति के सच्चे साधक हुये हैं जिनका साक्ष्य है आज भीनिरक्षर लोगों की जुवान पर इनके साहित्य की गूंज सूफी संतो के निरगुनिया भजन लोक में पुरूष स्त्री बाल वृद्ध समीकरणो से पस्तुत है।

"सूफी सन्त और कबीर दास प्रत्यक्ष उदाहरण है इस प्रकार ब्राहय रूप में समुद्र की लहरों में परिवर्तन बराबर होता रहा है। पर भारत की लोक सांस्कृतिक आत्मा गम्भीर और निश्छल रही है प्रकृति की उपासना के प्रतीक हमारे तीर्थ और त्यौहार है।

1–डॉ0 त्रिभुवन नाथ शुक्ल –पृ0 26 लोक कला दर्पण

2–डॉ0 विद्या निवास मिश्र –पृ0 17 स्मा0 राष्ट्रीय लोक कला महोत्सव

3–रामलाल –पृष्ठ 88 सम्मेलन पत्रिका

प्रायः सभी तीर्थ पर्वतों पर या समुद्र तट पर अथवा नदियों के संगम पर हैं, प्रत्येक ऋतु में दो तीन त्यौहार उस ऋतु की विशेषता की छाप मनुष्य के हृदय पर छोड़ जाते है। शरद पूर्णिमा में प्रकृति की शोभा प्रदर्शित है विजयादशमी, दीपावली, होली, आदि हमारे त्यौहार रूलाने वाले नही है सभी उल्लास पैदा करने वाले पारस्परिक प्रसन्नता और सद्भावना का सन्देश लाने वाले है। आध्यात्मिक बातें भारत की शाश्वत निधि है जिससे समस्त संसार सम्पन्न हुआ। एक बृहमचर्य शब्द का समानार्थक शब्द किसी दूसरी भाषा में नहीं मिलता है इसका अर्थ इतना व्यापक है कि जीवन के हर पहलू पर इसका प्रकाश पड़ता है। और यही भरतीय संस्कृति का मूल आदर्श रहा है 1 लोक से ही शास्त्र का निर्माण हुआ है शास्त्र वर्तमान समय में ही आवश्यकता पड़ने पर लोक की ओर ही देखता है तथा लोक सहृदयतापूर्वक शास्त्र की कमी को पूरा करते है। शास्त्र ने सदा लोक से प्रेरणा ली है तथा लोक से प्रतिष्ठा मिली है ये दोनों सदैव आस–पास रहे है, वर्तमान समय में इन दोनों के पास आने के माध्यम बदल गये है।

"यही समग्रानुभूति लोक संस्कृति है लोक संस्कृति में बहुत से ऐसे मूल्य है जो ग्राम वासियों एवं नगर वासियों द्वारा मान्य है यह मानना दोनों को लोक की परिधि में आवृत्त कर लेता है। भारतीय जन जीवन को देने के लिये अथवा उसे ऊर्जा स्वतः बनाये रखने केलिये लोक संस्कृति के पास बहुत कुछ इस रूप में उसका एक महत्वपूर्ण प्रदेय है। आत्मीयता 2

लोक संस्कृति सदैव से ही लोक कल्याणकारी रही हैं। आज भी उसका प्रमुख उद्देश्य लोक कल्याण ही है।

1–रामनारायण मिश्र –पृ0 66 सम्मेलन पत्रिका

2–डॉ0 त्रिभुवन नाथ शुक्ल –पृ0 26 लोक कला दर्पण

संस्कार

प्रथम दृष्टिपात में मनुष्य के रंग –रूप शारीरिक बनावट, पहिनावा, ही दिखता है किन्तु उससे वार्तालाप, करने पर उसकी सभ्यता, संस्कृति का ज्ञान होता है मनुष्य के सभ्य, असभ्य सुंसस्कृत होने में संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। सुसंस्कारित मनुष्य केआचार–विचार, व्यवहार करने का तरीका ही उसका संस्कृति का परिचय देता है। "वास्तव में संस्कार और संस्कृति एक ही बात है कोई व्यक्ति अथवा समष्टि (समुदाय) किसी विशेष अथवा किन्हीं विशेष कर्मो को अपना कर उसी अथवा उन्हीं कार्यो को करते रहते है। तब उसी अथवा उसी कर्मो का अभ्यास करते करते आत्मा पर जो संस्कार पड़तें है वे ही संस्कार जब बाहर प्रकट होते है तब कहा जाता है कि ये उसके व्यक्तिगत संस्कार है" 1

मनुष्य जीवन में संस्कार प्रबल होते है संस्कार मनुष्य की योग्यता को प्रदर्शित करते है। संस्कार विहीन मनुष्य अपने जीवन में असफल ही बना रहता है। संस्कार मानव जीवन को परिष्कृत करते है उसके जीवन को मर्यादित एवं संतुलित रखते है। धार्मिक संस्कारों के कारण मनुष्य अतिक्रमण कारी नहीं होता है । आज भी भारतीय संस्कारित मनुष्य यथार्थ से दूर रहकर भावना धार्मिकता में विश्वास करता है। युगों से चले आ रहे संस्कार भारतीय जीवन नियन्ता स्वरूप है। भारतीय समाज में इन संस्कारों की मनुष्य जीवन में अनिवार्यता समझी गई है संस्कारों का विशेष प्रयोजन मानव का संस्कार करना है। मनुष्य को अपनी जीवन यात्रा करते समय विभिन्न स्थितियों का सामना करना पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसे जन्म शिक्षा, विवाह, सन्तानोपत्ति, मरण कई संक्रमणों का सामना करना पड़ता है इस जीवन यत्रा को सफल बनाने हेतु, मनुष्य को हर प्रकार से सक्षम बनाने के लिये संस्कारित किया जाता है ताकि वह कहीं किसी क्षेत्र में असफल ना रहे। जीवन यापन करते समय यह विभिन्न स्थितियाँ , जिनके आस–पास मानव समूह विश्वासों रीति रिवाजों और व्यवहारों का एक ऐसा जटिल ताना–बाना बुना होता है। जिनका सफलता पूर्वक निर्वाह करने के लिये संस्कारित होना अत्यन्त आवश्यक है।

विभिन्न विद्वानों ने संस्कार शब्द को अपने ग्रन्थों में इस प्रकार बताया है–

1–आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ,– लोक संस्कृति अंक पृ0 94 सम्मेलन पत्रिका

1–आंग्ल भाषा के "आक्स फोर्ड डिक्सनरी' में संस्कार के लिये तीन शब्दों का ceremony; rete. and Saerament प्रयोग हुआ। इसी प्रकार संस्कृत के वाचस्पयं वृद्धा भिघान भाग 5पृष्ठ 5166 पर इसका अर्थ विधिवत शुद्ध किया गया" दिया है कालिदास ने कुमार सम्भव (1/28) में शुद्धि अर्थ में (संस्कार वत्येव गिरा मनीषी तथा स पूतश्य विभूषितश्च) रघुवंश में (3/35) में प्रशिक्षण के अर्थ में (संस्कार विनीत इत्यरी नृपेण चके युवराज शब्द माक) रघुवंश के ही (3/18) संस्करण/परिष्क्रमेण के अर्थ में (प्रयुक्त संस्कार इवाधिक वमौ) इसी के 1/20 में अभिषेक/विचार/धारणा कार्य का परिणाम/ क्रिया की विशेषता अर्थ में (फलानुमेया प्रारम्भाः संस्काराः (वाकतनाइनव) अभिज्ञान शाकुन्तलम (6:33) में शोभा (आभूषणके अर्थ (स्वभाव सुन्दरम वस्तु न संस्कार मपेक्षते) मनु स्मृति में (2/26) में शुद्ध क्रिया धार्मिक विधि /विधान अर्थ में (कार्य शरीरा संस्कार पावनः प्रैत्यैच हेव) हितोपदेश (1/28) में प्रभाव/स्वरूप/ स्वभाव/ क्रिया एवं छाप के अर्थ में(यन्नेव माजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत) प्रयुक्त है।

उपर्युक्त विद्वानों के ग्रन्थोंसे यह स्पष्ट है कि संस्कार शोधन, परिमार्जन, परिष्कृत करना है।

संस्कारों द्वारा ही मानव जीवन के विविध क्रिया कलापों का परिष्कार किया जाता है। जैसा कि शवर ने संस्कार की व्याख्या करते हुये कहा कि "संस्कारों नाम सभवति यस्मि ज्जनते पदार्थो भवति योग्यः कस्ययिदर्थस्यः।। संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिये योग्य हो जाता है" तन्त्र वार्तिकार के अनुसार

"योग्यता चादधाना क्रिया : "संस्काराइत्युच्यते संस्कार वे क्रियायें तथा रीतियॉ है जो योग्यता प्रदान करती है। 1

इन संस्कारो के अधिकतम चालीस औंर न्यूनतम सोलह प्रकार बताये गये है। इन सन्दर्भो में गौतम अंगिरा और व्यास का उल्लेख मिलता है।

"गौतम ने चालीस अंगिरा ने पच्चीस और व्यास ने सोलह संस्कारों का उल्लेख किया है"2

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के कारण कर्म को प्रधानता देता है

1–डॉ0 कणि–धर्म शास्त्र –इतिहास भाग–1 हिन्दी रूपान्तर पृ0 176 तक

2–वही 178

कृष्ण का कर्मयोग भी कर्म को अधिक महत्व देता है। अतः यहाँ के निवासियों का जीवन कर्म प्रधान और सांस्कारिक अधिक है जीवन के अस्तित्व में आने से लेकर अंतिम चरण तक कुछ विशेष नियमों का पालन करना भी संस्कार के अन्तर्गत आता है।

मानव के स्वाभाविक दोषों को परिष्कृत कर उसे गुणों में परिवर्तित कर पूर्ण पवित्र एवं कीर्तिवान बनाना संस्कारों का कार्य है।

इन संस्कारो का सबसे बड़ा लाभ है इनमें संस्कारित व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। जिससे वह अपने सामाजिक जीवन में पूर्णता को प्राप्त करता है। उसकी आत्मा परिशुद्ध हो जाती है। आन्तरिक दुर्गुण समाप्त हो जाते है।

बुन्देलखण्ड में व्यास जी द्वारा वर्णित सोलह संस्कारों का वर्णनमिलता है धर्मा चार्यो द्वारा सोलह संस्कार ही बताये गये है। किन्तु उनके नामों में अन्तर अवश्य मिलता है। प्राचीन समय में यह सोलह संस्कारों का विधान था किन्तु वर्तमान समय में उनकी संख्या न्यून हो गयी है शास्त्रानुसार सोलह संस्कार निम्न है। 1—गर्भाधान 2—पुंसवन 3—सीमन्तोनयन 4—जातकर्म 5—नामकरण 6—निष्क्रमण 7—अन्नप्राशन 8—चूड़ा करण 9—कर्णवेध 10—यज्ञोपवीत 11—वेदारम्भ 12—समावर्तन 13—विवाह 14—द्विरागमन 15—मृतक 16—औधर्वदैहिक

बुन्देलखण्ड में इन संस्कारों के नामों में वर्तमान समय में परिवर्तन मिलता है। इन संस्कारों का स्वरूप निम्न प्रकार से है 1—गर्भाधान 2—पुंसवन 3—सीमन्तोनयन 4—जातकर्म 5—नामकरण 6—निष्क्रमण 7—अन्नप्राशन 8—चूड़ाकरण 9—वेदारम्भ 10—उपनयन 11—कर्णवेध 12—समावर्तन 13—विवाह संस्कार 14—वानप्रस्थ 15—अंत्येष्टि

उक्त संस्कारों में तीन संस्कार जन्म के पूर्व के संस्कार है अतः इनमें भावी सन्तान के माता पिता का संस्कार किया जाता है शेष संस्कार जातक से सम्बन्धित होते है अतः उनमें जातक को संस्कारित किया जाता है।

इन संस्कारों में से वर्तमान समय में वानप्रस्थ और सन्यास जैसे संस्कार नही दिखायी पड़ते हैं। जातक घर परिवार में ही रह कर अपरिग्रही हो जाता है बुन्देलखण्ड में ऐसे रीति रिवाजों का प्रचलन है जो कि स्वयमेव ही जातक को अपरिग्रही बना देता है तुलसी दास जी का यह दोहा बहुत ही सार्थक सिद्ध होता है "जन्मत ही दारा हरी, व्याहत हर लये भौन (भुवन) तुलसी इस संसार में सुत

सौ बैरी कौन।। किन्तु वही ज्येष्ठ पुत्र अल्प काल में पिता के साथ कृषि कार्य में हाथ बॅटाने लगता है। जिससे कृषि कार्य में उत्तरोत्तर प्रगति होने के कारण घर परिवार में खुशहाली बढ़ने लगती है। बुन्देली कहावत है कि "खेती जनगरे की" अर्थात घर में जितने अधिक पुरूष सदस्य होगें कार्य उतना ही समृद्ध होगा।

पुत्र जन्म इसलिये भी उत्तम है कि वंश की परम्परा आगे बढ़ायेगा तथा अपने शुभ कर्मो से अपने पितरों की कीर्ति को और धवल बनायेगा अतः पुत्र की कामना के साथ ही संस्कारों का प्रारम्भ होता है।

महत्वपूर्ण है कि इन संस्कारों में दो रूप होते है 1– शास्त्रीय, पौरोहित्य 2–लौकिक। लौकिक संस्कारों को पूर्ण रूपेण स्त्रियाँ ही करती है किन्तु शास्त्रीय पौरोहित्य कर्म काण्डी संस्कारों में भी महिलायें अपने कोकिल कण्ठ से लोक गीत गाती है। इन गीतों का मंत्रोच्चारण से पृथक अपना महत्वपूर्ण स्थान है ये औपचारिक गीत अपना मांगलिक स्थान रखते है।

मांगलिक सांस्कारिक गीतों में मृत्यु गीतों की पंरपरा नहीं है। इसका कारण बड़ा सुस्पष्ट है कि मृत्यु भी जीवन का एक महत्वपूर्ण संस्कार है किन्तु वह सुखद नहीं है। अतः यह नगण्य है क्योकि इसके मूल में यह धारणा है कि अत्येष्टि एक अशुभ संस्कार है और शुभ संस्कारों के साथ इसका वर्णन नहीं करना चाहिये यहाँ तक कि बुन्देली लोक में जन इसका उच्चारण भी अपनी जिह्वा से नहीं करते है। उसकी जगह अन्य लोक शब्द 'तपना' भलो बुरो आदि कहते है।

शुभ संस्कारों में सर्वप्रथम जन्म से सम्बंधित संस्कार आते है बुन्देली लोक में जन्म संस्कारों में सर्वप्रथम गर्माधान संस्कार या फूल, चौक आगन्नौं संस्कार कहा जाता है इस अवसर पर वर दुलहिन को चौक पर बिठाया जाता है तथा उत्तम सन्तति की कामना की जाती है स्त्रियाँ सुहागरात के गीत जिन्हें सोनारा भी कहा जाता है गाती है जिसका अर्थ इस प्रकार है बहू के रूप में लक्ष्मी का आगमन हुआ है बहू दूधो नहाओं पूतों फलों कुल, वंश की परम्परा को आगे बढ़ाओ इसमें
ऐसे लोकगीत गाये जाते है जिसमें यह माना जाता है कि स्त्री की पूर्णता मातृत्व में ही है। जब स्त्री मॉ नही बनती तब तक वह पूर्णत्व को प्राप्त नहीं होती है। बाझं स्त्री की सूरत देखने से दिन खोटा हो जाता है उसका नाम भी हेयता से लियाजाता है। ऐसा लोक का विचार है अतः उसकी पूर्णता में ही घर परिवार समाज लोक का कल्याण निहित है मनुष्य दुनियाँ में अकेला आता हैं, अकेला ही जाता

है अतः उसके मन में सदैव ही उत्कंठा बनी रहती है कि उसके मरणोपरांत उसके कुल (वंश) का नाम बना रहें। ऐसी धारणा रखते हुये वह सदैव ही अपने उत्तराधिकारी की चेष्टा में बना रहता है। ऐसी स्थिति में समय का इन्तजार करते–2 ऊबने लगता है और कह बैठता है कि "जहाँ से आई तहॉ जाओं बाँझ को का करै महाराज सास, ननद को अपने पुत्र और भाई को बहुत प्यार करती है प्रकृति के नियम स्वरूप विपरीत लिंग में अत्यधिक प्यार होता है। अतः सास, ननद जो पुत्र भाई को प्राणो पम चाहती है किन्तु वधू के आने पर उस मां , बहन का प्यार बॅट जाता है जिसकी खीझ वधू पर अकसर निकलती रहती है।

"सास ननदिया जनम की बैरन, अथवा नन्द चूनऊॅ की साजी नई होत"

किन्तु उसी पुत्र, भाई द्वारा पत्नी का परित्याग, या दूसरे विवाह की धमकी सास, ननद के नारीत्व को झकझोर देती है और सास, ननद वधू भावज को ढ़ाढस बँधाती है तथा विश्वास दिलाती है और उसकी जिम्मेदारी जिन्दगी भर के लिये उठाने के लिये तैयार होकर नारी भावना का सम्मान करती है। इस आशय के संचत नामक लोकगीत गाये जाते है।

1–राजा दशरथ पौढ़े सेज–

2–हरे बाँस विजनैया तो कस वंध

3–सासे वो वन हमें बताओ

इत्यादि लोक गीत गाये जाते हैं।

<u>गर्भाधान संस्कार</u>–गर्भाधान संस्कार गर्भ धारण के बाद किया जाता है क्योंकि गर्भधारण का कोई समय निश्चित नहीं है किसी भी मास की रजोनिवृत्ति के बाद गर्भधारण हो सकता है गर्भधारण के बाद रजोनिवृत्ति होना रूक जाता है तथा प्रकृति के विधानानुसार गर्भिणी की शारीरिक स्थिति में परिवर्तन होने लगता है लावष्यता बढ़ जाती है, शरीर चिकना हो जाता है, गर्भिणी का खटठा–मीठा खाने का मन करने लगता है लोक उक्ति है डेठपाख का रहना, का पिया से कहना। डेठ पखवारा अर्थात 21 दिन तक गर्भ का निशचित नहीं होता है 21 दिन के बाद गर्भ निश्चित हो जाता है इस अवसर पर गर्भिणी को चौक पर विठाल कर हर्षातिरेक में महिलायें कोकिल कष्ठ से गा उठतीं हैं

1–दुलैया चौकें आई

सीने के दिया धराओ, दुलैया चौकें चन्दन चौक पुराओं दुलैया चौकें आई

पिया हमें नौरगियां की साध

x x x x x x x · x x x x x x x x

यह संस्कार गर्भस्थ बालक के बीज तथा भावी गर्भावास जन्य मलिनता की निवृत्ति पूर्वक उसके शोधनार्थ है।[1]

2–**पुंसवन संस्कार**–गर्भधारण का समाचार सारे घर परिवार को हो जाता है। सास, ननद, जेठानी, जो अपनी खीझ बहु पर उतारती थी वही उसकी सबसे बड़ी शुभ चिन्तक और हितैषी हो जाती है। पुंसवन संस्कार का वैज्ञानिक कारण भी है बधू को शुभ दिन शुभ नक्षत्र में आयुर्वेदीय औषधियॉ चौक पर बैठा कर पिलायी जाती है। इन औषधियों में लक्ष्मण'' सहदेई, ब्राहमी आदि जड़ी बूटियों को सिल पर लोढा से पीस कर पिलाई जाती है। ताकि गर्भ में अन्य हानिकारक तत्व नष्ट हो जायें और गर्भ मं पल रहे शिशु का विकास उचित ढंग से हों। कन्ठ मुखर हो उठते हैं।

बम्मन वेग बुलाओ, दुलैया चौकें आई पत्रा वेग दिखाओ '' ''

सहदेई लुखरिया ल्याओ लखना लुखरिया ल्याओ

देवरा गिन दिन वार बताओ चंदा छौरो, सूरज छौरो ''

शुक्कुर वार बचाओ ''

इस प्रकार मित्र हितैषी व्यवहारी सब को यह जानकारी मिल जाती है और पूरे वर्ग में हर्ष की लहर दौड़ उठती है। इस संस्कार से गर्भ जन्म मलिनतादि दोषों की निवृत्ति होती है।[2]

3–**सीमन्तोनयन संस्कार**–इसे लोक भाषा में सादें कहा जाता है यह संस्कार गर्भधारण के सातवें, आठवें महीने में किया जाता है। इस संस्कार का आशय बधू के नैहर पक्ष को सूचना भेजने से होता है मायके से भाई वस्त्र, आभूषण इत्यदि लेकर आता है। गभिर्णी को चौक पर बिठा कर भाइ बहन की गोद भरता है। जिसमें वस्त्र, आभूषण के साथ साथ मुख्य वस्तु होती है दही का पात्र,। दधिपात्र बहन को समर्वित किया जाता है। दही लोक में अत्यन्त शुभ माना जाता है। नवजात शिशु का इन्तजार अत्यन्त बैचेनी से होता है भावना शब्दों का रूप धारण कर गेम हो उठती है–

''ऐसी किरपा कब कर है भगवान

---

(1)बुन्देली लोकगीतो में सोलह संस्कारों की अभिव्यक्ति–डॉ हरी मोहन पुरवार झांसी महोत्सव स्मारिका वर्ष 1996 पृ. 91

(2)वही

मौरे अगनॉ बजे बधाऔ"

यह संस्कार गर्भस्थ शिशु को व्याधियों से रक्षा हो गर्भिणी स्त्री का शारीरिक एवं मानसिक श्रम से बचाव किया जा सके तथा उसे प्रफुल्लित करने के लिए किया जाता है।[1]

यह तीन संस्कार प्रथम बार माँ बनने ही किया जाता है बाद की सन्तति में यह तीन संस्कार नहीं किये जाते है।

<u>जात कर्म संस्कार</u>—प्रसव पीड़ा प्रारम्भ होने पर दाई तथा सेवा भाव बाली स्त्रियॉ, धर की बड़ी बूढ़ी अनुभवी महिलाओं को सूचना देकर बुलवाया जाता है तथा पंडित को भी बुलाया जाता है प्रसविनी स्त्री की सेवा उसको ढ़ाढस बँधाते हुये, हर्षतिरेक छुपाये नहीं छुपता,

"कमर में उठी पीर राजाअब ना बचूंगी

"अंगना में पीर आई (मीतर भरोर आई रे) हो रामा सोहर भये नन्द लाल तो द्वारे बाजै बाधइयॉ शिशु के ऑखे खोलते ही कॉसे की थाली बजायी जाती है। जिसके दो कारण होते है वैज्ञानिक कारण यह है कि जन्म के समय बालक की कर्मेन्दियों पर एक हल्की झिल्ली रूपी आवरण होता है थाली का शोर सुनकर स्वयं ही वह झिल्ली फट जाती है। कभी –2 शिशु को गर्भ से बाहर आने में जो शक्ति लगानी पड़ती है जिससे वह शिथिल हो जाता है तो रूदन नही करता है थाली का शब्द सुनकर चौंक कर रूदन करने लगता है। तृतीय कारण थाली का शब्द सुनकर दवाजे पर बैठे पंडित (ज्योतिष की गणना करने के लिये सही समय का आंकलन कर लेते रहता हैं। गर्भ से बाहर आने पर शिशु को दाइयॉ हाथों पर ही रखती है। जब तक आहार नाल गर्भ में तो गर्भ के अन्य पदार्थ जो शिशु को गर्भ में पोषित करते थे, वही पदार्थ शिशु के बाहर आने पर विष की भांति कार्य करने लगते है, इसी लिये शिशु को आहारनाल से ऊँचा ही रखा जाता है आहार नाल बाहर आने पर नाल को काट कर अलग कर दिया जाता है। नाल काटने का नेग दाइयाँ अधिकार पूर्व मॉगती है तथ मनचाही वस्तु न मिलने पर मचल जाती है।

1–कैसी मचल रही दाई"

2–"ऐसी मिजाजिन दाई, लाल को नरला ना छीने रे"

(1)बुन्देली लोकगीतों में सोलह संस्कारों की अभिव्यक्ति –डॉ0 हरीमोहन पुरवार झांसी महोत्सव स्मारिकावर्ष 1996 पृ0 92

एक माँ जन्म देती है। एक माँ जो सारे जगत की जननी है जन्म भर जातक का बोझ उठाती है अपने सीने से अन्न उत्पन्न कर सबका पालन पोषण करती है भला उस माँ के सम्मान को कैसे भुलाया जा सकता है। माँ दादी, बुआ, या अन्य परिजन की गोद में शिशु को देने से पहले शिशु को धरती माँ की गोद में डाला जाता है। पहले पृथ्वी माँ को समर्पित किया जाता है। शिशु रूदन कितना सुहावना लगता है , किन्तु प्रसविनी माँ, अपनी पीड़ा भूलकर शिशु रूदन से आहत हो उठती है। उसका अन्तर्मन हर्षातिरेक में कह उठता है।

"मोरे भू पे डरे कहरायँ, गोबिन्द लाल भू पै डरें हैं[1]

इसे भू लोटिनी कहा जाता है ननद के द्वारा प्रसूति गृह के दरवाजे पर सतियॉ (गोबर का आलेखन) बनाये जाते है। उनमें लोक रीति अनुसार रामबॉस की सीकें या जौ लगाये जाते है

"आई आई सुभद्रा बेटी पाहुनी मन रंज ना लाग।

बेटी गिन–2 रोपो सींक अरे मन रंज ना लाग।।

यह आलेखन व्यष्टि से समष्टि का प्रतीक होता है। प्रसूता की सास द्वारा दस जड़ी बूटियों के मूल को पानी में उबाला जाता है। जो कि उस समय प्रसूता के लिये आवश्यक औषधि होती है। वही जल उसे पीने को दिया जाता है। तथा गुड़ घी सोंठ सूखे मेवे से निर्मित "सुठौरा" भोजन के लिये दिया जाता है इस अवसर पर "सोहर" गीत गाये जाते है जिनमें प्रसूता की स्थित तथा सास द्वारा चरूआ, जेठानी द्वारा लडडू , ननद द्वारा सतिया देवर द्वारा, गोले आतिशबाजी, बाजा, बजवाना, तथा सखियों द्वारा मंगल गीत गाये जाने का वर्णन होता है।

"तुम धन ललना जाये, सुखई सुख भोगियो महाराज"

ननद द्वारा बधाबा लाने की रीति है। ननद को अत्यन्त हर्ष होता है भतीजा उत्पन्न होने पर, भाई की वंशबेल बढ़ने पर ननद, भाई भावज, भतीजे, को वस्त्र आभूषण, एवं विशेष रूप से पालना लेकर आती है भतीजे का श्रृंगार करतीं है तथा पालना में लिटा कर झुलाती है। हर्ष की अगधता में नृत्य करती तथा अपना नेग माँगती है। किन्तु ननद को सूचना भेजने का कोई रिवाज नहीं है ननद अपने संसाधनों द्वारा पता चलाती है प्रसूता के नैहर

---

(1)बुन्देली सांस्कृतिक परम्परायें से उद्धत डॉ0 अरूण कुमार श्रीवास्तव झांसी महोत्सव स्मारिका 1996 पृ0 103

लडडू और दूब हल्दी भेजी जाती है जिसे नाई लेकर जाता है प्रसूता के नैहर से वस्त्र आभूषण लडडू लाये जाते है जिसे 'पथ' कहा जाता है। सवा मास बीतने पर चरूआ में जो औषधियों के मूल प्रयोग में लाये जाते हैं वह प्रसूता द्वारा कुये में डाल दिये जाते है। उन्हें कुआँ पूजना कहते है। इस अवसर प्रसूता कुयें पर जाती है हल्दी चावल घी गुड़ द्वारा कुंये का पूजन किया जाता है। तथा प्रसूता द्वारा कुंये से प्रार्थना करती है। कि जिस तरह आप सदैव सजल रहकर समस्त प्यासों की प्यास बुझाते हैं उसी भाँति मेंरे स्तनों मे दुग्ध की धारा बहती रहे, ताकि नवजात शिशु की उदर पूर्ति होती रहें यह तीनों कार्य अधिकतर एक ही समय में आयोजित किये जाते है जिससे अच्छा–खासा उत्सव हो जाता है महिलाये कुआँ पूजने की गीत तथा 'बधाये पालना गीत गाती है

उपर बदर गहराये

x x x x x x x x

रून झुन बरसे मेह————————कुयें पूजने के गीत

x x x x x x x x

हम ये मोतिन की भावना————————

x x x x x x x x

जन्मे राम सलोना————————

x x x x x x x x

जन्मे राम खुशी भयी मन में————————

x x x x x x x x

लाल दशरथ के कबै बड़े हुयहैं————————बधाये

x x x x x x x x

कहाँ लये जाती जे वन्दन वारे————————

x x x x x x x x

जनम लये रघुराइ अवधपुर बाजे बहाई————————

x x x x x x x x

बधाई बाजे नन्द घर गोरी आली————————

x x x x x x x x

चरूआ के बुलउवा में कोंहरी तथा बधाये पथ के बुलाने में लडडू बांटने का रिवाज हैं।

यह संस्कार अयत्न पर पड़ने वाली बाधाओं के निराकरण हेतु किया जाता है।[1]

नामकरण–जन्म के दस दिन बाद दस्टौन या बारहवे दिन बरहौ नामकरण या जातकर्म संस्कार किया जाता है। इस दिन ब्राह्मण काष्ठ के पाटा पर जातक का नाम, जाति इत्यादि लिख देता है उस काष्ठ पटिट्का को प्रसूता की चारपाई के सिरहाने रख दिया जाता है। इसको "खरीपटा" भी कहा जाता है महिलाओं का समवेत स्वर गूंज उठता है

"दशरथ जू की रनियाँ, राम लये कनियाँ

---

(1)बुन्देली लोक गीतों में सोलह संस्कारों की अभिव्यक्ति –डॉ हरीमोहन पुरवार झांसी महोत्सव स्मारिका वर्ष 1996पृ0 92

बालक के सामाजिक एवं अध्यात्मिक उत्थान हेतु ध्वनि का विशेष महत्व होता है जिसके लिए यह संस्कार प्रतिपादित किया जाता है।[1]

निष्क्रमण संस्कार—जन्म के छठवें दिन निष्क्रमण संस्कार किया जाता है। इस दिन प्रसूता स्त्री नवजात शिशु के साथ प्रसूति गृह से बाहर निकलती है। लोकगीत अनुसार चॉद, अथवा सूर्य के दर्शन कराये जाते है। तथा जन्म के चौथें महीने में गृह से बाहर शिशु को ले जाया जाता है। यह समय मनु स्मृति के श्लोक 2/35 से समर्थित है।

चतुर्थ मास शिशो निष्क्रमण गृहात।।

इस संस्कार का उद्देश्य बालक का समाज व प्रकृति के तत्वों के साथ परिचित करना है[2]

अन्न प्राशन—मनु स्मृति के 2/34 के अनुसार अन्न प्राशन जन्म के छठवें महीने में किया जाता है। जिसे लोक में पासनी, उपासनी, चटाउन भी कहा जाता है। अधिकांश यह संस्कार मातुल गृह में ही सम्पन्न होता है। "अन्न का कोशीय अर्थ भोजन/भात/धान्य चना, जौ आदि है और प्राशन का —खाना इस प्रकार अन्न प्राशन का अर्थ हुआ—भोजन करना। सोलह संस्कारों में यह भी विशेष संस्कार है इसमें नवजात शिशु को प्रथम बार अन्न खिलाने की क्रिया का
विधिवत शुभारम्भ किया जाता है।" [3]

षष्ठे प्राशनं मासि यद्वेष्टं मंगल कुले।। [4]

मनु स्मृति 2/34

मनु स्मृति के अनुसार कुल कल्याण के लिये इस संस्कार को करना चाहिये अन्न प्राशन के दिन बालक को यथा शक्ति आभूषणों से सुसज्जित किया जाता हैं जिसमें मुख्य भूमिका शिशु केमामा की होती है। लोक इस सुहावने अवसर पर बाता है।

"जनक महलन में हो रयी भीर।

नाना चटा रये खीर।।

---

(1)(2)बुन्देली लोकगीतो में सोलह संस्कारों की अभिव्यक्ति—डॉ0 हरी मोहन पुरवार झांसी महोत्सव स्मारिका 1996 पृ0 92—93

(3)त्रिभुवन नाथ शुक्ल—लोक कला दर्पण पृ0 26

(4)मनु स्मृति 2134

चूड़ाकरण– (मुण्डन)–यह संस्कार जन्म से 1 वर्ष के अन्दर अथवा जन्म के तीसरे वर्ष में सम्पन्न होता है। प्रथम बार सिर के बाल मुंडवाने को चूड़ाकरण मुण्डन, या छौर कर्म कहते हैं। इस अवसर पर शिशु की बुआ आटे की लोई में शिशु के सारे बाल समेट लेती है। तथा बाद में नदी में विसर्जित कर देती है। बुआ का उपस्थित रहना अनिवार्य होता है।

"मनु स्मृति के अनुसार इसे द्विजातियों का अनिवार्य धर्म कहा गया है मनु ने इसे सम्पन्न कराने का समय प्रथम अथवा तृतीय वर्ष निश्चित किया है।

"चूड़ा कर्म द्विवजातीनां सर्बेषामेव धर्मतः।

प्रथम ब्दे तृतीयों का कर्तव्य श्रुति वोदनात्"।[1]

महिलायें समवेत स्वरों मे गा उठती है।

झालर मोरी पाहुनी,

झालर जबई मुड़ाओ जब आजुल घर होय,

<u>कर्ण वेध</u>–बुन्देलखण्ड में कनछेदन नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह संस्कार जन्म के तीसरे पॉचवें, सातवें वर्ष में किया जाता है। सोने या जस्ते की बाली से स्वर्णकार द्वारा कर्ण बेछ कराया जाता है महिलाओ के द्वारा "जौ मैं जानती लाल के व छेदने, तो सीने बारी मंगाती" आदि लोकगीत एवं बधाये गाये जाते है। इस संस्कार से बालक की चंचलता कम हो जाती है" इस संस्कार का आरोग्य की दृष्टि से बहुत महत्व है इसका रहस्य अति वैज्ञानिक है। यह संस्कार इसलिये सम्पन्न किया जाता है कि दमा स्वांस आदि बीमारियों की आशंका समाप्त हो जाती है आज फैशन के युग में लोग इसे भुला चुके है सुश्रुत का कथन है कि रोग आदि से रक्षा तथा आभूषण या अलंकार के निम्त्ति बालक के कानों का छेदन करना चाहिये। अडंकोश वृद्धि तथा आंत्र वृद्धि के निरोध के लिये वे पुनः कर्ण वेध का विधान करते है।

उदाहरण है।

"शंखोपरि च कर्णान्ते व्यकत्वा त्यमेन रोवनीयम्।

व्यंत्या सादवा शिरा विध्येदन्त्र वृद्धि निवृतये।।[2]

---

(1)मनु स्मृति 2135

(2)(डॉ० राजवली पाडेंय हिन्दू संस्कार पृष्ठ 129 से उदद्धृत

चिकित्सा संस्थान 1921

यज्ञोपवीत— बुन्देलखण्ड में यज्ञोपवीत को जनेऊ नाम से जाना जाता है। यह एक अत्यन्त पुनीत संस्कार है। इस संस्कार का अर्थ है कि बालक को बटुक बना गुरू ग्रह में शिक्षा दीक्षा के लिये भेजना। शास्त्रीय मत है कि ब्राहमण का सात वर्ष, क्षत्रिय 9 वर्ष तथा वैश्य का 11 वे वर्ष में यह संस्कार कर देना चाहिये। यज्ञोपवीत में (विवाह के पूर्व जैसे रीति रिवाज किये जाते है) वैसे ही किये जाते है बस केवल बारात नही जाती है। अर्थात जिस प्रकार विवाह में तेल तिलाई, मण्डप, किया जाता है। उसी प्रकार यज्ञोपवीत में भी किया जाता है। विवाह में जिस दिन बारात जाती है। उस दिन सुबह जातक को अन्य वय से छोटे बच्चों के साथ खीर खिलायी जाती है। जिसे बरूआ कहते है। उसके बाद मण्डप के नीचे चार वेदियॉ बनाई जाती है मंत्रोंच्चार क साथ हवन किया जाता है। प्रत्येक वेदी के हवन के बाद जातक के सिर के बालों का थोड़े –2 कर मुण्डन किया जाता है अन्तिम वेदी के हवन पश्चात् जातक के सिर पर गोखुर जितनी चोटी छोड़ कर शेष बाल काटकर उसे ब्रटुक बना दिया जाता है उसे कोपीन धारण करा कर गुरू, गुरूमंत्र देता है। तथा बालक सर्वप्रथम अपनी माँ से उसक पश्चात अन्य परिवार रिश्तेदार सम्बधियों से भिक्षा की याचना करता है तथा वेदाध्ययन के लिये गुरू गृह चला जाता है इतने पावन पर लोक शान्त नहीं बैठता है महिलायें मन्त्रों के अलावा जनेऊ की महिमा का वर्णन करती है।

"तीन तगा को डोरा रे दमरू को सूत भैया

x x x x x x x x

"भिक्षा मांगन चले लडैते आजुल के दरबार

भीख दे आजी भीख दे, काशी पढ़े चटसार"

घरई में अजा तेरे वेदिया, घरई पठो चटसार।

"इसे उपनयन,ब्रतबन्ध और जनेऊ संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। इस संस्कार के वाचक ये सभी शब्द एक ही अर्थ के धोतक होते हुये भी अपनी विशिष्ट अर्थच्छायाओं से युक्त है। यज्ञोपवतीत और जनेऊ शब्द अर्थ की दृष्टि से एक ही वर्ग के है ये दोनों शब्द उपवीत धारण करने के विभिन्न निशचित शुभ मुहूर्त के सूचक है बरूआ श्रेष्ठता र्थक और उपनयन सत्कर्म तथा सदाचरण मनियोजित होने का घोतक है। मानव वृकसूत्र एवं काठक में उपनयन के स्थान पर उपानयन शब्द का प्रयोग किया है काठक के टीका कार आदित्य दर्शन ने कहा है कि उपानय उपनयन, भौज्जी ब्रंध ान, बहुकरणव्रतबंध समानार्थक है अन्यत्र उपनयन शब्द का इस रूप में व्याखायित किया गया है, वह

गुरू गृह दय और देवता के सामीप्य के लिये दीक्षित किया जाए उपनयन है।

"गुरोव्रतानां वेदस्य यमस्य नियमस्य च।

देवतानां समीपं वा यैना सौ नीयते ङसौ।।"[1]

समावर्तन संस्कार— जब जातक पूर्ण रूप शिक्षित होकर घर आता है तब समावर्तन संस्कार किया जाता है इस संस्कार में जातक को बटुक वेश त्याग कर सामान्य वेश—भूषा से धारण कराते है। वर्तमान समय में यह संस्कार उपनयन संस्कार के साथ ही कर दिया जाता है। क्योंकि वर्तमान समय में गुरूकुल शिक्षा पद्धति समाप्त हो गयी है विद्यार्थी बटुक बन कर न तो भिक्षा मांगता है। और ना ही गुरूकुल में रहता है अतः उपनयन संस्कार में जातक बटुक वश धारण कर काशी विद्या अश्ययन करने के लिये जाता है। तथा घर परिवार में ही भिक्षा की याचना करता है। तभी बहनें याबुआ उसे रास्ते से लौटा लेती है। बटुक के लौट आने के बाद उसका दूल्हे जैसा श्रृगांर किया जाता है। वस्त्र आभूषण, और चन्दन खौर काजल, महावर आदि लगाया जाता है। तथा समीप के मंदिर में देव दर्शन करा कर वापिस कर लिया जाता है शिक्षा की समाप्ति के बाद पुनः गृहस्थ आश्रम में आने पर किय गय संस्कार को समावर्तन संस्कार कहा जाता है।

विवाह संस्कार—पोड़स संस्कारों में यह संस्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। यह संस्कार सभी जातियों/धर्मो में अत्यन्त उल्लास पूर्वक मनाये जाने वाला संस्कार है। हिन्दू धर्म में विवाह एक शास्त्रीय प्रथा है धर्म और नियम के अनुसार स्त्री पुरूष के पारस्परिक संम्बध दाम्पत्य सूत्र में आवद्ध होते है। यह एक धार्मिक प्रथा है। समाज को सुचारू रूप से चलाने एवं मर्यादित आचरण करने की दृष्टि से प्राचीन ऋषियों, मुनियों ने मनुष्य के जीवन को चार आश्रमों में ब्रहमचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम में विभाजित किया था इन चारों आश्रमों का विधिवत पालन करता हुआ मनुष्य अपने अंतिम लक्ष्य अर्थात मोक्ष को प्राप्त करता है। धर्मानुसार मनुष्य देव, ऋषि पितृ इन तीन की कृपा से ही मनुष्य शरीर धारण करता है। अतः बालक देव, ऋषि, पितृ तीन

1—डॉ0 त्रिभुवन नाथ शुक्ल लोक कला दर्पण पृष्ठ 28

ऋण लेकर जन्म लेता है बालक को इन तीनों ऋणों से उद्धार होना पड़ता है। वह ब्रहम्चारी का जीवन व्यतीत करते हुये विद्याध्ययन तथा विद्या दान कर ऋषि ऋण से, यज्ञादि कर्म से, देव ऋण से तथा शास्त्र सम्मत अपने वर्ण, गोत्र व गुणवती कन्या से विवाह और संतानोत्पति कर पितृ ऋण से उऋ होता है। भारतीय विचारधारा के अनुसार विवाह का उददे्श्य काम वासना पूर्ति नहीं है बल्कि मर्यादा पूर्वक दाम्पत्य धर्म का पालन करते हुये सन्तानोपति एवं सन्तान को भी संस्कारित करना है। ताकि व्यक्ति परिवार और समाज का विकास कर सम्पूर्ण लोक कल्याण कारी बना सके। इसी लिये गृहस्थ आश्रम का विशेष महत्व है।

"विवाह आठ प्रकार के बताये गये है आर्य, बृहम, देव, प्रजापत्य, सुर, गांधर्व, राक्षस पैशाचं किन्तु ब्रहम् विवाह ही अधिक प्रचिलित है।" [1]

बुन्देलखण्ड की जनता धर्म भीरू है बुन्देली समाज अपने रीति + रिवाज अपनी परम्पराओं को बड़े ही शिछत के साथ निभाता है। यद्यपि इनमें कुछ विसंगतियॉ है परन्तु इसके बाबजूद की वर्तमान समय में वैवाहिक रस्म पूरी ईमानदारी के साथ निभायी जाती है। इसी कारण विवाह की प्रक्रिया बहुत लम्बी हो जाती हैं। छोटे से छोटा कार्यक्रम समाज मिल–जुल कर हर्ष के साथ सम्पादित करता है। तथा प्रत्येक रीति रिवाज, रस्म के अलग–2 लोक गीत हैं महिलायें समवेत स्वरों में गायन कर वातावरण को उल्लास मय बना देती हैं कन्या के विवाह की चिन्ता कन्याके पिता को तथा परिवार को तो होती ही है, कन्या को भी यह चिन्ता सयानी होते ही सताने लगती है। कि मेरे विवाह के कारण मेरे पिता को परेशानी ना हो। कन्या की माँ कन्या के पिता से कन्या के लिये वर खोजने के लिये कहती है कि विटिया सयानी हो रही है। उसके लिये गॉव छोड़कर कन्या के अनुकूल वर खोजिये। पिता परेशान होता हैं गाँव शहर, देश आदि की खाक छानता है ताकि बेटी को अनुकूल वर मिले, तथा सब प्रकार से पुत्री सुखी रहे।

"देस निकर स्वामी धिया वर खोजो धिया मईं व्याहन जोग

पास गाँव ढूड़ियों दूर गाँव ढूड़ियों शहर गुजरात

कहुँअऊ ना मिलै तोर धियावर सुन्दर तोर धिया रहे कुआंरी"[2]

1–डॉ0 त्रिभुवन नाथ शुक्ल,–लोक कला दर्पण, पृष्ठ 28

2–बुन्देली लोक काव्य भाग –1 पृष्ठ 42–43

पिता को परेशानी देख कर कन्या स्वयं व्याकुल हो जाती है। पिता को ढ़ाँढ़स बधाते हुये अत्यन्त विचलित हो जाती है जब वह यह सुनती है, कि पिता परेशान होकर बैराग्य धारण करने की बात कहते है। तो माँ जहर खाकर मरने की बात कहती है। कन्या प्रार्थना करती है कि पिताजी मेरे हाथ पीले कर दीजिए, लोक साक्ष्य है।

"ऊँची अटरियॉ रंग भरी चन्दन जड़ी हैं किवरियाँ

तिन विच बाबुल मोरे सोइयो भैया ढ़ोरें विजनियॉ

झपट लाडली बेटी चढ़ गई बाबुल सोवो कि जागो

ना बेटी सोये ना जागे है, सोय परें हैं तुम्हारे

सोच बाबुल मोरे जिन करो, ईश्वरपार लगैहै।।

x x x x x x x x x x x x x x x

सो नन्ही–2 गुंदियन महल उठायें,,महल उठाये सवई मन भाये

सो बाबुल कहे हम जोगी हुय जैहें, सो भैया कह हम जहर खैहें

काहे को बाबुल मेरे जोगी हुय जैहो, सो काये को मैया जहर विष खैहो,

अपनो ना दिइयो सजन कोना दिइयो, वस कन्या के हाथ पियर कर दिइयो।

x x x x x x x x x x x x x x x

ऐ जू दीनबन्धु दीनानाथ तो लज्जा मोरी राखियो

x x x x x x x x x x x x x x x

इन सब परेशानियों से जूझते हुये जब परिश्रम सफल होता है तो सभी हर्षित हो जाते है वर को कुछ वस्त्र, आभूषण, मुद्रा, आदि देकर पान खिलाया जाता है, जिससे सम्बन्ध पक्का हो जाता है। इसे पक्कयात या बरीक्षा कहते है। इसके बाद शुभ लग्न, मुहुर्त में लगुन चढाई जाती है। लग्न पत्रिका में रस्मों का मुहूर्त, लगन, दिन ,तिथि समय आदि लिखा जाता है, परिवार, पड़ोस, मित्र हितैषी आदि के साथ कन्या कापिता लगुन, पंडित जी के द्वारा लिखवाता है, हर्षोल्लास का वातावरण देख लोक कन्ठ मुखरित हो कर वातावरण को और भी अधिक उल्लास मय बना देते है।

"आज अंगन अति सुन्दर ना जाने कौन गुना

ना जाने बोटी के भागन, ना जाने भैया गुना।।

x x x x x x x x x x x x x x x

"केवरा के चारऊ अंगन विच रोपे है जू

अरी–2 मैया सुलच्छन बाबुलै जगाय दिइयोरी

वे उठ लगुन लिखावें, हमें दूर जाने है जू"

कन्या का पिता लगुन लेकर वर के हाथ पर उभय पक्षीय समाज की उपस्थित में रखता है। तथा साथ ही थान, थार, सुपारी, हल्दी, नारियल,वस्त्र, आभूषण, मुद्रा, फल, मिठाई भी सौपता है। कितना हर्ष का वातावरण होता है कि वर सजा संवरा बीच आंगन में चौक पर बैठा है। लोक वर को राम तथावर केपिता को दशरथ के रूप में देखता हैं तथा रोंमाचित होकर गा उठता है।

"राजा दशरथ फूले ना समाय, लगुन आयी हरे–2 लगुन आयी मोरे आंगन

"सो आज मोरे राम जू की लगुन चढत है।

x x x x x x x x x x x x x x x

लगुन चढ़त हैं आनन्द बढ़त है

सो केसर खोर मोरे राम जू को सौहे,

सो गालन विच मुतियन लर सरकत है"

x x x x x x x x x x x x x x x

लगुन के बाद विवाह की तैयारियाँ शुरू हो जाती है। बुन्देली समाज में कन्या का विवाह महान कार्य माना जाता है । इस विवाह यज्ञ में सभी ग्रामवासी बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते है। तथा तन, मन, धन से सहयोग करते है। शुभ दिन में सब स्त्रियॉ मिलकर अनाज को पिसाने योग्य बनाने, मसाला सत्तू, आदि पीसने का उपक्रम करती है। जिसे "सीधो छूना" कहा जाता है तथा नव युवको का एकत्रित कर उनकी कुल्हाड़ी का हल्दी चावल से पूजन किया जाता है तथा उनको गुड़ खिलाया जाता है– नवयुवक लकड़ी काट कर लाते है इसे छेई पूजना कहते है। महिलाओं द्वारा दालें मगौड़ी पापड़ आदि बनाने को "माटी मिथौरी" कहते है। तथा महिलायें समूह रूप में खेतों से मिटटी लाकर चूल्हे इत्यादि बनाती है, जिन्हे "मट्यिानों" कहा जाता है।

लगुन के दिन से वर कन्या को बन्ना, बन्नी कहते हैं। तथा प्रतिदिन बन्ना, बन्नी गाने की परंपरा है। विवाह कार्य क्रम पाँच दिन चलता हैं। पहले दिन तिलाई, तेल, मण्डप, द्वारचार (पाणिग्रहण) विदा।

तिलाई वाले दिन शुभ मुहूर्त में मण्डप स्थापित कर मण्डपाच्छादन किया जाता है।

"सुगर बड़ैया चन्दन मड़वा रूचि–2 के गढ़ ल्यायो

रोपौ चन्द अंगन बिच फूफा ने जामुन के पत्तन सों छाओ।।"

"सुगर बडैया राजा बुलबाओ रे,

चारऊ कोंनन चार खम्ब, राजा लगवाओ रे,

तिन बीच पाचओं मड़वा, राजा गडवाओ रे,,

मण्डपाच्छादन के बाद इसी दिन गणेश, गौरी नवग्रह आदि का पूजन किया जाता है। तथा देवताओ तथापितरों को निमंत्रण दिया जाता है। जिनमें सभी परम्परानुसार, कुलदेवता, ग्राम देवता, स्थान देवता, कुल देवी, मातृका पूजन, सुहागिन स्त्रियाँ शामिल होती है। धार्मिक मन्त्रों के बीच में लोक मंत्र स्त्रियॉ के कण्ठ से कुछ इस प्रकार निकलते है।

"सरग नसैनी पाटे की वंधना, ता चढ नौतो देय,

तुम घर न्योतो गनेश बाबा तुम मेरे आइयो

तुमरे लाडली, या (लाडले) को व्याह सो आन समारियो

तुम बन काज ना होय, सो तीन दिन का आइयों"

इस निमंत्रण के द्वारा अशुभ अनहोनी को तीन दिना दो रात के लिये एक मृदा के सकोरे से ढ़क कर आटे से चिपका दिया जाता है। जिसे बाबू मूदँना कहा जाता है। लोक अशुभ अनहोनी से निवेदन करता है।

"तीन दिना दोई रात, बाबू अनहोनी मूंदियो,

आंधी, पानी मूंदौ, लपट, डकूरे बाबू मूदियों

माछी मकरी मूदौं और पगरैतिन की 'जीव"

विच्छू किच्छू मूदौं और बड़े बूढ़िन की जीव

लड़ाई भिड़ाई, कान खुसकिया बाबू मूदियौं।।

इस विवाह यज्ञ को निर्विहन बनाने के लिये कुवंर हरदौल प्रथम नित्रंण देने पर अवश्य पधारते हैं। कुअँर हरदौल के सर्वश्रेष्ठ रक्षक होते है।

"हरदौल लाला मोरी कही मान लिइयो हो हरदौल लाला

कँहू झूला परै, कहूँ चूला परै, तो संभार लियो हो हरदौल लाल

माथे पे सेरौ हरदौल जू खों सोहे

कलियों की लटकन संभार लियो हो हरदौल लाला,,

तेल वाले दिन सर्व प्रथम देवालयों में जाकर तेल चढ़ाया जाता है। उसके पश्चात् लड़का /लड़की को मण्डप के नीचे पीठे पर बिठा कर तेल हल्दी चढ़ाया जाती है। महिलाओं द्वारा कोकिल

कन्ठो से लोक गूंजने लगते है।

"काहे के तेल फुलेल है काये की है विलियाँ

"हल्दी के तेल फुलेल, सोने की है बिलियाँ

"कहाँ के तेल फुलेल, काहे की दो कलियाँ

"कन्नौज के तेल फुलेल चम्पे की है दो कलियाँ

कौना ल्याओ तेल फुलेल कौना, कौजा ल्याओ दो कलियाँ

तेलिन ल्याई तेल फुलेल मालिन ल्याई दो कलियॉ

कौना बेटी तेल चढ़ायें कौन भैया बैंदुलियॉ

फूला बेटी तेल चढ़ावे गेंदा लाल भइया बैदुलियॉ

चढ गयो तेल फुलेल , महक रही दो कलियॉ।।

मण्डप वाले दिन मण्डप की पूजा होती हैं लड़की /लड़के की बुआ मांगर भरती है । मण्डप के नीचे सात/पाँच मटकों मे पानी भरती है।

द्वारचार के लिये बारात तैयार है। इस बात की सूचना देती है यह रस्म। जिसमें वर पक्ष का नापित "ऐपनवारी" लेकर कन्या पक्ष के यहाँ आता है। बारात आगमन को समाचार के साथ ही बारात स्वागत की तैयारियों की आपा–घापी मच जाती है। बारात जनवासे से चल कर लड़की वालों के दरवाजे पर पहुँचती है। आगे बढ़कर कन्या पक्ष बारात का तथा अन्य सम्बधियों का स्वागत सुगंधित चन्दन फूल माला इत्यादि द्वारा करता है हाथी, घोड़े , बाजा, इत्यादि शोर शराबा हर्षोल्लास में मस्त सभी लोग ऐसा वातावरण बनता है कि शब्दों में बाँधना अत्यन्त कठिन हैं। कन्या का पिता आगे बढ़कर वर का स्वागत करता हैं उसकी पूज़ा आरती करता है इतने शोर–शराबे की बीच महिलाओं द्वारा लोक–मंत्र उच्चरित होते हैं। जिसका आशय कुछ इस प्रकार होता है। कौन पिता है किसने बाग लगाया है कौन माता की कुक्ष सुलक्षणा है जिसने पुत्री को जना कौन शहर के भले–आदमी का बेटा तापस है जो व्याहने आया है। जिस पिता का गर्व से सिर ऊँचा रहता है। उस पिता को सम्बधी के आगे सिर झुकना ही पड़ता है।

"कहना के भले मालिया जिन बाग लगाये

कहना की बेटी कोकिल फुल बीनन आये

कहना के भले कोटिया जिन कोट उंठाये

कहना के बड़े तपसिया चढ़ व्याहन आये

कोट नवै, पर्वत नवै, सिर नवे ना नवाये

बाबुल माथे तब नवें द्वारें साजन आये।

राजा जनक भले मालिया जिन बाग लगाये

सीता सी बेटी कोकिला फुल बीनन आई

राजादशरथ भले कोटिया जिन कोट उठाये

रामलला भले तपसिया चढ़ व्याहन ओये

कोट नवे पर्वत नवै सिर झुकेना झुकांये।

जनक जू माथे तब नवें द्वारें दशरथ आये

द्वारचार होने के पश्चात चढ़ावा कार्यक्रम होता है। वर पक्ष कन्या के लिये वस्त्र आभूषण लेकर आता है। सात रंगो से सुन्दर आलेखन मण्डप के नीचे बनाया जाता है। मण्डप से लेकर कोहबर तक पाँवड़े बिछाये जाते है। जिस पर चलकर कन्या मण्डप के नीचे आती है। कन्या को उपर्युक्त सामान समर्पित किया जाता है तथा वर का जेष्ठ भ्राता कन्या की गोद में सूखे मेवे बताशे आदि डालकर गोद भरता है बृहम वर्ग स्वस्ति वाचन करता है महिलाये गा उठती है

"अरि ऐरी जनक भवन में दिखआई सिया के चढ़ाये"

"सिया जू के चढ़त चढ़ाये सुनयना मइया मगन भई"

इसके पश्चात भात पहना जाता है इसे बुन्देली में चीकट उतारना कहते है। बुन्देलखण्ड में यह प्रथा कही कही टीका से भी पहले होती है किन्तु अधिकाशं भागों में यह टीका के पश्चात चीकट उतराई होती है कन्या का मामा कन्या के माता–पिता तथा माता के देवर देवरानी, जेठ–जेठानी के लिए जो वस्त्र लाता है उसे मण्डप के नीचे उनको समर्पित करता है बहन भाई का तिलक कर उसको आशीर्बाद देती है बुन्देलखण्ड में हरदौल द्वारा अपनी बहन कुंजावती को चीकट पहनाने की याद को कैसे भुलाया जा सकता है कुँअर हरदौल ने मृत्यु के पश्चात अपनी बहन को चीकट पहनाया था जिसके कारण उस लोक नायक को देवत्य प्राप्त हुआ इस घटना को याद कर महिलाओं के आँसू निकल आते हैं लोकगीत गाते समय समस्त महिलायें भावुक हो जाती हैं –धन्य हैं कुँअर हरदौल

जिन्होने मृत्यु के पश्चात भी इस परम्परा को निभाया

"हरदौल चीकट लेके आये कुंजावती के द्वारे"

"हाय भइया आये गये अजब भात लेके"

"कॉसे को बेला सवा सेर सतुआ सो

x x x x x x x x x x x x x x x x

ऊपर गुड़ की बटी, भतइया बहुत संकोच मरी"

x x x x x x x x x x x x x x x x

इसके पश्चात वर भाँवर हेतु कन्या की डयोढी में आता है वहॉ कन्या की मॉ वर के प्रथम दर्शन करती है। आरती की थाली अत्यन्त सुन्दर सजायी जाती है उसी सुजज्जित थाल से आरती उतार कर अपने ऑचल का छोर वर को पकड़ा कर मण्डप तक ले आती है। इस क्रिया को "परिछन करना" कहते है महिलायें पुनः गा उठती है।

"सोने के सूप परातें तो सुनैना रानी परछैं रे

दूल्हा राम जैसे आये तो पलकऊ ना मूँदे रे

वर आगमन के पश्चात कन्या का पिता वर को मधुपर्क कराता है तथा माता–पिता कन्या के हाथ पीले कर कन्या का दान वर को सौंप देता है वातावरण अत्यन्त ही कारूणिक हो जाता है माता–पिता कन्या के पैर पूजते हैं चूकिं कन्या का दान महादान कहा गया है इसका महत्व तीर्थ –प्रयाग, यज्ञ आदि से कहीं बढ़कर है।

"इति गंगा उत जमुना बीच कछारन रे

तिन बिच बाबुल मोरे देत कुँवारिन दान

x x x x x

"तुम बिन जानो बाबुल मोरे दान अखारत जाय

पाप पनारिन बह गये धर्म रहे उतराय

पुरोहितो द्वारा दोनों पक्षों का साखोच्चार होता है हवन करने के पश्चात गठबधन होता है तथा भॉवर पड़ने लगती है इसी बीच देवाधि देव, महादेव एवं आदि माता भगवती पार्वती के बीच जो सात पॉच वचन का आदान प्रदान हुआ था वह भी सुनाया जाता है तथा हर भॉवर के बीच कन्या का भाई धान बोता है जिसका आशय यह होता है कि भले ही कन्या आज से पराई हो गई हो किन्तु फिर भी आपत्ति काल में मैं तुम्हारी सहायता करूंगा।

"धान बोओ बीरन धान बोओ बहन धनवंती होय

धान बोओं भौजी धान बोओं भौजी, ननद पुतवंती होय

इसके बाद अन्तिम भाँवर पड़ती है बुन्देली लोक में "लौटपटा" की भाँवर कहते है

"पहली भाँवर होय अबे बेटी बापई की

"दूजी भाँवर होय अभे बेटी बापई की

x x x x x x x x x x x x x x x x

सातई भाँवर होय अब बेटी भई पराई

x x x x x x x x x x x x x x x x

"देखों सिया की रामजू के संग

"परन लागी हरे हरे परन लागी भॉवरिया

इस प्रकार कोकिल कंठा गा उठती है। सातवीं भावँर के बाद पाणिग्रहण का गवाह ध्रुव तारे को बनाया जाता है क्योंकि सूर्य चन्द्र निकलते और ढलते है ध्रुव तारा सदैव ही विद्यमान रहता है उसके पश्चात पंगत में ज्यौंनार , कुँवरकलैवा, रहसबधॉव, पलकाचार, एवं कंकन छोड़ने की रस्म होती है तत्पश्चात् विदाई होती है विदाई का दृश्य बड़ा ही कारूणिक होता है महाराज जनक जो विदेह कहे जाते है वह भी सीता की विदाई के समय भोरे हो गये 1

परम संयमी कण्व ऋषि भी शकुन्तला की विदाई के समय आत्म संयम ना सभांल सके 2 तो सामान्य जनो की बात ही क्या है उस समय तो मॉ बाप का बस ह्रदय बिदीर्ण ही नहीं होता है

1–जेवनार–"बे तो हर्ष करें ररियॉ

जनक पुरी की सखियॉ

2–कुऑर कलैवा– " लगत रहौ नीको लाला आये हते जादिन से

हमने सुनी अवध की नारी दूर रहे पुरसन से

खीर खायॅ सुत पैदा करती लाला बड़े जतन से

बहन तुम्हारी तुम्हें छोड़ के जाय बसी ऋषियन के

बुरो मान मत जइयो लाला इन सॉची बतयन से

सॉची छूटी तुम सब जानो का कहत सकत बड़े से

1–बुन्देली लोक साहित्य परम्परा और इतिहास नर्मदा प्रसाद गुप्त पृ0 229

2– यास्यवयद्य शकुन्तलेति ह्रंदयं संस्पृष्ट मुत्कठया।

कण्ठः स्तम्मित वाष्प वृन्ति कलुषंश्चिन्ता जडं दर्शनम।।

वैकलव्यं मम तावदी दृशमिंद स्नेहादण्यौकसः।

पीडयन्ते गृहिणः कथ नु न्रनया विश्लेषदुःखैर्नवे।।

अभिज्ञान शाकुन्तलम अंक 4 पद 6

"कच्ची ईंट बाबुल देहरी ना धरियो

"बिटिया ना दियौ परदेस मोरे लाल

कच्ची ईंट तो खिसक जैहैं बाबुल

बिटिया विसूरे परदेस मेरे लाल

मइया के रोये से नदियॉ बहत है

बाबुल के रोये सागर ताल मोरे लाल

भइया के रोये से भींजे चुनरिया

भौजी के जियरा कठोर मोरे लाल

X X X X X X X

"जाओ लली तुम फरियौ फूलिओं

सदा सुहागिन रहियौ मौरे लाल

सास ससुर की सेवा करियो

पति की पूजा करियौ मेरे लाल

मृत्यु संस्कार–ब्रहम सत्यं जगत मिथ्या

यह जगत झूठा हैं यह शरीर नश्वर है जीवन क्षण भंगुर है नाजाने किस गली में जिन्दगी का अवशान हो जाय मृत्यु शाश्वत सत्य है

"आया हैं सो जायेगा राजा रंक भकीर

कोई सिंहासन चढ़ चले कोई बॅधे जंजीर

कबीर

आवागमन तो एक प्रक्रिया हैं किन्तु क्षण रोने का हैं वियोग में विलाप करने का है शोक संतप्त , करूणा विगलित स्त्रियां विलाप करते समय उसकी अच्छाइयों का बखान करती हैं जहॉ सारे संस्कार हर्ष उल्लास के हैं वहीं इस संस्कार पर सभी की आँखे नम होती हैं अतः इस संस्कार में लोकगीत नहीं गाये जाते हैं इस शोक के माहौल में केवल "कैरूना " कर के विलाप किया जाता हैं कैरूना शब्द शायद करूणा विगड़ा हुआ रूप हैं।

वानप्रस्थ संस्कार– यह संस्कार जीवन का तृतीय चरण में इस आशय से किया जाता है कि व्यक्ति माह माया के बंधन को त्याग कर समाज से विदाई लेकर जीवन के परम उद्देश्य ईश्वर से साक्षात्कार हेतु जुड़ना होता है वानप्रस्थ के अवसर पर यह निर्मोही लोकगीत वास्तविकता से साक्षात्कार कराता है।

"राम नाम को भजलै प्राणी क्यों करता आनाकानी हमजानी कि तुमजानी" [1]

सन्यास संस्कार–यह संस्कार जीवन के अंतिम समय में मनुष्य इस जीवन से पूर्ण विरक्ति लेता हुआ ईश्वर में रम जाने हेतु अग्रसरित होता है इसी कारण उसका मन गा उठता है

"मन लागौ यार भकीरी में" [2]

अंत्येष्टि संस्कार– जीवन समाप्ति के पश्चात किया जाने वाला यह अंतिम संस्कार पंचतत्वो से निर्मित मृत शरीर को इन तत्वों में मिल जाने का द्योतक है ऐसे कारूणिक अवसर पर मन में स्वतः विराग उत्पन्न हो जाता है लोक साहित्य इस अवसर पर भी पीछे नही है

"चलन चलन सब कोऊ कहै चलवो हॅसी न खेल

चलवो सांचो ओई को जीको भैरव बुलावे टेर" [3]

1–

2– बुन्देली लोकगीतो में सोलह संस्कारों की अभिव्यक्ति झांसी महोत्सव स्मारिका 1996 पृ094 डॉ हरी मोहन पुरवार

3–

बुन्देलखण्ड के पर्व एवं उत्सव

नवरात्रि,, नौ दुर्गा, (जवारे)

नये संवत्सर में अर्थात चैत्र मास शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है इस दिन घर में स्वच्छता, सफाई, करने के बाद घर परिवार, आस पड़ोस की महिलायें मिट्टी लेने जाती हैं। जाते समय देवी माँ की अचरी गाई जाती है। एक तरह से मान्यता रहती है कि नौ दिन के लिये भगवती माँ को आमंत्रित किया जाता है, और नौ दिन माँ दुर्गा अतिथि बनकर भक्तों का आतिथ्य स्वीकार करती हैं 'पाहुने मोंरे आई भवानी मइया नौ दुरगा महारानी हो मॉय'' स्वच्छ जगह (खेत) से मिट्टी लाकर घड़े का अग्र भाग को काट कर अलग कर दिया जाता है। उदर भाग को जिसके खपरा या घट कहते है। मिट्टी से परिपूरित कर उसमं जौ बोये जाते है तथा पंचोपचार विधि विधान पूर्वक पूजन किया जाता है घर का एक सदस्य उनकी सेवा में 24 घन्टा रहता है। जिसे पन्डा कहा जाता हैं। वह नौ दिन व्रत रखता है। सुबह शाम, भोग, आरती, शयन आदि की प्रक्रिया द्वारा उनकी सेवा की जाती है। पंचमी तिथि को दर्शन के लिये सभी भक्तों के लिये पट खोल दिये जाते है नवमी को बाजे गाजे के साथ देवी जी मंदिर घट ले जाये जाते है। देवी को समर्पित कर दिये जाते है देवी का दर्शन सहज नही उनकी कृपा कटाक्ष पाने के लिए भक्त को कठिन मार्ग पर चलना पड़ता है पग–पग पर उसके धैर्य की परीक्षा ले जाती है प्रतिरोधी शक्तियॉ मार्ग में तरह तरह की बाधाये खड़ी करती है।[1] श्रम की अधिकता के कारण राह में चलते हुए गायी जाने वाली अचरी ''लहचारी'' [2]कही जाती है तथा बैठकर गायी जाने वाली अचरी कही जाती है।[3]

2–राम नवमी–

चैत्र शुक्ल नवमी को दोपहर समय भगवान राम जन्मोत्सव मनाया जाता है। बुन्देली लोक में राम भक्ति शायद त्रेता युग से ही अजस्त्र प्रवाहित हो रही है। ओरछा की महारानी कुँवरि गणेश ने

1–बुन्देलीखण्डी लोकगीतो में सांगीतिक तत्व–डॉ0 वीणा श्रीवास्तव पृ0 148

2–अरे कहूँ देखी अरे कहूँ देखी अछरू माय मूरती अजब बनी–संकलित

3–माई के मठ की बाराद्वारी कौन विध दर्शन होय हो माय–बुन्देलीखण्डी लोकगीतो में सांगीतिक तत्व–डॉ0 वीणा श्रीवास्तव पृ0 148

अयोध्या से राम का विग्रह लाकर भव्य मन्दिर बनवाया, इसका इतिहास साक्ष्य है। इस दिन भगवान राम को पंचामृत तथा बालभोग का भोग लगाया जाता है।

<u>3—गनगौर—</u> यह चैत्र शुक्ल तृतीया तिथि को किया जाता है इसे गौरा (पार्वती) का व्रत कहते हैं। इसमें देवी पार्वती जी की पूजा तथा कहानी कही जाती है तथा मीठे व नमकीन बेसन के जेवर बनाये जाते है। सुहागिन स्त्रियॉं ही यह व्रत करती है तथा जेवर पार्वती जी को समर्पित कर स्वयं ही खाती है। पुरूषों के यह प्रसाद नहीं दिया जाता है। ''गनगौर के गनगौरा पुरूष खाँ न देऊँ एकऊ कौरा'' [1]

<u>4—शीतलाष्टमी—</u> यह चैत महीने की कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को होता है इसे सीरी आठें या बासौरा अष्टमी भी कहते हैं। इसमें मां का पूजन बसौरा अथवा (ठन्डा) भोजन से ही किया जाता है। सप्तमी तिथि को शाम को ही भोजन एवं पुजापा बना कर रख दिया जाता है। अष्टमी को उसी से पूजा की जाती है। उस दिन घर में चूल्हा नहीं जलाया जाता है।

<u>5—जगन्नाथ जी की पूजा</u>— चैत मास के अंतिम सोमवार को जगन्नाथ जी की पूजा होती है। यह उन्ही घरों में होती है जिस घर का कोई सदस्य जगन्नाथ जी की यात्रा कर चुका होता है''। इस व्रत में भाट भाटिन की कथा कही जाती है डन्डा (बेंत) तुमरिया (तूमी) के प्रभाव से स्वामी जी का महत्व स्थापित किया गया है [2]इसे ''जगन्नाथ जी का पटा भरना '' भी कहा जाता है एक बड़ी सी सारौट (बड़ा सा पाटा) पर छत्तीस प्रकार के व्यँजन बना कर रखे जाते हैं तथा जगन्नाथ जी के बेंत रखकर पूजा की जाती है कहानी कही जाती है सभी को प्रसाद वितरण किया जाता है।

<u>6—आसमाई—</u> यह बैसाख कृष्ण द्वितीया को मनाया जाता है ''इस पूजन में जीवन की चार महान आवश्कताओं भूख, प्यास, नींद और आस की पुतरियाँ बनाकर पूजा जाता है [3]चौक पूर कर उस पर पटा रखा जाता है तथा पान पर सफेद चन्दन से नारी आकृति बनायी जाती है जिसे पुतरिया कहते है। मीठे पुआ बनाये जाते है जिसे गोंठ दिया जाता है जिन्हें आसें कहा

1—बुन्देलखण्ड दर्शन—डॉ0 मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' पृ0233

2—बुन्देली लोकसाहित्य परम्परा और इतिहास —नर्मदा प्रसाद गुप्त पृ0 420

3—बुंन्देली जन जीवन एक परिचय —डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृ0 33

जाता है। घड़े या कुठला में धान्य भरा जाता है उसकी पूजा की जाती है तथा पाटा पर चार कौड़ी रखी जाती है घर की बड़ी बूढ़ी स्त्री यह पूजा करती है तथा पूजा वाले दिन वह केवल आसें ही खाती है। अन्य किसी प्रकार का भेजन नहीं करती है।

7–हरायतें लेना– यह बैसाख वदी अमावस्या को मनाया जाता है। "यह कृषि उत्सव है तथा इसको मनाने का तात्पर्य कृषि के लिये पुनः भूमि को तैयार करना होता है। इस दिन भूमि (खेत) हल बैल तथा हरवाहे का टीका किया जाता है। गुड़ और सत्तू का भोग लगाया जाता है।

8–अकती– यह वैशाख की शुक्ल पक्ष की तृतीया को मनाया जाता है "इसको अक्षय तृतीया कहते है" अक्षय शब्द का शाब्दिक अर्थ है जिसका कभी नाश (क्षय) न हो अथवा जो स्थायी हो [1] इस दिन बालिकायें गुड्डा तथा गुड़िया का व्याह (शादी) करती है तथा भीगी हुई चने के दाल बॉटती है। घर में कच्चा भोजन (कढ़ी चने की दाल, चावल, सिमई) इत्यादि बनाया जाता हैं मिट्टी के बर्तन अर्थात घड़ा गगरी नई भरी जाती है तथा दूसरे हरायते लिये जाते है। खेतों का खर पतवार साफ करने के उददेश्य जरिया (झरबेरी) बिरिया (बेरी) की डाल लेकर हरवाहे आते है। जिन्हें घर के बाहर किसी आले में रख दिया जाता है हल, बैल, हरवाहे की टीका किया जाता है। तथा हल चलाने के लिए जो भी व्यक्ति नियुक्त किया जाता है उसे ससम्मान आदर सहित भोजन कराया जाता है।

9–वर अमावस–इसे ज्येष्ठ मास की अमावस्या को मनाया जाता है यह वट सावित्री व्रत है इस दिन वट वृक्ष के नीचे सावित्री की पूजा की जाती है। तथा सुहागिन स्त्रियॉ अपने लिये अमिट सुहाग का वरदान मॉंगती है। उस दिन मीठे तथा नमकीन गोलाकार पकवान बनाया जाता हैं। जिसे बरगदा कहा जाता है।

10–निर्जला एकादशी– यह ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी होती है। इसे बड़ी एकादशी भी कहते है इस दिन सुराही में ठन्डा शरबत तथा फल और पंखे का दान दिया जाता है। तथा घर के बड़े बूढ़े पुरूष अथवा वैध्वय को प्राप्त महिलाये निर्जला व्रत करती है।

11–गंगा दशहरा–इस दिन सुबह मछली के दर्शन किये जाते है तथा गंगा स्नान का महत्व है इस दिन गंगा स्नान करने से पितरों को शान्ति मिलती है घर में कच्चा भोजन बनाया जाता हैं। जिसे समूची या समूंदी रसोई कहते है तथा गंगा तट पर दान दिया जाता है।

1–कल्याण अंक व्रत पर्वोत्सव अंक –जगदीश चन्द्र मेहता पृ0 190

12—असाढ़ी देवता— वर्ष भर में जितने देवी देवताओ का पूजन होता है इस मास में उन सभी का पूजन देव शयनी एकादशी तक किया जाता है। भगवान राम कृष्ण शंकर हनुमान, कुल देवता, कुल देवी, हरदौल या अन्य क्षेत्रीय देवता जो जिसको पूजता है। का पूजन किया जाता है सभी के स्थान पर जाकर उपले की आग में हथपई रोटियॉ बनायी जाती है, जिन्हें बुन्देली भाषा में 'गकरियाँ' कहा जाता है। इस दिन वन देवता का पूजन किया जाता है [1]उनका मलीदा बनाकर चढ़ाया जाता है।

13—गुरू पूर्णिमा, तथा कुनघुसू पूनों —आषाढ मास की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को गुरू का पूजन किया जाता है। प्रसाद बाँटा जाता हैं कुनघुसू (क्षेत्रीय भाषा में जिसका अर्थ है (कोने में घुसी) अर्थात घर की बहुयें जो पर्दा प्रथा के कारण घर के अन्दर ही रहती है कुनघुसू पूनों को घर की वरिष्ठ स्त्री सदस्य घर के पूजा वाले कमरे गाय के गोबर से दीवाल पर वर्गाकार लेपन करती है उस पर ऐपन से स्त्री आकृति अर्थात (पुतरिया) लिखी जाती है उनका हल्दी, चावल, गुड़, घी से पूजन किया जाता है। सास या बड़ी, बूढ़ी स्त्री, बहू लक्ष्मी स्वरूपा होने की मंगल कामना करती हैं। इस अवसर पर कहानी कही जाती है। तथा बहुओं को उपहार दिया जाता है[2]।

14—श्रावण मास— बुन्देलखण्ड में श्रावण मास का अत्यन्त महत्व है शिव पूजन का विशेष महत्व है।

15—हरी जोत—यह श्रावण मास की अमावस्या को मनाया जाता है। इसमें भी कुनघूसु पूनों की भाँति पूजा की जाती है। अन्तर केवल इतना है कुनघुसू पूनों में बहुओं की पूजा की जाती है। हरी जोत पर पर्व कुँआरी कन्याओं या बालिकाओं का पूजन किया जाता है।

16—सावन तीज—इस त्यौहार को हरियाली तीज भी कहते है। इस दिन भगवान जी को झूले उस पर झुलाया जाता है। गरी, मिश्री, फूल छडी, दनदान, पट्टी, खीर, पूड़ी आदि से भोग लगाया जाता है। महिलायें बालिकायें मेहंदी लगाती है। तथा झूले पर झूलते समय सावन गाये जाते है। जिन घरों में लड़कियॉ की शादी उसी वर्ष में होती है। उसके ससुराल पक्ष से

1—बुन्देलखण्ड के पर्वोत्सव —श्रीमती संध्या पुरवार कल्याण अंक पृ0425

2—बुन्देली लोक चित्रकला —डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृ0 29

कपड़े, गहने, खिलौन, इत्यादि उपहार स्वरूप आते है जिसे सॉवनी कहा जाता है। यह सावनी ससुराल पक्ष का नाई लेकर आता है जिसे भोजन आदि कराया जाता है और नेग दिया जाता है।

17—नाग पंचमी—श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को नाग पंचमी का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन महिलायें सर्पो के बिल (बांमी) पर दूध चढ़ाती है सर्पो का पूजन किया जाता है।घर के मुख्य दरवाजे पर गोबर से लीप कर (दूध में कोयला पीस कर) उनसे सर्पकृति बनायी जाती है उन्हे कच्चे दूध चावल, सिंवई से पूजा जाता हैं। इसका आशय यही होता है। कि सर्प घर के अन्दर न घुसे तथा परिवार के किसी सदस्य को हानि न पहुँचॉये।

18—श्रावण सुदी नवमी (नौमी)—"इसे नमें वाई भी कहते है दाम्पत्य जीवन के सुखमय निर्वाह हेतु इसे मनाया जाता है" [1] इस दिन कार्तिक मास की फसल कैसी होगी इसका अन्दाजा लेने के लिये तथा समाज में सभी सुखी सम्पन्न हो, सर्वत्र हरियाली रहे, इस मंगल कामना के साथ घर के आंगन में गाय के गोबर से लीप कर उस पर आटा से चौक पूरा जाता है। तथा पलाश के पत्तों का दोना बनाकर उसमें मिट्टी भर कर गेहूँ बोये जाते है। इन्ही को कजरिया या भुजरिया कहते है। यह बुन्देलखण्ड के कई भागों में प्रतिपदा को तालाब में विसर्जित कर दिया जाता है। ऊपर का भाग निकाल (खोंट) कर एक दूसरे को दी जाती है। गले मिला जाता हैं बड़ो के पैर छुये जाते हैं इसका आशय यह है, कि हम आपके उत्तम स्वास्थय की मंगल कामना करते हैं। क्योंकि गेहूँ या जौ के पौधे का ऊपर का भाग पीस कर खाया जाएं ता वह सर्वोत्तम टॉनिक होता है। किसी —2 स्थान पर यह कजरिया पूर्णिमा वाले दिन ही विर्सजित कर दी जाती है कजरिया भाद्र पद कृष्ण प्रतिपदा को जहाँ सिरायी जाती है वहाँ पर ऐतिहासिक कथा जुड़ी है। उरई में माहिल तालाब पर ऐतहासिक कजली मेला लगता है उरई में बासी कजरिया सिरायी जाती है जिन्हें यहाँ की भाषा मं बासौ सॉऊन कहा जाता है। जब पृथ्वी राज चौहान ने महोबा के परमार्दिदेव के ऊपर युद्ध थोप दिया था उस युद्ध में उरई के राजकुमार माहिल के पुत्र अभई सिंह ने अपनी बुआ की पुत्री चन्द्रावलि की रक्षा में अपने प्राणों की बाजी लगा दी , युद्ध होने के

1—बुन्देलखण्ड के पर्वोत्सव कल्याण अंक —1 श्रीमती संध्या पुरवार स0 राधेश्याम खेमका गीता प्रेस गोरखपुर से मुद्रित प्रकाशित पृ0 425

कारण पूर्णिमा को बालिकायें युवतियॉ घर से बाहर नही निकल पाई थी इसलिये दूसरे दिन भाद्र पर कृष्ण प्रतिपदा को कजरी विसर्जित की गई थी। यहाँ के मेले में अब भी अखाड़ा, मल्ल, तलवार बाजी, लाठी आदि का कुशल प्रदर्शन किया जाता है।

19–श्रावणी पूर्णिमा (सॉउन)– श्रावण मास की शुक्ल पक्ष के अंतिम दिन पूर्णिमा को यह त्यौहार मनाया जाता है समूची रसोई बनायी जाती है तथा बहनों को आमंत्रित किया जाता है। उनका सत्कार किया जाता है। बहनें भाई की कलाई पर राखी बांधती है मंगल तिलक करती है उनके दीर्घायु एवं यशस्वी होने की कामना करती है। भाई आड़े समय पर बहिन की रक्षा भार लेता हैं, उपहार स्वरूप बहिन को कुछ ना कुछ दिया जाता है।

20–हल षष्ठी–(हरछठ)–भाद्र कृष्ण पक्ष की षष्ठी तिथि को मनाया जाता है इस दिन भगवान श्री कृष्ण जी के बड़े अग्रज बल्दाऊ का जन्म दिन मनाया जाता है। इस दिन महिलाओं द्वारा भैंस के गोबर से दीवाल पर हरछठ लिखी जाती है पलास के पत्ते तथा काँस (घास) तथा जरिया (झडबेरी) को पूजा में रखा जाता है तथा सात अनाज (गेहूँ, चना, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, महुआ, भून के रखे जाते है मेवा तथा चीनी मिलाकर छोटे–2 कुल्हडों में भर कर रखे जाते हैं। माताएं अपने प्रति पुत्र छह कुल्हड भरती है। तथा एक कुल्हड हरछठ का भरा जाता है। इन सभी को सूप में रखा जाता है पंचों पचार, धूप दीप, नैवद्य आदि से पूजा की जाती है, तथा छहकहानियॉ सुनाई जाती है। इस दिन महिलाएं ऐसा अनाज नहीं खाती है जिसकी जुताई बखराई की गई हो और न ही जोते हुये खेत पर चलती है। इसमें पसई के चावल, मेवा, केला, सिंघाड़ा, कूटू आदि का सेवन करती है, दूध ा भी केवल भैंस का और उस भैंस का जिसका बच्चा पड़िया (स्त्रीलिंग) हो।

21–जन्माष्टमी–(कन्हैया आठें)–भगवान श्री कृष्ण का जन्मोत्सव भाद्र पद कृष्ण पक्ष अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र में मनाया जाता है[1]। रात्रि बारह बजे भगवान श्री कृष्ण का जन्म खीरे से शालिग्राम को प्रगट करके मनाया जाता है। उनकी पूजा की जाती है। दूध तथा गुड़ मेवा सोंठ (इत्यादि) से भोग लगाया जाता है। स्त्रियाँ सोहर गा उठती है वे मोरे–मूघे डरे डरे कहैराय,

---

1–बुन्देलीखण्डी लोक गीतो का सांगीतिक अनुशीलन –डॉ0 वीणा श्रीवास्तव पृ0 155

गोबिन्द लाल, भूई पे डरे है" तथा पुरूष एवं बच्चे अति उत्साह से कहते है कि नन्द घर आनन्द "मयो जै कन्हैया लाल की" हाथी घोड़ा पालकी, जै कन्हैया लाल की" भगवान को पालने में झुलाया जाता है स्त्री कंन्ठ मुखरित हो उठते है।

कन्हैया झूलें पालना सुनो मेरी गुंइयॉ

22–"बाबू दौज"– बुन्देलखण्ड में भाद्र पद की अमावस्या को कुल देवता की पूजा की जाती है या जिस कुल में जिस देवता की मान्यता होती है उसकी पूजा विधि विधान से की जाती है। इस दिन प्रातः काल स्वच्छता का विशेष ध्यान दिया जाता है। समूची रसोई बनायी जाती है। किसी कक्ष के कोने में गाय के गोबर से लीपकर उस पर चौक पूरा जाता है। तत्पश्चात एक पाटा रखा जाता है। परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुसार चार–2 रोटियां रखी जाती है उन पर रसाई में बने समस्त व्यजंन रखे जाते है जिन्हें यहाँ की भाषा में "कुरा" कहा जाता है । तत्तपश्चात पंचों पचार विधि से पूजन किया जाता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य कुल देवता की पूजा करता है भेंट चढ़ाता है तथा अपना हिस्सा ले लेता है । उसी प्रसाद स्वरूप को ग्रहण करता है इस पूजा में केवल एक ही खून से सम्बन्ध रखने वाले परिजन ही सम्मिलित होते है। किसी रिश्तेदार व्यवहारी या कुवारी ब्याही कन्यायें न तो यह पूजा देखती है। न ही प्रसाद ग्रहण करती है। इस पूजा में जो भेंट चढ़ाई जाती हैं वह परिवार की सबसे बड़ी बूढ़ी स्त्री को दे दी जाती है।

23–तीजा (हरि तालिका व्रत)–"यह व्रत बुन्देलखण्ड में कुआरी कन्यायें तथा स्त्रियाँ करती हैं यह व्रत पार्वती जी के तप से प्रेरित होकर अमिट सुहाग के लिये करती है। यह व्रत भाद्र पद मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया को किया जाता है"[1]। व्रत रखने वाली कन्याये या स्त्रियॉं ब्रत से एक दिन पूर्व अर्थात द्वितीया की रात्रि को सिमई की खीर खाकर जामुन की दातून से मुख शुद्धि करके प्रारम्भ किया जाता है। इसमे भगवान शंकर तथा गौरी की मिट्टी के द्वारा मूर्तियां बनायी जाती है। रात्रि के प्रथम प्रहर में विधिवत पूजा की जाती है। तथा रात्रि जागरण किया जाता हैं। विभिन्न प्राकर केपकवान बनाये जाते है। रात्रि के द्वितीय प्रहर में

1–रमणीय (स्त्रियों की पत्रिका)–श्रीमती ऊषा सक्सेना पृ0 19

बुन्देलखण्ड विशेषांक स0 कु0 जनक सचदेव रमणी मासिक 2994/ए रणजीत नगर नई दिल्ली

फिर पूजा की जाती हैं तथा कहानी की जाती है। तृतीय प्रहर में फिर पूजा की जाती है तथा भोर के समय इन मूर्तियों को तालाब में या नदी में विसर्जित कर दिया जाता है तथा व्रत रखने वाली कन्यायें या युवितां खीरा खा कर व्रत को समाप्त करती है यह व्रत निर्जल रहा जाता है।

24—गणेश चौथ— यह व्रत सम्भवतः बुन्देलखण्ड में मराठों का शासन आने के पश्चात प्रचलित हुआ। भाद्र पद मास की चतुर्थी को यह पर्व मनाया जाता है "इस व्रत को स्त्री और पुरूष दोनों ही करते है। शाम के समय गणेश जी की प्रतिमा को स्थापित करके विधिवत पूजन किया जता है तथा रात्रि जागरण किया जाता है"[1]। बुन्देलखण्ड के कोंच (जालौन) मऊरानी पुर (झांसी) में गणेश उत्सव के रूप में इसे चतुर्थी से लेकर एकादशी तक एक सप्ताह मनाया जाता है।

25—ऋषि पंचमी—यह पर्व भाद्र पद शुक्ल पक्ष की पंचमी को मनाया जाता है इस दिन केवल महिलायें ही व्रत रखती है तथा सप्त ऋषियों का पूजन करती है। गाय के गोबर से लीप कर उस पर आटे से चौक पूरा जाता है।चौक के ऊपर पाटा रखा जाता हैं। उस पर स्वच्छ या नया (कोरा) सफेद वस्त्र विछाया जाता है। उस पर पान रखे जाते है चंदन, जनेऊ, सुपाड़ी, लोंग , इलायची रखी जाती हैं। तथा कुश के ऋषि बनाये जाते है। मेवा तथा दूध दही से पूजन किया जाता है व्रत रखने वाली स्त्रियां इस दिन जोते हुये खेत का कोई अनाज ग्रहण नहीं करती है। पसई के चावल, केला, मेवा, सिंघाड़ा, कूटू, और ककोरा आदि का ही सेवन करती है। ऐसी मान्यता है कि ऋतु काल के समय में जाने अनजान जो वर्जित कार्य हो जाते है। उन के प्रायश्चित स्वरूप यह व्रत किया जाता है।

26—मौराई छठ— जिस घर में विगत वर्ष विवाह हुआ हो, उस परिवार में कन्या पक्ष वर पक्ष के यहाँ मौराई छठ भेजता है जिसमें घर गृहस्थी संम्बन्धी (सीधा सामान) दाल,चावल, सिंवई, पापड़ तथा वर की माँ लिये वस्त्र आभूषण, विजना (पंखा) बटुआ, कुड़री आदि में होती है। सांयकालीन महिलाओं का बुलौआ लगाया जाता है। वर की मॉ वही वस्त्र तथा आभूषण, पहन कर नदी या तालाब पर मौर को विसर्जित करने जाती है।

1—रमणी स्त्रियों की पत्रिका —डॉ0 ऊषा सक्सेना पृ0 21

27—सन्तान सप्तमी—यह व्रत पुत्र की माता होने के पश्चात स्त्रियॉं करती है यह मंगल कामना की जाती है कि पुत्र स्वस्थ एवं दीर्घायु हो, भाद्र पद मास की शुक्ल पक्ष सप्तमी को भगवान शंकर माँ गौरी की मिट्टी की मूर्ति बनाकर पंचोपचार विधि से पूजन किया जाता हैं तथा सात—सात मीठे पुये बनाये जाते है सात पुये माँ गौरी के समर्पित किये जाते है जिन्हें पूजनोंपरान्त ब्राहमणों को दान कर दिया जाता है तथा सात पुये व्रती महिलायें खाती हैं सात पुये के अलावा कुछ नहीं ग्रहण करती है।

28—महालक्ष्मी व्रतारम्भ अष्टमी (गडा लैनू आठें)— इस दिन सौभाग्य वती स्त्रियॉं महालक्ष्मी के व्रत का प्रारम्भ करती है। ग्रन्थि युक्त डोरा, अर्थात सूत का धागा जिसमें 16 गॉठे लगी होती है इस धागें में दूब को बाँध कर धारण करती है तथा महालक्ष्मी व्रत का संकल्प लेती है इस दिन स्त्रियां नदी या तालाब में 16 डुबकियॉं लगा कर स्नान करती है या घर पर स्नान करने पर प्रत्येक अंग के नाम पर 16 लोटा पानी डालकर नहाया जाता है तथा काँसे की थाली में सफेद चन्दन चावल, सफेद फूल डाल कर उस दूब बंधे धागे को दोनो हथेलियॉं के बीच रख कर सूर्य को अर्ध्य देती है तत्पश्चात् लकड़ी के पाटा पर सफेद चन्दन से हाथी बनाकर उसका पूजन करती है तत्पश्चात पानी पीती है यह प्रक्रिया 16 दिन चलती है।

29—महालक्ष्मी व्रत— (हाथी पूजा)— क्वार मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को यह व्रत किया जाता है इस दिन हाथी की पूजा की जाती है तथा पुरोहित द्वारा शास्त्रीय कथा सुनी जाती है। विभिन्न पकवान बनाकर दान दिया जाता है तथा स्वयं भी खाया जाता है। यह व्रत सोलह दिन के बाद महालक्ष्मी व्रत की समाप्ति पर किया जाता है।

30—डोल ग्यास—इसका शाब्दिक अर्थ हैं डोल का तात्पर्य, डोलना, फिरना, चलना अर्थात बिहार, ग्यास का अर्थ ग्यारस अर्थात एकादशी, दोनों को मिलाकर यह अर्थ निकलता है "बिहार करने वाली एकादशी। इस दिन अर्थात भाद्र पद मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी को मंदिरों से भगवान की मूर्तियाँ निकाली जाती है उन्हें विमानों में बैठाकर थल तथा जल में बिहार करवाया जाता है इसीलिये इसे जल बिहार भी कहते है। इस दिन पुरूष तथा स्त्रियां दोनों ही व्रत करते है तथा सांय काल विमान पर सवार विहार करते हुये भगवान के दर्शन एवं आरती करते हैं।

31–ओक दुआस– यह पर्व भाद्र पद मास की शुक्ल पक्ष की दुआदशी को मनाया जाता है। इस दिन प्रातः स्नान ध्यान पूजा से निवृत्ति होने के पश्चात गाय तथा बडड़े की पूजा की जाती है प्रसाद में बेसन के पापड़ी एवं उबले और तले हुये चने बाँटे जाते है[1]।

32–अनन्त चौदस–यह पर्व भाद्र पद शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को मनाया जाता है। इस दिन भगवान श्री विष्णु की पूजा की जाती है गाय के गोबर से लीप चौक पूर कर पाटा रखा जाता है तथा उस पर अनन्त सूत्र (सूती धागा) जिस पर चौदह गांठें लगी होती है। रखा जाता है यह यथा सामर्थ सोने या चांदी का भी होता है । उसी पाटे पर चौदह पूड़ी एवं पुआ रखे जाते है उन पर एक–2 तुलसी का पत्र रखा जाता है चौदह विन्दियां चंदन की लगाई जाती हैं तथा पंचोपचार विधि से पूजन किया जाता है तथा विशेष रूप से पंचामृत बनाया जाता है उसी में उस अनन्त सूत्र को डुबा कर चौदह फेरे लगाये जाते है। यह कहा जाता है कि "ढूंढ़े ते ढकोरेते

धाये ते तब पाये ते", ब्राहमण को बुलाकर 'अनन्त भगवान की कथा सुनी जाती है तथा ब्राम्हण को चौदह पूड़ी या पुआ दिये जाते है यथा शक्ति दान दक्षिणा दी जाती है।

33–बुढ़वा मंगल–भाद्र मास के अन्तिम मंगलवार को बड़ा मंगल या बुढ़वा मंगल कहते है " इस दिन हनुमान मंदिरों पर मेला लगता है तथा हनुमान जी के दर्शन पूजन किया जाता है। तथा व्रत रखा जाता है। कहीं–2 दंगल का आयोजन किया जाता है।

34–कनागत पितृ पक्ष–भाद्र शुक्ल पूर्णिमा से अमावस्या तक पितृ पक्ष माना जाता है इन 15 दिनों में पितरों की पूजा,स्मरण , दान, पुण्य, श्राद्ध आदि किये जाते है। पिता की मृत्यु के बाद पुत्र अपने पिता, दादा, पर दादा, नाना, परनाना, इत्यादि को जल प्रदान करता है ऐसा विश्वास हैं कि पितृ पक्ष में स्वर्ग के दरवाजे खुले रहते है पुत्रों के आवाहन पर पितृ आते है उनके द्वारा दिया गया जल एवं पिण्ड ग्रहण करते हैं एवं पुत्रों को शुभाशीष प्रदान करते है। जो पुत्र अपने पिता को गया , बद्रीनाथ या कुरूक्षेत्र में जाकर पिण्ड दान करते है उनके पितरों को मोक्ष को प्राप्त हो जाता हैं। फिर वह अपने पितरों को पानी एवं श्राद्ध नहीं करते है। यहाँ की भाषा में इन 15 दिनों को करये (कड़वे) दिन कहा जाता है। इन 15 दिनों तक कोई भी शुभ कार्य सम्पादित नही होता हैं, विवह सम्बंधी बात नही होती है बहू बेटी की विदा नही होती है

1–बुन्देली लोक चित्र कला –डॉ0 हरी मोहन पुरवार पृ0 48

पितरों को पानी देने वाला बाल 'हजामत' नही बनवाता है। उसकी पत्नी इस बीच महालक्ष्मी वाले दिन को छोड़ कर सिर के बाल नहीं धोती चोटी नहीं गूंथती, महावर नही लगाती, नई चूड़ी, बिन्दी, बिछिया, नये वस्त्र नही पहनती , भोजन में छोंका बघार नही दिया जाता, पूड़ियाँ नही बनायी जाती केवल महालक्ष्मी वाले दिन अष्टमी को स्त्रियाँ सिर धोती है तथा श्रृंगार करती है । नामी को मातृ पक्ष का श्राद्ध किया जाता है इस दिन कच्चा भोजन बनाया जाता है श्राद्ध वाले दिन पूड़ी साग इत्यादि बनाया जाता है तथा ब्राहमणों को भोजन एवं दक्षिणा दी जाती है। इन दिनों में मूंग की दाल की बड़ी (मंगोडी) (जिन्हे मिथौरी कहा जाता है)। एवं सिंवई का नाम भी नहीं लिया जाता है। अपने मान्य के यहाँ भोजन नहीं किया जाता है।

35—शारदीय नवरात्रि—आश्विन अमावस्या को पितरों का विसर्जन किया जाता है। शुक्ल पक्ष प्रति पदा को पुनः माँ भगवती की साधना का पर्व प्रारम्भ होता है, जैसा कि चैत्र की नवरात्रि में किया जाता है।

36—दशहरा—"यह अत्यन्त ही उल्लास का पर्व है इसे आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को दशहरा मनाया जाता है । इसी दिन भगवान राम ने रावण का वध कर असत्य का अन्त कर सत्य की विजय करायी थी"[1] इस दिन मेला लगता है। राम लीला में राम रावण का वध करते है । उस दिन की लीला समाप्त हो जाती है। सभी लोग अपने अस्त्र शस्त्रों की सफाई करते है। उनका पूजन करते हैं सुबह मछली शाम के समय नीलकण्ठ देखने का रिबाज है तथा छैकुंरा के पेड़ की पत्ती तथा उसकी जड़ के पास से मिटटी लाई जाती है। सभी लोग आपस में गले मिलते है एक दूसरे के घर जाते हैं उन्हे मिठाई खिलायी जाती है तथा पान खिलाया जाता है।

36—शरद पूर्णिमा (टिसुआरी पूनों)—यह पर्व अश्विन मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है वर्षा ऋतु के बाद हल्की ठंडक के साथ स्वच्छ आसमान तथा धवल चाँदनी होती है ऐसे समय में शाम के समय खीर बनायी जाती है। उसे खुले आसमान के नीचे कपड़े से ढ़ककर रख दी जाती है। पुरूष वर्ग गाँव से थोड़ी दूर कबड्डी खेलने जाते है। बालक बालिकायें टेसू और झिंझिया का व्याह रचाते हैं । महिलायें झूला झूलती है। या अन्य प्रकार से लोक गीत गाकर, स्वांग आदि कर अपना मनोंरंजन करती है रात्रि के तीसरे पहर में

1—बुन्देलखण्डी लोकगीतों में सांगीतिक तत्व —डॉ0 वीणा श्रीवास्तव पृ0 157

शारीरिक मेहनत करने के बाद शरीर के गरम रहते हुये खीर खाने से सर्दी जुकाम, श्वाँस जन्य रोग वर्ष भर शान्त रहते है।

38–करवा–चौथ–यह पूजा कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष चतुर्थी को की जाती है। सुहागिन स्त्रियॉ पति की लम्बी उम्र के लिए निर्जला व्रत रखती है तथा शाम को चन्द्रमा को अर्घ्य देकर पानी पीती है।

39–अहोई आठें–इसे होई माई बेइया, माता , विधि माता, (बैमाता) की पूजा भी कहते है। (प्रसव पीड़ा प्रारम्भ होने पर विधि माता या वैमाता की प्रार्थना स्वरूप गर्भिणी स्त्री का दाहिने हाथ से सरसों के तेल की सहायता से थापा लगाया जाता है। ताकि प्रसव पीड़ा कम हो तथा जच्चा, बच्चा दोनों स्वस्थ रहें, तथा परिवार बढ़ता रहे,। इन्ही विधिमाता की पूजा छठी वाले दिन की जाती हैं यही विधि माता की पूजा इस अष्टमी वाले दिन विधि की जाती है। रात्रि के समय उसी प्रसव कक्ष में उस थापे के पास दीवाल को लीप पोत कर उस पुतरिया लिखी जाती है उसकी विधिवत पूजा की जाती हैं। तथा आठ मिट्टी के नदोलों में मिष्ठान, पकवान फल आदि रखे जाते है कहानियाँ कही जाती हैं। तथा रात्रि में भजन कीर्तन किया जाता है।

40–दीपावली–(दिवारी)– कार्तिक मास की अमावस्या को यह पर्व मनाया जाता है। दीपावली में भगवान राम रावण का बध कर के अयोध्या लौटे थे। भगवान राम का राज्याभिषेक इसी दिन हुआ था। ऐसी मान्यता है। दीपावली स्वच्छता खुशी उल्लास का पर्व है। प्रत्येक घरों में भीतर से सफाई, लिपाई, पुताई की जाती है। प्रत्येक घर रंगने पुतने या लिपने के कारण चमक उठता है। चाहे वह जानवरों के बाँधने का बाड़ा या घेरा ही हो। यह पर्व 5 दिन मनाया जाता है। पहले दिन, अर्थात त्रयोदशी को दो दीपक जलाये जाते है। प्रत्येक घर में कुछ ना कुछ यथा समर्थ्य सोना, चाँदी, पीपल, ताँबा खरीदा जाता है। रसोई में विभिन्न प्रकार के पकवान बनाये जाते है इसी दिन रसोई की सफाई, लिपाई, पुताई आदि की जाती है। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को नरक चउदस कहते है। इस दिन बड़ा सा दीपक आटे का बनाया जाता है जिसमें चार बत्तियाँ जलायी जाती है जो चारों दिशा में होती है उसे आटा छानने वाली चलनी में रख कर घर से बाहर ले जाकर दक्षिण दिशा में रखा जाता है। तथा घर के बाहर रखे गये दीपकों को विशेष रूप से सुरक्षित रख लिया जाता है। इनका प्रयोग झाड़ फूँक के लिये किया जाता है। किसी भी प्रकार के भूत–प्रेत की आशंका होने पर इन दीपकों को घिस कर

पीड़ित को पिलाने पर उससे मुक्ति मिलती है। उल्लेखनीय है यहाँ पर नरक चौदस को 'जमघण्ट' भी कहा जाता है इसके पश्चात दीपावली होती है इस दिन सभी अपने जानवरों को नहलाते है उनकी रस्सियॉ बदल कर नई डाली जाती है। गले में डाले जाने गिरवॉ नये पहनाये जाते है जानवरोंके सींग देशी घी में काला रंग मिलाकर रंगे जाते हैं। उनके शरीर पर गेरू से विभिन्न प्रकार रंगे जाते हैं। सांय काल पूजा के समय सभी स्त्री, पुरूष, बच्चे नये कपड़े पहनते हैं। तथा गणेश लक्ष्मी की पूजा की जाती है। सर्वप्रथम सात, नौ, ग्यारह देशी घी के दीपक जलाये जाते हैं बाद में तेल के दीपक जलाये जाते हैं देशी घी के दीपक तुलसी गोवर्धन, समीप स्थित मंदिर, गौशाला, आदि में रखे जाते हैं। घर के प्रत्येक कोने में दीपक रख कर प्रकाश किया जाता है कहीं भी किसी प्रकार का अँधेरा न रहे। घरों को लोग विद्युत के छोटे–2 बल्ब की झालर, मोमबत्तियाँ द्वारा सजाते है घर में विभिन्न प्रकार के पकवान बनाये जाते है। मुख्यतः मिठाई। इसके बाद कुल देवता की पूजा की जाती है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है तथा उसके बाद अपने जानवर, गाड़ी, घोड़ा, टैक्टर गाड़ी आदि का भी पूजन किया जाता है। जानवरों को उर्द की फसल को तोड़कर कच्चे उर्द गाय बकरी भेड़ आदि को खिलाये जाते है। ताकि उन्हें, कोई नजर या कोई टोटका न लग सके। रात्रि जागरण किया जाता है। रात्रि के द्वितीय पहर में स्त्रियॉ दीवाल पर पुतरिया बनाकर उनका पूजन करती है, उनके समक्ष पकवान, मिष्ठान, फल आदि बगैरह रखे जाते है। कुछ लोग द्यूत खेलते है तृतीय पहर में पुनः घर के मुख्य दरवाजे के पास चौक पूर कर उसके बीचों बीच दीपक रख कर पूजा की जाती है तथा कहानी कही जाती है। मुख्य दीपक जो गणेश लक्ष्मी पूजा केपास रात भर जलता है उससे काजल पार (तैयार) कर सभी लोग लगाते है सुबह 3 या 4 बजे स्त्रियॉ सूप में डण्डी मारती हुई घर के कोने –2 में जाकर यह कहतीं हैं "भाग द्रलिद्रता बैठो लक्ष्मी" इस प्रकार घर से बाहर दरिद्रता को छोड़ दिया जाता है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोवर्धन पूजा का पर्व मनाया जाता है इस दिन घर के ऑगन में गोवर्धन पर्वत बनाया जाता है उस पर घर समाज का चित्रण गोबर द्वारा निर्मित छोटी–2 मूर्तियाँ बना कर किया जाता है यथा भोजन बनाती हुई चक्की पीसती, मटूठा फेरती, कुये से पानी भरती हुई बच्चे खेलते हुये, जानवर चरते हुये, तालाब पर पानी पीते हुये, पेड़ पे चढ़े बेर खाते हुये मुख्य दरवाजे पर चौकीदार कुत्ता बैठा हुआ,। रसोई में समूंदी रसोई बनायी जाती है। तथा गोवर्धन की पूजा घर के समस्त पुरूष बच्चे आदि मिल कर करते है। गोवर्धन को यज्ञोपवीत पहनाकर उनके पात्रों को दूध,

दही, गोरस, चावल, सिंमई आदि द्वारा भर दिया जाता है। मान्यता है कि कृष्ण भगवान ने गोर्वधन पर्वत उठा कर गाँव की रक्षा इन्द्र के प्रकोप से की थी, उसी की याद में यह पर्व मनाया जाता है। 'वरेदी' जो जानवर चराते हैं वह किसी जाति के हो मुख्यतः 'अहीर' इस दिन मौन चराते हैं, मौन चराने का अर्थ दो प्रकार का समझा जाता है प्रथम, उस दिन ये लोग सुबह से मौन व्रत धारण करते हैं। नये कपड़े पहन हाथ में मोर पँख का झाड़ लिये हुये झोली में प्रसाद लिये क्षेत्र के प्रत्येक मंदिर जाते हैं। राहगीरों को प्रसाद बॉटते है। इस का अर्थ प्रथम तो यह मानते है वह मौन रहकर जानवर चराते है, द्वितीय अर्थ में कि कृष्ण भगवान नाराज होकर कहीं छुप जाते हैं। उन्हे वह मौन रख कर ढूँढते हैं बोलने पर कहीं आवाज सुनकर अन्यत्र ना छुप जायें। द्वितीय अर्थ ही अधिक उपयुक्त लगता हैं तथा 'अहीर' जाति के लोग दिवारी नृत्य करते है इस नृत्य में रंग विरगें कपड़े पहिने जाते हैं। जो कि विशेषतया इसी नृत्य के लिये बनाये जाते हैं एक दम कसा हुआ जाँधिया, जिस पर कपड़े से फूल पत्ती इत्यादि बनाये जाते है। कपड़े या उन पर गुम्फित फूल तथा घुघरू लगाये जाते है। जो पदाघातों से लय के साथ सांमजस्य बैठा कर उल्लास मय वातावरण का सृजन करते .है मन प्रफुल्लित हो जाता है। ऊपरी बदन पर बड़ी नुमा वस्त्र भी अत्यन्त कसा हुआ तथा कपड़े के फूल पत्तियों द्वारा सज्जित होता है, इस नृत्य में ढोलक तांसा ही मुख्य बाद्य"[1] होता है। अलगोझा का भी प्रयोग किया जाता है। नर्तकों के हाथ में छोटी–2 लकड़ी होती है जिन्हें वह लय के साथ टकराकर ध्वनि निकालते है। यह लकड़ियों अपने हाथों की दोनों तथा दूसरे नर्तक, के हाथो की लकड़ी से टकराते है लय कुशलता के साथ बढ़ती जाती है। लकड़ियॉ एक दूसरे से लड़ाते हुये विभिन्न प्रकार की मुद्राये, वर्ग गोलाकार स्वास्तिक, पैरामिड, इत्यादि बनाते है। यह बहुत ही मेहनत, लगन, कुशलता, का नृत्य है। इस नृत्य का बहुत ही अभ्यास करना पड़ता है इन नर्तकों का सम्मान किया जाता हैं उन्हें उपहार दिये जाते हैं।

1–बुन्देली लोक साहित्य–डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव स्नेही पृ0 143

कार्तिक शुक्ल द्वादशी को दौज या 'भइया दौज' कहा जाता है। इस दिन महिलायें घर के दरवाजे पर भूमि पर गोबर से आलेखन कर उसकी पूजा करती है। कांटेदार पौधा जिसे कॅटीला कहते है। उस "पौधें को मूसल द्वारा कुचल डालती है जिसे भाई का दुश्मन मानती है। कहानी कही जाती है। इसका आशय है कि पहले कृषि ही मुख्य धन्धा होता था तथा कॅटीला कृषक को परेशान करता है इसलिये कृषि हेतु भूमि, मार्ग के काँटे साफ कर कृषक के कष्ट को कम करना होता है। इसे यम द्वितीया भी कहा जाता है इस दिन पौराणिक नगरी कालपी में यमुना स्नान का विशेष महत्व है मान्यता है। यम की बहिन यमुना है। यम का स्थान दक्षिण दिशा माना जाता है। यमुना अपने उद्गम से लेकर सागर में मिलने तक व्यास क्षेत्र कालपी को छोड़कर कहीं भी दक्षिण मुखी नही हुई है किन्तु व्यास क्षेत्र में यमुना अपने भाई यम के घर की दिशा को ओर उन्मुख होकर चली। अतः यम द्वितीया पर कालपी के व्यास क्षेत्र में बहिन भाई साथ–साथ स्नान कर यम के (या मृत्यु जो कि शाश्वत सत्य है), भय से मुक्त हो जाते हैं।

<u>41–गोपाष्टमी (गोपाल अष्टमी)</u>–कार्तिक शुक्ल पक्ष अष्टमी को गाय तथा बछड़े की पूज़ा की जाती है गाय को गुड़, भीगी हुई चने की दाल खिलायी जाती है तथा उसी का प्रसाद बॉटा जाता है गाबर द्वारा भूमि को लीप कर चौक पूरा जाता है। चौक पर गाय को खड़ी करके उसका तिलक किया जाता है। आरती उतारी जाती है।

<u>42–इच्छा नौमी</u>–कार्तिक शुक्ल नवमी को पकवान बनाये जाते है। तथा आँवलें के पेड़ के नीचे बैठकर परिवार इष्ट मित्रों के साथ भोजन किया जाता है आँवला की पूजा की जाती है कहानी कही जाती है यह एक प्रकार स पारिवारिक पिकनिक जैसा लगता है।

<u>43–देवठान (देवोत्थानी) एकादशी</u>– श्री हरि विष्णु आषाढ़ शुक्ल एकादशी को शयन हेतु क्षीर सागर में शेष शैया पर चले जाते है, उन्हें जगाने के लिये कार्तिक शुक्ल एकादशी को देवठानी एकादशी पर्व मनाया जाता है। इस दिन स्त्री, पुरूष व्रत रखते है सांय समय आँगन में लीप कर चौक पूरा जाता है उस पर लकड़ी का पाटा रखां जाता है पटटे पर चन्दन से श्री हरि विष्णु के पैर बनाये जाते है। चार गन्ने पट्टे के चारो तरफ खड़े करके उपर तरफ पत्तियॉ बाँध दी जाती है। जिससे वह मण्डप की तरह बन जाता है उसके बाद उस पट्टे को हिलाया जाता है कहां जाता है कि "उठो देव गुर गौडेखाव कुआँरिन के व्याह करौ, व्याहिन के चलाये करो"। फिर उनकी पूजा की जाती हैं

सिंघाड़ा बेर, गन्ना, तिल से उनका भोग लगाया जाता है इस पूजा के होने के बाद ही गन्ना की पिराई प्रारम्भ होती है तथा चने का साग खाने लगते है। शुभ कार्य, मुण्डन कनछेदन इत्यादि प्रारम्भ हो जाते है।

44—बाराहीं—यह पूजा मार्ग शीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को मनाया जाता है इस दिन सांयकाल मंगोड़ा पुआ गुलगुला, पूड़ी कचौड़ी इत्यादि पकवान बनाये जाते है तथा चूल्हे पर चढ़ी हुई कडाही के दोनों कन्नो (पकड़ने का स्थान) की पूजा की जाती है तथा चूल्हे पर 14 बिन्दिया सिन्दूर की लगायी जाती हैं। सुहागवती स्त्रियॉ पूजा के बाद सुहाग लेती है और प्रसाद स्वरूप पकवानों का भोजन किया जाता है।

45—संकरात (मकर संक्रान्ति)— यह पर्व जिस दिन सूर्य मकर राशि में प्रवेश करते है। उस दिन मनाया जाता है। व्रिकमीय संवत की कोई तिथि निशचित नहीं होती है किन्तु इतना अवश्य है कि अंग्रेजी पंचाग से 14 जनवरी को पड़ता है बुन्देल खण्ड में यह पर्व तीन दिन मनाया जाता है। सूर्य के मकर राशि के प्रवेश के पूर्व 'तिलैयॉ' मनायी जाती है। इस दिन मगोड़ा पुआ, गुलगुला, बाजरे के पुआ, ज्वार की पूड़ी बनायी जाती है। इस दिन प्रातः काले तिल का उवटन कर नदी आदि पर स्नान, तथा दान दिया जाता है। भोजन में काले सफेद तिल के लडड्, चने की दाल के लडड्ूँ, मूंग के लड्डू इत्यादि तथा उड़द की दाल की खिचड़ी अवश्य खाई जाती है। समूंची रसोई भी बनाई जाती है। मकर सक्रान्ति के दूसरे दिन सांयकाल लीपकर चौक पूर कर उस पाटा रखकर मिट्टी पीतल के घोड़े गाड़ी इत्यादि रख कर उनकी पूजा की जाती है। इन तीन दिनों में बने हुये पकवान (कपड़े का थैला नुमा जिसके दोनों ओर आकार बना होता है) (जिसे गौंने कहा जाता है) भर कर घोड़े की पीठ पर लाद दिये जाते है। रात भर यह यूँ ही रखे रहते है, सुबह गौनें उठाकर रख दी जाती है पीतल के घोड़ो से बच्चे खेलते है। मिट्टी के घोड़े उठाकर सुरक्षित रख दिये जाते है तथा विगत वर्ष के पुराने घोड़े विर्सजित कर दिये जाते है या बच्चे खेलते है इसे बुन्देलखण्ड में 'भँवरात' कहते है।

46—बसंत पंचमी — बसन्त ऋतु का आगमन सरस्वती पूजा के साथ मनाया जाता है इस दिन हरी बाल, आम की बौर पीले फूलों से देवी सरस्वती की पूजा की जाती है जनेऊ बदले जाते है। पीले रंग के कपड़े पहने जाते है। खीर, पूड़ी, मिष्ठान आदि का भोग लगाया जाता है तथा रात्रि में भजन

कीर्तन इत्यादि किये जाते है।

47—सूर्य पूजा—माघ मास के अंतिम रविवार को सूर्य की पूजा की जाती हैं खुले आंगन में लीप, चौक पूर कर गोल पटा रखा जाता है। चौंक गोलाकार सूर्याकृति में पूरा जाता हैं परिधि में वृताकार छोटी पूडियॉ (अठवाई) रखी जाती हैं तथा केन्द्र में गोल काँसे की कटोरी में खीर रखी जाती हैं। सूर्य का पूजन किया जाता तथा प्रसाद स्वरूप उन्ही अठवाई खीर को बाँटा जाता हैं।

48—शिवरात्रि— इस दिन स्त्री, पुरूष बच्चे सभी व्रत रखते हैं। तथा भगवान शंकर की पूजा की जाती हैं। रात्रि जागरण किया जाता हैं। शिव अभिषेक विभिन्न प्रकार से तीन बार किया जाता है। शिव जी को, घी, दूध, शर्करा, गंगाजल, मधु से स्नान कराया जाता हैं। चन्दन, चावल, बिल्ब पत्र, विजया, धतूरा, अकौवा, बेर फल, मिष्ठान्न इत्यादि चढ़ाये जाते हैं। मंदिरों में घरों में भी श्री रामचरित मानस या शिव पुराण का पाठ किया जाता हैं अथवा भजन कीर्तन जाता है।

49—होली—यह फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनायी जाती हैं यह त्यौहार भी असत्य पर सत्य की विजय का उत्सव होता है, प्रेम सद्भाव तथा पारस्परिक समता, हँसी मजाक, का यह त्यौहार अत्यन्त ही उल्लास पूर्ण होता है। होलिका दहन, प्रहलाद, हिरण्याकश्यप, की याद में किया जाता है। इस दिन प्रत्येक घरों में विभिन्न प्रकार के पकवान गुझिया, पपरियाँ सेव, लडडू एहरषे, इत्यादि बनाये जाते हैं रात्रि में होलिका दहन होता है। हल्दी चावल, अठवाई "पिराके" (गुड की सोंठा मेवा पड़ी हुई छोटी गुझिया) से होली का पूजन किया जाता हैं। तथा होली की आग घर में लाई जाती हैं उससे घर में होली जलायी जाती हैं। इस आग में पानी गरम कर स्नान किया जाता हैं स्नान पूर्व 'अज्जा झारे' (अपामार्ग) के पेड़ से घर के बाहर ही सिर से पैर तक झार दिया जाता हैं तथा यह कहा जाता हैं कि अज्जा झारौ अज्जा झारो।

रोग दोष ले जाऊ दुआरे" सुबह आग ठन्डी हो जाती हैं तथा सभी लोग उस धूल राख को एक दूसरे को लगते हैं जिसे धूल उड़ाना कहते हैं, तत्पश्चात् रंग अबीर, एक दूसरे के घर जाकर शुभ कामनाएं प्रदान करते हैं। फाग गायन होता है।

चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को महिलायें दीवाली की दौज की भॉति ही घर के बाहर गोबर द्वारा आलेखन कर दौज रखती हैं उनका पूजन करती हैं बहने भाइयों का अबीर से तिलक कर उनके दीर्घायु होने स्वस्थ रहने की मंगल कामना करती हैं।

धार्मिक स्थिति

मानव सदैव से ही जिज्ञासु रहा है। जिज्ञासा ही उसे अनुसंधान करने के लिये प्रेरित करती है मानव प्रत्येक रहस्य को हमेशा से जानने के लिये उत्सुक रहा है। अनुसन्धान कर वह नित्य नये अविष्कार करने के लिये प्रयत्नशील रहा है। निसन्देह वह प्रकृति के भयंकर विनाश को देखकर भयाक्रान्त हुआ होगा तो दूसरी ओर प्रकृति की सुरम्य छटा देख कर उसका मन मयूर नृत्य करने लगा होगा, इन्हीं दोनों भावों ने उसके जिज्ञासु मन को और भी अधिक उत्सुकता प्रदान की होगी इस ज्ञान को प्राप्त करने की।

इन्ही भावनाओं ने उसे ऐसी शक्ति की ओर सोचने को मजबूर किया होगा जो सर्वशक्ति मान, अपराजेय है जिस पर विजय प्राप्त न करने पर उससे भय खाकर उसको पूजने की प्रक्रिया प्रारमी की होगी। क्योंकि "धर्म किसी ना किसी प्रकार के अति मानवीय या अलौकिक या समाजोपरि शक्ति पर विश्वास करता है, जिसका आधार भय, श्रृद्धा भक्ति, और पवित्रता की धारण है और जिसकी अभिव्यक्ति प्रार्थना पूजा या आराधना है" ।1

भारतीय संस्कृति धार्मिक संस्कृति है भारत की समस्त जनता धर्म परायण है। भारतीय जनता में धार्मिकता कूट-कूट कर भरी हुई हैं उसके कार्य में धार्मिकता स्पष्ट दृष्टि गोचर होती है भारतीय संस्कृति, सभ्यता, साहित्य सब में धार्मिकता ताने, बाने के समान सम्मिलित हैं यह धार्मिक भावना पूर्व वैदिक युग से अविछिन्न रूप से चली आ रही है। प्राचीन भारतीय बाड़्मय-वेद अपनिषद ब्राहमण ग्रन्थ, आरण्यक पुराण श्री मद्भागवत मनुस्मृति आदि सब में धर्म ही धर्म है।

अतः इस धार्मिक भावना से लोक कैसे अछूता रह सकता है। बुन्देली लोक जीवन का प्राण धर्म हैं। सारा लोक जीवन धार्मिकता के आवरण से ढंका हुआ है। बुन्देली लोक का धर्म के प्रति अटूट विश्वास है यहॉ के रीति रिवाज, आचार विचार, धर्म से अनुप्राणित हैं। लोक का मुख्य आधार है धार्मिकता। धर्म की घुट्टी लोक मानस को जन्म से ही पिलायी जाती है। अतः उसके समस्त कर्म लोक की समस्त विधायें धर्माधारित है बुन्देली साहित्य, लोक संस्कृति लोकगीत लोकौत्तियॉ, बुझौबल, कहावतें सभी धर्म रूपी वृक्ष की शाखायें सी प्रतीत होती हैं।

सभी पर धर्म का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में देखा जा सकता है। "लोक साहित्य के सभी अंगो में धर्म उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार से माला की प्रत्येक मनिका में सूत्र। धर्म की इसी अनुस्यूक्ता के कारण जनता का साहित्य इतना लोकप्रिय हो सका है .... जनता के इस लोकप्रिय साहित्य में वर्णित विधि विद्वानों रीतिरिवाजों विश्वास, परम्पराओं तथा रहन–सहन का अनुशीलन किय जाय तो इससे ज्ञात होता है कि इनको धर्म से कितनी प्रेरणा प्राप्त हुई है कितना बल मिला है "किं बहुना", यदि लोक साहित्य के निर्माण में धर्म का आधार प्राप्त न हो तो उसका इतना सजीव स्वस्थ्य सबल होना सम्भव न था।[1]

बुन्देली लोकजन मानस सहज सरल सीधा साधा है। धर्म की जटिलताओं में न पड़ कर कर्म योग से पूरे ज्ञान योग सहज निश्छल भाव को ही हृदयगम करता है वह निर्गुण ब्रहम में भी कम विश्वास करता है। उसे कर्म, मार्ग, ज्ञान मार्ग, योग मार्ग, तथा भक्ति मार्ग की जटिल दार्शनिक प्रक्रियायें रास नहीं आती। वह तो सगुण ब्रहम की समस्त अवतारों की पूजा करने में विश्वास करता है। समस्त चराचर जगत उसकी आस्था का केन्द्र है। वह तो सिया राम मय समस्त जगत को मानता है। उसे पेड़ पोधे, नदी, पहाड़, पशु–पक्षी कुँआ तालाब, सांप विच्छू शेर, वनस्पति, दूब, तुलसी, नीम पीपल सभी सिया राम मय लगते हैं। वह सबको पूजता है मंदिर, मस्जिद, गिरजा, सती चौतरा, हरदौल चबूतरा समाधि, मजार, कब्र सभी में उसकी आस्था रहती है। वर्ष में कोई ना कोई तिथि वार, नक्षत्र, महीना, ऋतु, अवश्य होती हैं जो इन मेंसे किसी ना किसी से सम्बन्धित होती है। दैनिक उपयोग की वस्तुयें जो उसकी सहायता करते हैं वह उसके पूज्य है। हल हरीस मूसल, चक्की, सिल, लोढा, यहॉ तक कि घूरे" (कूड़े डालने की जगह) की भी पूजा होती है। लोकगीत जीवन में व्याप्त समस्त धार्मिक भावनाओं का प्रकाशन लोकगीतो में दिखाई पड़ता है। लोकगीत लोक साहित्य की बहुत ही जनप्रिय विधा है। बुन्देली लोक गीतों में लोक की इस भावना का दर्शन होता है। राम, सीता, शिव, पार्वती, कृष्ण, राधा, हनुमान, गणेश, देवी, दुर्गा, सूर्य, चन्द्र, तुलसी, कदम्ब,नीम, पीपल, दूब, कुलदेवता, इन्द्र देवता, ग्राम देवता, भैरव, हाथी घोड़ा, गाय, बैल, मोर, कोयल, पपीहा, गंगा जमुना, नर्वदा, प्रयाग (त्रिवेनी) काशी[1] आदि के भक्ति परक धार्मिक भावना तथा मंगल कामना परिपूर्ण लोकगीतों का प्रचलन हर जगह मिलता हैं अर्थात सम्पूर्ण चराचर जगत की उपासना में लोकगीत गाये है।

1–डॉ0 कृष्ण देव उपाध्याय लोक साहित्य की भूमिका पृ0 221 तथा 297

हर कण कण में भगवान का वास है। नर्मदा नदी कागोल पत्थरशिव लिंग है गाय, गोरस, गोबर, बैल, पूज्य हैं साँड तो साक्षात धर्म का स्वरूप है। विविध ताप, आधि व्याधि से मुक्त रखने के लिये तथा समाज एवं लोक कल्याण की मंगल कामना इन लोक गीतों में दिखायी पड़ती है।

बुन्देली लोक जीवन में धर्म इस प्रकार जुड़ा हुआ है जैसे एक सिक्के के पहलू जिन्हें पृथक करना असम्भव हैं धर्म के बिना वह अस्तित्वहीन है।

1—राम—राम राम से भजले प्राणी क्यों करता आनाकानी हम जानी कि तुम जानी

2—सीता— सीता तुम सतवंती नारी एक पुरूष की नार

3—मोरे मन की कामना पूरन करो बाबा भोले नाथ बम—2 भोले नाथ

4—पार्वती—पावर्ती तेरो सैया में देख आयी पार्वती तेरे सैंया हो मांय

5—काले नाथ के नथैया, फन पर बीन बजैया,

6—राधा— झुला झुलन राधा चली हो माँये

7—हनुमान—मेरी लाज तुम्हारे हाथ पवन सुत अंजनी के लाला

8—सब देवन ने फूल बरसाये, महाराज गजानन आये

9—दुर्गा—दुर्गा को लाव माइ पॉव पैजनियॉ छतियन लाल उढ़नियॉ

10—तुलसी—बोलोरी सखि सब रामइ राम

कहाँ बैठी तुलसा कहाँ बैठे राम

कहाँ विराजे शालिग राम

11—कदम्ब, झूला डरो कदम की डार झूले कृष्ण मुरारी

12—आम, महुआ— देवी ने लगाये, आम नीम महुआ गुलजार

लौंगन के झाड़ लायचिन के झाड़

लगुंरा लगाये रस केवरा हो माय

13—छबीले भैरों लाल हो, दरस की तो बेरा भई

14—हरदौल—बुन्देला राजा कर गये जग में नाम

15—हाथी—हथियन पे हथिया बढ़े अरे मन रजंना लाग

झगडालू ननदिया को देव " " "

16—घोड़ा— कि मेरी आली तीजे घोडी बिओनी

बछेस हर चले मेरी आली

17—गाय— घौरी को पूजें मेरे साहिब तो

पूजें—पूजें रे बाये मेरे पूत,

18—सॉड़— धर्म के रूप तुम राखे भनैजा

धरम रूप कहलाव हो माय

19—मोर पपीहा कोयल,

देवी के हरिअर सुयना, पपीहा कोयल मोर

20—गंगा—सिरी गंगा मैया तेरो जल अमृत नीर

21—जमना—जमना तोरे रस हमें भावै

22—नर्मदा—नर्मदा तो माता लगेरे

अरे माता लगे रे, गंगा जमुन लगे बैन

23—पाप हरन को गंगा जमुना

तरबे को त्रिवेनी जटा में सिर गंगा लहरानी

24—सपरबे को काशी जू बना दई

काशी जू बना दई दरसन कै बना दये भोले नाथ रे

25—गुरू—सतगुरू की अटारी चढ़ जाओं

नसेनी बिन पावॅन की

पंचम अध्याय

वर्गीकरण

मानव के उत्स के साथ ही लोकगीतों का जन्म हुआ। ऐसा विद्वानों का विचार है। तभी से लोकगीतों की परम्परा अबाध गति से चली आ रही है। लोक द्वारा इस यज्ञ में हर काल में आहुतियाँ पड़ती चली जा रही है जिससे इनके भण्डार में वृद्धि होती चली आ रही है। लोकगीतों का भण्डार अकूत है लोकगीतों का अथाह सागर है आवश्यकता है तो गहरे डूबने की, जितना डूब जाय हीरा उतना ही बहुमूल्य मिलता है। नये गीतों का सृजन होता है लोक द्वारा गाये तथा अपनाये जाने पर लोक की सम्पदा बन जाते है इनमें परिवर्तन होता रहता है। मौखिक रूप से लोक गायक अपनी भावी पीढ़ी को यह धरोहर सौंपते है अतः श्रुति परम्पराके चलते इनमें यह कण्ठ धर्म के कारण परिवर्तन परिवर्द्धन होता रहता है। यह प्रक्रिया सतत् चलती रहती है श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा है "कि कहॉ से आते है इतने गीत ? स्मरण विस्मरण की ऑख मिचौली से। कुछ अट्टहास से। कुछ उदास हृदय से। कहॉ से आते है इतने गीत? जीवन के खेत में उगते है। ये सब गीत। कल्पना भी अपना काम करती है। रसवृत्ति और भावना की नृत्य का हिलोरा भी, पर ये सब खाद है खाद। जीवन के सुख, जीवन में भावों की अभिव्यक्ति गीत के रूप में कर लोकगीतों के अक्षय भण्डार को और अधिक समृद्ध किया । इन गॉवों में सम्पूर्ण लोक के दर्शन होते है सम्पूर्ण रिश्ते, क्रिया कलाप ,रहन, सहन वेश–भूषा आचार–विचार प्रकृति, रोजगार, धर्म, रीति–रिवाज व्रत त्यौहार उत्सव मेले, बाल वृद्ध नर–नारी तरूण तरूषी, कन्या बालक, सधवा, विधवा, विधुर, गृहस्थ, सन्यासी, अच्छाइयाँ, बुराइयाँ, कुरीतियाँ, धार्मिक मान्यताएं इत्यादि जीवन का कोई क्षण, कोई पहलू ऐसा नहीं है जिन पर लोक गीतों मौन हो, "इन गीतों के प्रारम्भ के प्रति एक सम्भावना हमारे पास है, पर इनके अन्त की कोइ कल्पना नहीं। यह बड़ी धारा है जिसमें अनेक छोटी मोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गम्भीर बना दिया है। सदियों के घात–प्रतिघातों ने उसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्नस्थितियों ने उसमें अपने मन के ताने–बाने बुने है। स्त्री पुरूष ने थक कर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटायी है। इसकी ध्वनि में बालक सोये है, जवानों में प्रेम की मस्ती, आयी है,

---

1–श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, धरती गाती है, पृ0 178

बूढ़ों ने मन बहलाये हैं, वैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है, विरही युवकों में एकांगी जीवन में उस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े–2 खेत जोते है, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाये हैं और मौजियो ने चुटकले छोड़े है। 1 सत्य है लोकगीत जन जीवन को वह आइना है जिसमें लोक की झॉकी स्पष्ट दिखायी देती है जो जीवन के विविध रूपों केबड़े ही रंजक, मधुर , तिक्त, सभी स्वरूपों को भावोद्दीपक शैली में प्रस्तुत करती है। इनमें सहजता सरलता, विविधता संजीवता पाई जाती है। जो निसर्ग है, इसमें बनावटीपन नहीं है। यह भाव प्रधान होते हैं। इसके वैविध्य ने विचारों को चमत्कृत कर दिया है। यह सत्य है कि प्रत्येक देश–प्रदेश तथा क्षेत्र विशेष के लोकगीत भाव तथा क्रिया की दृष्टि से एक होते है किन्तु उसमें स्थायीयता का रंग तथा खुशबू उन्हें अन्य से अलग अपनी एक निजी पहचान देती है। डा0 भागीरथ मिश्र का कथन है "इस लोक काव्य में जहॉ एक ओर वीरता और राष्ट्रीयता है वही दूसरी ओर श्रंगार, प्रेम, प्रकृति ऋतु और संस्कार से सम्बन्ध रखने वले गीत प्रचुर मात्रा में मिलते है। अपने क्षेत्रीय आघातों और लयों को लेकर प्रायः इन गीतों की भावनाओं का प्रचार सारे बुन्देली क्षेत्र पर है इतना ही नहीं, कुछ इन गीतों के संस्कार बघेली, छत्तीस गढ़ी मालवी, और ब्रज के लोक काव्य में भी देखे जा सकते है 2 "बुन्देलखण्ड के लोकगीत जाग्रत जनता के प्रतीक है। इन पर गीतों के खेतों खलिहानों की अमिट छाप है इसमें जन्म भूमि की गौरवशाली और यशस्वी आत्मा की पुकार निहित अभिव्यक्ति हुआ हैं इसमें गति भी है। तीव्रता भी और मर्म का छू सकने की शक्ति भी। कला और जन जीवन का संबध धरती के गीतों की विशेष पहचान है। 3

पूर्व वैदिक काल से लेकर अब तक की यात्रा करते हुये असंख्य भावों को अभिव्यक्ति ऐतिहासक राजनैतिक, सामाजिक अर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक परिस्तिथियें की झांकी का दर्शन कराते इन लोक गीतें का सीमित दायरे में बाँधना अति दुष्कर कार्य है।

1–डॉ0 श्याम सुन्दर परमार, –भारतीय लोक साहित्य पृ0 53

2–

3–डॉ0 भागीरथ मिश्र –बुन्देली लोक काव्य भांग–1 प्रक कथन –पृ0 31 डॉ0 उमाशंकर शुक्ल बुन्देलखण्ड के लोकगीत पृ0 36

फिर अध्ययन की सुविधा के लिये, पं0 गौरीशंकर द्विवेदी, श्री उमाशंकर शुक्ल, देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री शिव सहाय चतुर्वेदी, श्री कृष्णानन्द गुप्त, डॉ0 बलभद्रतिवारी, डॉ0 कृष्णलाल हंस , डॉ0 सरला कपूर तथा डॉ0 विनोद कुमारी तिवारी आदि विद्वानों ने लोकगीतों कावर्गीकरण कर उन्हे चौखटों खानो में बिठाकर बैज्ञानिकता के परिप्रेक्ष्य में आलोकित किया है जो स्तुत्य है।

डॉ0 वीणा श्रीवास्तव ने सांगीतिक दृष्टि से बुन्देली लोक गीतों का वर्गीकरण कर इस दुष्कर कार्य को क्रियान्वित किया तथा सांगीतिक अध्ययन की दृष्टि से उनका पूर्ण अनुशीलन कर उन्हे शास्त्र की आमा से आलोकित किया है इनके इस अति श्रम साध्य कार्य से यह और अधिक स्पष्ट हुआ है कि लोक से शास्त्र का निर्माण हुआ है।

इन लोक चितेरे विद्वानों ने बुन्देली लोक गीतों की कोटियाँ इस प्रकार निर्मित है।

पं0 गौरी शंकर द्विवेदी का वर्गीकरण

सैरे– आषाढ और सावन मास मे पाये जाते है।

राछरे– जेष्ठ से श्रावण तक गाये जाते है

मल्हारे और सावन–ये श्रावण तथा भाद्रपद में गाई जाती है

बिलवारी, दिवारी–ये कवारं कार्तिक में गायी जाती है।

बाबा या भोला के गीत–ये संक्रान्ति आदि तीर्थ यात्रा के अवसर पर गाये जाते है

गारी–विवाहादि के अवसरों पर गाई जाती है इनके अतिरिक्त खेत काटते समय, चक्की पीसते समय मजदूरी करते समय इत्यादि अनेक अवसरो पर भिन्न–2 प्रकार के गीत, भंजन, दादरे आदि गाये जाते हैं 1

श्री उमाशंकर शुक्ल का वर्गीकरण

1–उत्सव गीत

2–प्रेम सम्बधी गीत

1–बुन्देलखण्ड के ग्राम गीत– मधुकर पत्रिका पृ0 6

3–राजनीतिक, सामाजिक, और वीरपूजा, गीत इस प्रकार उन्होने पौराणिक गीत, कथागीत, संस्कार गीत और तल्य गीतम में सभी गीतों को रखा है 2

श्री देवेन्द्र स्त्यार्थी का वर्गीकरण–

1–माता के गीत

2–कार्तिक के गीत

3–बाबा के गीत

4–नौरता के गीत

वीर गाथाओ का अलग स्थान है इनमें कथा गीतों के मुख्य विभाग ये है

1–राछरे, पॅवारे,

एक और विभाजन यों हो सकता है।

1–लोरियॉ

2–बच्चों के खेलगीत

3–संस्कार गीत 1–सोहरे 2–विवाह गीत, बनरा बधाई गारी

4–ऋतु गीत–1–सावन–मल्हारें

2–फागें–यह फाल्गुन तथा होली के अवसर पर गाई जाती है। ये चार प्रकार की होती है।

1–सखयाऊ

2–डेढ़ खुरयाऊ

3–चौकडयाऊ

4–छन्दयाऊ

इनके अतिरिक्त रसिया और दादरा का अपना एक अलग स्थान है लेंदें भी बहुत शौक से गाई जाती है। और सैरों को तो हम खेल की कविता भी कह सकते है। अलग–अलग जातियों के कुछ गीत भी मिलते है जैसे धोबियो के धुवयाउ, ढ़ीमरो के ढिवरयाऊ गड़रियो के गडरयाऊ। इनके अतिरिक्त एक और विभाजन हो सकता है 1–नृत्य गीत 2–कथा गीत

1–डॉ0 देवेन्द्र सत्यार्थी धरती गाती है पृ0·117, 118

डॉ0 शिव सहाय चतुर्वेदी का वर्गीकरण

1—जन्म के समय गीत— इसमे सोहरे, बधाये, संचत तथा जन्म सम्बधी सभी संस्कारों, मुण्डन पासनी, आदि के गीत शामिल किये जा सकते है।

2—खेलकूद के गीत—इसमें लड़कियों के विविध खेलों के गीत, गौरता आदि के गीत सम्मिलित है

3—वैवाहिक गीत—इसमें बानरा, बनरी, रघुपत गारी, बींध, और विवाह संबंधी नेग ओर दस्तूरों के गीत आते है

4—श्रृंगार रस सम्बनधी गीत—इसमें श्रृगार तथा रसिकता सम्बंधी सभी प्रकार के गीतों का समावेश हो सकता है।

5—धार्मिक गीत—इसमें मीरा के गीत, भजन, मगतें तथा रामकृष्ण की प्रेम लीला सम्बधी गीतों का समावेश किया जा सकता है।

6—फागें— ये फागुन के महीने में गाई जाती है।

7—राछरे— ये श्रावण में गाये जाते है।

8—दिवारी—ये दीपावली के अवसर पर गाई जाती है।

9—सैरा— ये श्रावण भादों में गाये जाते है।

10—रसिया और मल्हारे—ये श्रावण भादों में गाये जाते है।

11—राई —यह बारह महीने गाई जाती है।

12—भोला के गीत—तीर्थ यात्रा के समय गाये जाते है।

13—श्रमदान के गीत—फसल बुआई, कटाई के समय गाये जाते है।

14—खास जातियों के गीत—

15—मौसम के गीत— इसमें फागें, दिवारी, कार्तिक के गीत आते है। 1

श्री कृष्णानन्द गुप्त का वर्गीकरण

1—शिव सहाय चतुर्वेदी —बुन्देली खण्डी लोक गीत पृ0 क, ख, ग

श्री कृष्णानन्द गुप्त जी ने बुन्देलखण्ड के लोकगीतों को उनके विषय और गाने के अवसरों की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकारों में बॉटा जा सकता है।

1—ऋतु गीत

2—श्रम गीत

3—त्यौहार गीत

4—संस्कार गीत

5—यात्रा गीत

6—धार्मिक गीत

7—बाल गीत

8—विविध गीत 1

डॉ0 बलभद्र तिवारी का वर्गीकरण—

1—ऋतुगीत तथा आख्यान गीत— आल्हा, कार्तिक के गीत, ढोला, मारू, धरमा, सांवरी, पुवारों, पडवा, सौरगा—सदावृक्ष।

2—उत्सव और त्यौहार—फागें, स्वांग, राई, दिवारी, तीजा, आरती, तुलसी का व्याह।

3—रीति—रिवाज संम्बधी गीत—बनरा, गारी, विदा के गीत, बधाई, भांवर, तेल, सोहरे, (जन्म के उत्सव मनाते समय गाया जाने वाला गीत)

4—श्रम गीत (कार्यो के अवसर पर)— दिनरी, बीरोठी, अनबोलना, बिलवारी।

5—भिक्षा वृति के गीत—बसेदवा की गीत (हास्य रस पूर्ण)

6—लोकनृत्य के साथ गाये जाने वाले गीत— राई, ढिमरयाई सैरोदिवारी।

7—यात्रा के समय के गीत—मोला के गीत (बंबुलिया)

8—धार्मिक गीत—प्रभाती, मगतें,जस , गोटे, बीरोढ़ी 2

1—श्री कृष्णानन्द गुप्त—हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास पृ0 335 (षोडस भाग)

2—बुन्देली काव्य परम्परा —(प्रथम खण्ड पृ0 9

डॉ0 कृष्ण लाल हंस का वर्गीकरण–

1–धार्मिक गीत

2–सामाजिक गीत

3–सामयिक गीत

4–ऐतिहासिक गीत

5–जीवन–गीत 1

डॉ0 सरला कपूर का वर्गीकरण

1–धार्मिक –माता के गीत, कार्तिक गीत, गोटे, लावा की गीत, नौरता, दमेटवा, एवं अन्य देवी –देवताओं के भजन

2–औत्सविक–साजन, बनरा, बधाई, 'सोहरे।

3–सामाजिक–गड़रयाऊ, विदा, कछयाऊ, और राछरे।

4–सामयिक–मल्हारें, सौरें, विलवारी, फागें। फागों के प्रकार निम्न है– सख्ययाऊ, खरयाऊ, चौकड़याऊ, छन्दयाऊ, खिरे, राहला, ख्याल, स्वांग, राछरे, दिवारी उजैकी चाचरी, अचरी, होली, रसिया, लेद, दतिया का माउदी सावन बनजारा कबीर, साखी आदि।

5–ऐतिहासिक गीत–रासे, आल्हा, ढोला, मारू, चौपाई

6–वीर रस– सिर्फ कडखा ही विशेष रूप में सम्मिलित है आल्हा भी वीर रस में आ सकता है।2

1–बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप पृ0 91

2–बुन्देलखण्ड के नरेश कवि

डॉ0 विनोद कुमारी तिवारी का वर्गीकरण

लोकगीत वर्गीकरण 2
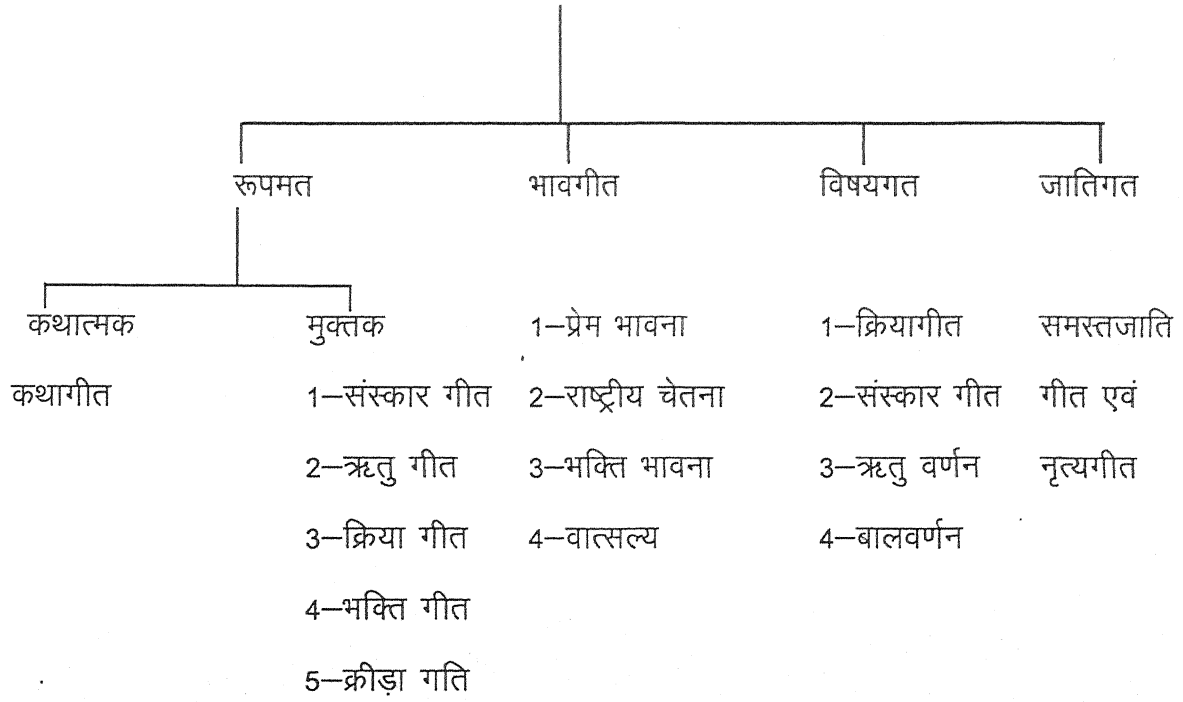
डॉ0 मोती लाल चौरसिया का वर्गीकरण—

1—संस्कार गीत	—	मनुष्य जीवन के सोलह संस्कारो को इस विभाजन में रखकर प्रमुख संस्कारों का उल्लेख।
2—ऋतु गीत	—	प्रचिलित ऋतुओं को ध्यान में रखकर गाये जाने वाले गीत
3—व्रत गीत	—	व्रत, उपवास, त्यौहार के समय गाये जाने वाले गीत।
4—जाति गीत	—	बुन्देलखण्ड में प्रचलित जातियों के विशेष गीत।
5—क्रिया गीत	—	कार्य करते समय गाये जाने वाले गीत।
6—विविध गीत	—	उपर्युक्त गीतों के अतिरिक्त बचे हुये सभी गीत इसमें सम्मिलित किये जा सकते है। 2

1—बुन्देली एवं बघेली लोकगीतो का सामाजिक सांस्कृतिक एवं काव्यात्यक तुलनात्मक अध्ययन (शोधग्रन्थ) डॉ (श्रीमती) विनोद कुमारी तिवारी

डॉ0 वीणा श्रीवास्तव का वर्गीकरण

बुन्देली लोकगीतों का सांगीतिक वर्गीकरण
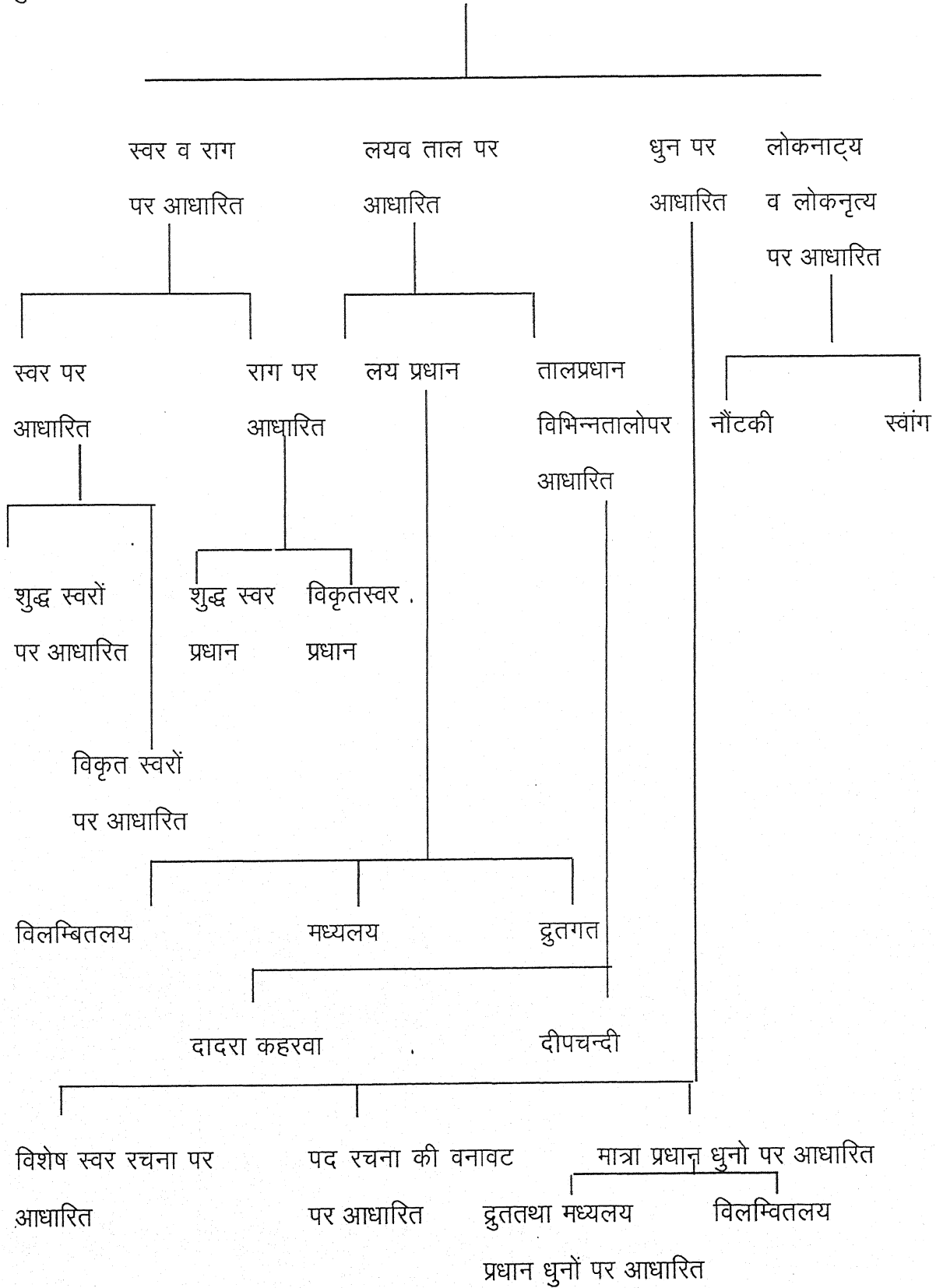
शोधग्रन्थ डॉ0 वीणा श्रीवास्तव, बुन्देलखण्डी लोकगीतों में सांगीतिक तत्व पृ0 212

निष्कर्ष रूप में लोकगीतों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में अभी तक जितने वर्गीकरण हुये है वे सम्पूर्ण लोकगीतों के वर्गीकरण है। तथा सभी विद्वानों ने अपनी अपनी तरह से लोकगीतों को वर्गीकृत किया है किसी ने सामाजिक, आर्थिक , राजनैतिक, पारिवारिक आदि का आधार लेते हुए तो किसी ने पूरे वर्ष को क्रम में रखकर तो किसी ने व्रत, उत्सव, त्यौहार, खेल, श्रम आदि का आधार लेकर अपने अपने मत प्रकट किये है।

बुन्देलखण्डी लोकगीतों के वर्गीकरण भी लगभग इसी आधार पर हुये है परन्तु डॉ0 वीणा श्रीवास्वत अपने शोध ग्रन्थ में एक नवीन आधार लेते हुए सम्पूर्ण बुन्देलखण्डी लोकगीतों का वर्गीकरण किया है जो निश्चित रूप से प्रशंसनीय है।

इन सभी को दृष्टिगत रखते हुए मैंने भी धार्मिक लोकगीतों का वर्गीकरण शोध दृष्टि रखते हुए निम्न रूप से किया है और प्रयास किया है कि धार्मिक लोकगीतों की प्रत्येक विधा इसमें समाहित हो चाहे वो वर्ष पर्यन्त के तीज त्योहारों के धार्मिक लोकगीत हो, देवी– देवताओं से सम्बन्धित हो, अध्यात्म, दर्शन के हो या प्रकृति या संस्कारों से जुड़े धार्मिक लोकगीत हो। इन सभी का आधार लेते हुए समग्र वर्गीकरण निम्न है।

धार्मिक लोक गीतों का वर्गीकरण
अर्चना एवं प्रार्थना से सम्बन्धित
अचरी
भगत
जस
बीरोठ
उंमाहे
देवी देवताओं से सम्बन्धित
भजन
देवी
गणेश
रामकृष्ण
शंकर,
हनुमान
व्रत त्यौहार एवं उत्सव से सम्बन्धित
(चैत्र से फाल्गुन मासान्तर्गत)
नवरात्रि
रामनवमी
गनगौर
शीतलाष्टमी
जगन्नाथ
आसमाई
हरायतें
सावन गीत
(झूला गीत)
जन्माष्टमी
हरतालिका तीज
गणेशचौथ
महालक्ष्मी
शारदीय नवरात्रि
दीवारी
बसन्त पंचमी
सरस्वती देवी
शिवरात्रि
(शंकर
भोला के गीत
बमबुलिया
टिप्पे
भगतें)
प्रकृति एवं प्राकृतिक वस्तुओं से सम्बन्धित
पशु पक्षी
हरायते
(बैल,हल,हलधर)
ओकद्वास
(गइया,बछड़ा)
गोवर्धन
गोपाष्टमी
इच्छानॉमी
(ऑवला)
सूर्यपूजा
चन्द्रमा(कवाचौथ)
पूर्णमाषी, चौथ
तुलसी, आम्र,बरगद
नीम,महुआ, पीपल
बेर,कदृम्ब, दूब
ऑवला, लॉग
केवड़ा, इलायची
पान, नारियल
सुपाड़ी
गंगा
यमुना
बेतवा
नर्मदा
पहाड़,(पर्वत)
विध्याचल
गोवर्धन
संस्कारो के अन्तर्गत धार्मिक
लोकगीत
जन्म
मुण्डन
कर्णवेध
यज्ञोपवीत
विवाह
मृत्यु
अध्यात्म एवं दर्शन से संम्बन्धित
सगुण
निर्गुण

धार्मिक लोक गीत

बुन्देली लोक ने इस उक्ति को इतने गहरे तक अपने अन्तःस्पल में उतार लिया कि आज भी जाति को कर उनका पूजन किया जाता है देवी शक्ति की यह उपासना वैदिक काल से भी पूर्ण भी प्रचलन में थी ऐसा इतिहासकारों का मत है आदि माता ने पृथ्वी पर जन्म लेकर पृथ्वी को अपना मायका बनाया, किंवदन्ती है कि वर्ष में दो बार आदि शक्ति माँ अपने मायके में नौ दिन के लिये आती है, जिसे नवरात्रि के रूप में अत्यन्त उल्लास के साथ मनाया जाता है। इन नौ दिन में माँ हर घर में विराजमान रहती है। प्रति दिन उनका नये रूप में स्वागत सत्कार किया जाता है। वासन्तिक नव रात्रि में प्रतिपदा से नव (नव सम्बतसर को हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। शारदीय एवं वासन्तिक नवरात्रि में प्रतिपदा को गृह की सफाई तथा गऊ गोबर से लीपकर तथा मिट्टी से पोत कर सफाई की जाती हैं स्त्री पुरूष दोनों ही व्रत धारण करते है मण्डप सजाया जाता है तथा माँ के आगमन की बाट जोही जाती हैं। जिन घरों में जवारे बोये जाते हैं जिसे लोक भाषा में 'बारी' कहते है उनमें कुम्भकार के यहाँ से कुम्भ (घड़े) लाकर उन्हें बीच से तोड़ कर 'खप्पर' का स्वरूप दिया जाता है जिन्हें 'घट' कहते है। इन घटों के ऊपर कॉस तथा मूँज की सहायता से इड़ली बनाकर लगायी जाती है। ताकि उनका व्यास और अधिक हो जाय। सांय काल स्त्री पुरूष, सज धज कर मिटटी लेने जाते हैं। कोकिल कन्ठा स्त्रियां गा उठती है।

"सांझ समय मैया चलो है भवँरवा, मालिन चली आधी रात हो माय"।

मिट्टी को घड़ो में भर कर गणेश कलश स्थापित किया जाता हैं तथा देवी को प्रतिमा या चित्र को स्थापित किया जाता है वैदिक मंत्रों के साथ देवी की प्राण प्रतिष्ठा की जाती है तथा घटों में जौ बोये जाते हैं जिन्हे जवारे कहा जाता है। इसका एक कारण यही भी हो सकता है कि बुन्देली लोक में मुख्यतः दो ही फसलें पैदा की जाती है रबी और खरीफ। जवारे बोना बीज का प्रमाणीकरण करना इसकी वैज्ञानिकता हो सकती है। इन नौ दिनों में घर की शुद्धता पवित्रता पर अधिक ध्यान रखा जाता है देवी मण्डप में नौ दिन तक लगातार दीप प्रचलित रहता है सुबह शाम, पूजा आरती, भोग लगाया जाता है तथा बैरागढ़ की देवी अचरी गाई जाती है [1]। रात्रि जागरण किया जाता है

1—बैरागढ़ की देवी शारदा हो मँाय

जागरण के अन्त में भोर समय पर लांगुरियॉ गाई जाती है जिन्हे आज कल देवी की भेंट भी कहा जाता है यथा "ऐसो वान चलो लंका में सनाका छाय गयो लॉंगुरिया"। प्राचीन काल से ही देवी की यह उपसना सम्पूर्ण भारत में प्रचलित रही हैं। जिसका प्रमाण भारत के कोने –2 में शक्ति पीठ शक्ति स्थलों का स्थापित होना है– बुन्देली लोक में देवी के शास्त्र सम्मत नौ रूपों को अनेकों नाम से जाना जाता है। लोकीकृत रूप तथा नाम से यह सिद्ध होता है। कि बुंन्देली लोक में जन–जन के मन में देवी के प्रति कितनी श्रृद्धा और विश्वास है। पंचमी को देवी मण्डप की यह झांकी दर्शनार्थ खोली जाती है नारियल की बलि चढ़ा कर बतासा, गरी का प्रसाद बॉंटा जाता है। इन अचरियें में भजन की अचरी

"झूला झुलन राधा चली हो मॉय" झूला की अचरी

गाथा की अचरी "अलिन गलिन मैया डोले जगतारिन" अथवा "दिन की ऊँअन" "गंग जमुन की बलुई रेत में", इत्यादि गायी जाती हैं। नौमी वाले दिन समस्त घटों को जिनमें जवारे बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते है उन्हें और अधिक सुसज्जित करने के लिए फूलों के हार घट के चारों पहनाये जाते हैं। स्त्रियों उन्हें सिर पर रख कर देवी मंदिर जाती है। पुरूष बच्चे गाजे बाजे के साथ जुलूस की शक्ल में सम्मिलित होते है तथा भगत "केवल राम सुमिर लेओ मन मोर अजान" बीरोठ "देव देव अटक नदी बैरिन भई" उमाहे "बिन डोरा बन सूज मलिन गजरा गुह लइयो रे" गाये जाते है। इनके गायन से भक्ति मय वातावरण बनता है।

बीरोठ तथा उमाहे की लय अत्यन्त द्रुत होती है उनके गायन से वीर रस की उत्पत्ति होती हैं। धमनियों में लहू का संचार बढ़ जाता है। अत्यधिक जोश बढ़ने के कारण भगत या पन्डा या अन्य कोई व्यक्ति जिसके ऊपर माँ की कृपा होती है। उसे दैवीय शक्ति आती है नवयुवक अपने गाल में लोहे की सांग छेद लेते है देवी की शक्ति के कारण ना घाव होता हैं और ना ही रक्त की एक बूँद निकलती है। जवारे जिन्हें "दिवाला' भी कहा ज़ाता हैं। इन जवारों को मनौती मन्नत मानने के कारण उसी देवी के मंदिर को जाये जाते है। जहाँ मनौती मानी जाती है मंदिर दूर होने पर श्रम की अधिकता होने के कारण रास्ते में गाये जाने देवी गीत को जिसे 'लहचारी' कहा जाता है। जिसकी स्थाई गाकर अन्तरे थोड़ी –2 दूर चलने के बाद गाये जाते है। यथा "अरे कहूं देखी कथरी माय मूरती अजब बनी"। इस प्रकार मंदिर में पहुँच देवी माँ को जवारे समर्पित कर दिये जाते हैं। भक्तों को प्रसाद वितरित कर उन्हें

वही मंदिर प्रांगण में भोजन कराया जाता है तथा साथ ही विनती की जाती है "कि मैया समय परैं चली आइयो हो मॉय" मान्यता इस प्रकार भी है अदि माता भवानी ही है जिन्होने सर्व प्रथम कोख से बालक को जन्म देकर इस सृष्टि को रचने का मार्ग प्रतिपादित किया किन्तु राजा हिमांचल के यहाँ पार्वती के रूप में जन्म लेने के कारण समस्त भारत वर्ष माँ का मायका माना जाता है। तथा कैलाश पर्वत पर ससुराल।

प्रतिवर्ष हर छः माह पर माँ नौ दिन के लिये अपने मायके पधारती है। 'पाहुने मोरें आई भवानी मइया नौ दुर्गा महारानी हो मांय'। नौ दिनों में प्रत्येक दिन मॉ का नवीन श्रृंगार किया जाता है प्रति–दिन अलग अलग प्रकार के व्यॅंजनों से भोग लगाया जाता है। नौ रूपों में नौ नामों से उनकी पूजा की जाती हैं। प्रथम दिन प्रति पदा को उन्हे सादर अगवानी के साथ प्रत्येक घर लाया जाता है तथा नवें दिन पुनः गाजे बाजे के साथ विदा की जाती हैं। तथा साथ ही यह विनती की जाती है कि "मैया समय परै चली आइयें हो मॉय"।

देवी देवताओं से सम्बन्धित धार्मिक लोकगीत

"ॐ सती साध्वी मव प्रीता भवानी मवमोचनी आर्या, दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूल धारिणी" के क्रम में भगवान शिव ने स्वयं आदि माता के 108 नाम बताये है। "यथोनाम तथो गुणाः के अनुसार उनके रूप तथा कर्म भिन्न हैं किन्तु लोक ने उन मातृ रूपों को लोक भाषा के नामों से पुकार कर अपनाया यथा, हुल्की माता, मंसिल माता, कथरी माता, बलखण्डी माता, अछल माता, दलिद्रा देवी कहने के बजाय खों–खों माता कहने में शायद लोक वासियों अधिक अपनत्व लगा होगा। बुन्देली लोक में अत्यधिक प्रेम तथा आदर भाव होने के कारण वैष्णव शाक्त, शैव, बौद्ध, जैन, यहाँ तक कि इस्लाम धर्म के सूफी सन्तों की अच्छी बातों को अपनाया उनका आदर दिया, यही कारण है बुन्देलखण्ड में सभी धर्मो के अनुयायी परस्पर प्रेम और सौहाद्र के साथ रहते है। तथा एक दूसरे मत का आदर करते है तथा धार्मिक कार्यो में सहायता करते हैं। तेतीस करोड़ देवताओं की अवधारणा को मानते हुये बुन्देली लोक में भगवान विष्णु आदि, देव , महादेव, प्रथम पूज्य विघ्न विनाशक श्री गणेश आदि माता जगत जननी माँ की विभिन्न रूपों में विभिन्न त्यौहारों में पूजा की जाती है। जिनमें या पौराणिक कथा या लोक कथा अथवा लोक गीतों के द्वारा पूजन अर्चन किया जाता है।

प्रकृति एवं प्राकृतिक वस्तुओं से सम्बधित धार्मिक लोकगीत

"या देवी सर्व भूतेषू प्रकृति रूपेण संस्थिता

"नमस्तयै नमस्तयै नमस्तयै नमो नमः" "ऋग्वेद" में प्रकृति स्वयं ही माँ आदि देवी है। श्रीमद्भागवत गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुये कहा है। वृक्षों में मैं स्वयं पीपल का वृक्ष हूँ। इसी धारणा से लोक कण-2 में भगवान की उपस्थित मानता है। प्रकृति में जो कुछ हम देखते है सुनते अनुभव करते है वह स्वयं ईश्वर हैं आदि माता है वह पूज्य हैं, वही दूसरी ओर जो वस्तु मानव को जीवन प्रदान करती है। मानव जीवन को स्वस्थ रखते हुये सुचारू रूप से जीवन यापन करने में सहायता प्रदान करती हैं वह पूज्य है, वायु, जल, पर्वत, पर्वत, नदी, पीपल, नीम, महुआ, नीबू, ऑवला अन्य औषधीय वनस्पतियॉ, जो चन्द्र सूर्य, पृथ्वी के बिना मानव जीवन की कल्पना ही निराधार है। तुलसी विष्णु प्रिया हैं पीपल नीम सदैव ही आक्सीजन का उत्सर्जन कर मनुष्य को शुद्ध वायु का सेवन कराते है। पीपल, खैर, आक, दूब, कुश, पलास, लटजीरा, शमी, ऊमर ये नवग्रहों के प्रिय है अभिप्राय यह है प्रकृति में जो भी है। वह कहीं ना कहीं किसी ना किसी रूप में मानव का कल्याण करती है चाहे वह पशु पक्षी वृक्ष, औषधीय, वनस्पतियॉ, फलदार वृक्ष, यहाँ तक कि विषधर भी कहीं ना ही मानव के कल्याण कारक हैं मदार धतूरा भी औषधीय गुणों के होने के कारण मानव के कल्याण कारी है।

संस्कार सम्बन्धी धार्मिक लोकगीत

भारतीय लोक संस्कृति धार्मिक संस्कृति है। सम्पूर्ण भारत वर्ष में व्याप्त संस्कृति धर्म से ओत-प्रोत है। विभिन्न अचंलों की संस्कृति में भाषा या क्रिया कलाप में थोड़ा अन्तर हो सकता है किन्तु उसका अन्तर्भाव एक सा ही है। बुन्देली लोक संस्कृति पर तो धर्म का रंग बहुत गहरा चढ़ा हुआ है। बुन्देली लोक संस्कृति में पग-पग पर हर क्रिया कलाप में धर्म के दर्शन होते है, वैज्ञानिकता, मर्म, रहस्य को समझाने के बजाय धर्म से जोड़ दिया गया है। अंग्रेजी राज्य में नमक का अपव्यय रोकने के लिए धर्म से इस प्रकार जोड़ दिया गया है 'नमक फैलाने वाले को वही नमक अपने पलकों से उठाना पड़ता है। ऐसी धार्मिकता का पालन करने वाली संस्कृति में "सीया राम मय सब जग जानी" चरितार्थ होती है बुन्देली लोक में हर जन्म लेने वाले बच्चों में राम या कृष्ण की ही झलक देखी जाती है। हर प्रसविनी स्त्री कौशल्या या यशोदा हो जाती है स्वाभाविक ही है कि बच्चे के पिता को दशरथ या नन्द बाबा कहना अनुचित नहीं होगा ।

पर्व, उत्सव त्योहार से सम्बधित लोक गीत

लोक पर्व एवं त्यौहार लोक मानव को सदैव प्रेरित करते है। मरू भूमि के शुष्क और उदास बातावरण में जैसे कोई नखलिस्तान सुखद और शान्ति दायी होता है ठीक उसी प्रकार से लोक पर्व, लोक त्यौहार उल्लास का सन्देश लेकर इस बुन्देलीबसुन्धरा को अभिंसिचित ही नहीं करते, चेतनता को नवीन उच्छवास से परिप्लावित भी करते है इनमें जहाँ अतीत का स्वर्णिम एवं भव्य झाँको प्रतिबिम्बित होती है वहीं साथ ही साथ ये आधुनिकता से भी जुड़े रहते है इनमें समाज के समवेत स्वर अंकित होते है। यही कारण है कि लोक मानस में ये पर्व एवं त्यौहार ऐसे रच वस गये है जैसे दूध में पानी अथवा शीतल पेय में माधुर्य।

ये हमारी संस्कृतिक धरोहर है। उनमें भूत वर्तमान और भविष्य के स्वर श्रवणगोचर होते हैं। इनकी शीतल और सुखदाइ धारा में अवगाहन करके मनुष्य को एक अभिनय प्रेरणा और अखण्ड शान्ति का अनुभव होता है। बुन्देली जन जीवन में रची–बसी संस्कृति का दर्शन हमें यहाँ पर मनाये जाने वाले विभिन्न उत्सवों एवं त्यौहारों में सम्मिलित होने पर भली–भाँति हो जाता है। वैसे तो सम्पूर्ण देश, देश धर्म से अनुप्राणित है परन्तु बुन्देलखण्ड विशेष में भौगोलिक तथा सामाजिक स्थितियों के कारण इन उत्सवों तथा पर्वे के विधान में भिन्नता आ जाती है।इन्ही स्थितियों के वशीभूत होकर अति उल्लास एवं हर्ष में कुछ नवीन आयोजनों का भी निरूपण अंचल विशेष में हो जाता है वस्तुतः यहाँ के अधिकतर पर्व कृषि पर आधारित है, परन्तु फिर भी कुछ उत्सव समाजपरक है। इस समाज परक उत्सवों से समाज की कटुता समाप्त होती है। तथा स्नेह व उमंग की सरिता प्रवाहित होती है।

इस बुन्देली भूमि ने नारी को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर सदैव उससे प्रेरणा ली है। यहाँ की परिपाटी हजारों वर्षो से यहाँ के जन–जीवन में चली आ रही है। इस परिपाटी की झिल मिलाती रश्मियों ने समूचे देश को आलोकित किया है और यही कारण हैं कि मनु जैसे विचार 'दृष्टा' ने समाज हित मे "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते 'तत्र देवता" लिखने का सबल सचेष्ट प्रयास कर समाज को एक दिशा का बोध कराया है बुन्देली जन –जीवन प्रचिलित उत्सवों एवं पर्वो पर एक विहंगम दृष्टि इस प्रकार है।

भजन की अचरी

बैरागढ़ की देवी शारदा हो मॉंय

अरे काय चढ़ आवें हरदौल रे, माई बैरागढ़................

रथ चढ़ आवे देवी शारदा हो मॉंय

अरे काय चढ़ आवें हरदौल रे, माई बैरागढ़................

रथ चढ़ आवे देवी शारदा हो रे, माई बैरागढ़................

घुरूवा लला हरदौल रे माई बैरागढ़................

कहाँ विराजै देवी शारदा हो मॉंय

कहॉ विराजे हरदौल रे, माई बैरागढ़................

मड़ में विराजे देवी शारदा हो मॉंय

मड़ पिछवारे हरदौल रे, माई बैरागढ़................

काहा चढ़ावे देवी शारदा हो मॉय

काहा चढावे हरदौल रे, माई बैरागढ़................

ध्वजा नारियल देवी शारदा हो मॉय

वीरा बताशा हरदौल रे, माई बैरागढ़................

काहा जो देवे देवी शारदा हो मॉय

काहा जो देवे हरदौल रे, माई बैरागढ़................

दूध पूत देवी शारदा हो माय

कष्ट हरत हरदौल रे, माई बैरागढ़................

सुमिर सुमिर मैया तेरे गुन गा लिये

नुहर छुये दौउ पॉय रे, माई बैरागढ़

ताल कहरवा ठेका दुगुन में(चार स्वर)

स्वर लिपि

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में (चार स्वर) – सा, रे, गम– सभी शुद्ध

स	रे रे	रे	गम	रे –	रे	सा	सा	–	ग	–	म	रे	ग	रे	–
वै	SS	रा	SS	गढ़	की	दे	वी	S	शा	S	र	दा	S	हो	S
सा	–	सा	सा	म –	म	म	म	म	म	म	प	म	ग	–	–
मा	य	मै	या	ओर	छा	के	ल	ला	S	ह	र	S	दौ	S	ल
रे	गा	सा	सा												
रे	हो	मै	या												
X				0				X				0			

सभी अन्तरे स्थाई की ही भाँति इसी प्रकार गाये जायेंगे।

गाथा की अचरी

दिन की उंअन कडन की बेरा सुरहिन चरन बन जाय हो मॉय

एक बन चाली मइया दुज बन चाली,	तिज बन आन पलानी हो मॉय
अरे कजरी बन मइया चनन के बिरछा	सुरहन ने मौं डारे हो मॉय
चरन ना पाई चारऊ कनूका	सिहां आन दहाड़े हो मॉय
बहुत दिनन बन चर गई सुरहिन	आज परीं मेरे हाथ हो मॉय
आज की भूल बकस बारे सिघुंला	घरै बछरा नादान हो मॉय।
हाथ फेर बायं दूध पियाय आँऊ	इनई पाउन लौट आऊँ हो मॉय
को सुरहिन तोरी साख भरत हैं।	को जो देत गवाह हो मॉय
चन्दा सूरज मोरी साख भरत है।	वनस्पति दे गवाह हो मॉय
चन्दा सूरज दोऊ ऊयें अथै जयें	वनस्पति सूक जॉय हो मॉय
देवी शारदा साख भरती हैं	लगुंरा देत गवाह हो मॉय

एक वन लौटी मइया दूज वन लौटी तिज वन आन रभांनी हो मॉय
आजा मेरे बछुला पीले मेरो दुदुआ सिंहा वचन हार आई हो मॉय
हारे दूध हम न पिये माता चले तुम्हारे साथ हो मॉय
उछल कूद आगे भय बछड़ा पाछे से सुरन गाय हो मॉय
ऊँचे चढ़ चढ़ हेरे बारे सिघुला सुरंहिन अबउ न आयी हो मॉय
सत्य की सॉची सुरहिन गइया एक गई दो आई हो मॉय
पहले मोरो मामा मोय भख लिइयो पाछे से मार हमारी हो मॅाय
को जो भनैजा तोय सुध बुध दीन्ही को जो लगो गुरू कान हो मॉय
देवी शारदा सुध बुध दीन्ही लगुंरा लगे गुरू कान हो मॉय
धरम के रूप तुम राखे भनेजा मूरत धरम की होओ हो मॉय
सो गऊ आंगे सौ गऊ पाछें होइओ बगर के सांड हो मॉय
चरवै को कजरी वन दीन्हो पियो जमुन जल नीर हो मॉय
सुमिर सुमिर मैया तोरे गुन गाऊ बारे पे हो जाओ दयाल हो मॉय

ताल कहरवा ठेका दुगुन में

ऩि सा, रे, ग, म, प, (छह स्वर–सभी शुद्ध)

[ग]म	म	म	[ग]म	गप	पम	[ग]प	म	[म]ग	[म]ग	[म]ग	ग	रेग	मग	रे	सा
दि	न	की	S	उS	अS	न	क	र	न	की	S	बेS	SS	रा	S
[ऩि]स	रे	रे	ग	[रे]ग	ग	रे	स	[रे]ग	–	रे	–	[ऩि]सा	–	सा	ऩि
सु	र	हि	न	व	न	खों	S	जा	य	हो	S	मां	य	मै	या
[ऩि]स	रे	रे	ग	ग	ग	रे	स	ग	–	रे	–	सा	–	–	सा
सु	र	हि	न	व	न	खों	S	जा	य	हो	S	मा	S	S	य
X				0				X				0			

सभी अन्तरे स्थाई की भॉति गाये जायेंगें

झूला की अचरी

गंग जमुन की बलुई रेत में   धल गये नवल हिंडोला ही मॉय
काये की रे मैया चारऊ पलकियॉ   काये अजगर खम्व हो मॉय
अंदन चंदन की मैया चारऊ पलकियॉ   मलया गिरि दोऊ खम्ब हो मॉय
की जो झूले मैया का जो झुलावे   को जो मिचकी लगाबे हो मॉय
देवी झूलें बारे लंगुरा झुलावें   हनुमत मिचकी लगाबें हो मॅाय
पैली मिचकिया दई बीरा हनुमतः   झूला गये सन्नाय हो मांय
दूजी मिचकिया दई बीरा हनुमत   झूला रहे आकाश हो मांय
चौथी मिचकिया दइ बीरा हनुमतः   झूला रहे पाताल हो मॅाय
पाचई मिचकिया दइ बीरा हनुमत   हटन गये अचगर खम्ब हो मॉय
छठई मिचकिया दइ बीरा हनुमत   टूटे गज मौतिंन हार हो मॉय
हार टूट गये रन बन हो गये   को जो बिनाउन हाऱ हो मॉय
चौसंठ योगिनी मैया हुकुम बजाती   वेई बिनावन हार हो मॉय
बीन बान मैया थार भरा लये   चलो पटवा की दुकान हो मॅाय
अलिनगलिन मैंया डोले जगतारिन   कहॉ पटवा की दुकान हो मॉय
ऊॅची अटरिया लागी किवरियॉ   बाई पटवा की दुकान हो मॉय
आउत जौ देखो मैया देवी जगतारन   पटवा तो भागौ जाय हो मॉय
तुम जिन डराओं पटवा के बालक   हार पुआउन आई हो मॉय

ताल कहरवा ठेका दुगुन में (नी, सा, रे ग॒, ग पांच स्वर–)

सासा सरे सासा सास	सासा सारे सासा सऽ	ग ग ग ग रे रे सासा	–रे –स नी –
गंगा ऽज मुन की ऽ	बलु ईरे ऽत मेंऽ	घल गये नव लहि	डोला होऽ मां ऽ

अन्तरा

रे – रे स रे ग ग–	रे रे रे सा सा सा स–	सरे –ग रे – सा –	– रे –सा [स]नी सा
काऽ हेऽ कीऽ तोरी	चार उप लाकिं यां	काऽ हे के अज गर	ऽख म्ब हो मां
X	0	X	0

शेष अन्तरें इसी प्रकार गायें जायेंगें

हो मैया समय परे चली आइयो हो मांय

कौना ने बोये रस केबरा हो माय

मैया कोना ने लाल अनार रे हो मैयां

अग्गिम से पुरवइया, पश्छिम कारी है बदरिया

नीचे वह रई गंगा मैया, वहॉ पे बैठी काली मैंया,

मैया समय परे चली आइयों हो मांय

कौना ने बोये रस केवरा हो मांय

कौना ने लाल अनार रे हो मैया

अग्गिम से पुरवैया, पच्छिम दाई हो बदरिया

नीचे वह रई गंगा मैया, वहॉ पे बैठी काली मैंया,

मैया समय परे चली आइयों हो मांय

कौना ने गोड़े रस केवरा रे हो मॉय

कौना ने लाल अनार रे हो मैया

अग्गिम से पुरवैया, पच्छिम दाई हो बदरिया

नीचे वह रई गंगा मैया, वहॉ पे बैठी काली मैंया,

मैया समय परे चली आइयों हो मांय

राजा ने गोड़े रस केवरा हो माय

रानी ने लाल अनार रे हो मैया

अग्गिम से पुरवैया, पच्छिम दाई हो बंदरिया

नीचे वह रई गंगा मैया, वहॉ पे बैठी काली मैंया,

मैया समय परे चली आइयों हो मांय

कौना में सीचें रस केवरा हो माय

कौना ने लाल अनार रे हो मैया

अग्गिम से पुरवैया, पच्छिम दाई हो बदरिया

नीचे वह रई गंगा मैया, वहॉ पे बैठी काली मैंया,

मैया समय परे चली आइयों हो मांय

राजा ने सीचें रस केवरा हो माय

रानी ने लाल अनार रे हो मॉय

कै फल फूले रस केवरा

कै फल अनार रे हो मैया

अग्गिम से पुरवैया, पच्छिम दाई हो बदरिया

नीचे वह रई गंगा मैया, वहॉ पे बैठी काली मैंया,

मैया समय परे चली आइयों हो मांय

नौ फल फूले रस केवरा मांय

दस फल लाल अनार रे हो मैया

आनाम से पुखैया, पचिछम दाई हो बदरिया

नीचे वह रई गंगा मैया, वहॉ पे बैठी काल मैंया,

मैया समय परे चली आइयों हो मांय

कौना चढ़ा दये रस केवरा हो मांय

कौना को लाल अनार रे हो मैया

अग्गम से पुरवैया, पचिछम छाई हो बदरिया

नीचे वह रई गंगा मैया, वहॉ पे बैठी काली मैंया,

मैया समय परे चली आइयों हो मांय

देवी कों चढ़ा दये रस केवरा हो मांय

लंगुरा को लाल अनार रे हो मैया

अग्गम से पुरवैया, पचिछम छाई हो बदरिया

नीचे वह रई गंगा मैया, वहॉ पे बैठी काली मैंया,

मैया समय परे चली आइयों हो मांय

ताल कहरवा (ठेका दुगुन में)

सा, रे, ग, म (चार स्वर सभी स्वर शुद्ध)

रे	रे	रे	ग	रे	सा	रे	म	–	ग	–	–	रे	ग	रे	–
स	म	य	प	रैं	s	च	ली	s	आ	s	s	ई	यो	s हो	s
सा	–	–	–												
मॉ	s	मै	या												
X				0				X				0			

अन्तरा

सा	रे	रे	ग	रे	स	रे	म	–	ग	–	रे	ग	–	रे	–
कौ	s	ना	ने	बो	ये	र	स	s	के	s	व	रा	s	हो	s
सा	–	–	–	सारे	रग	रे	गा–	रे	रे	सा–	सा–	सा	रे	–	ग
रे	s	मै	या	अंग	गम	से	पुर	बै	या	पछ	छम	का	री	है	ब
ग–	रे	रे	सा	सा–	रे–	रे	ग–	ग	रे	रे	सा–	सा	रे	रे	ग
दरि	या	नैं	चे	बह	रई	गं	गा	मै	या	उ	पर	बै	ठी	का	ली
ग	रे	रे	रे	रे	रे	रे	ग	रे	सा	रे	म	–	ग	–	रे
मै	या	मै	या	स	म	य	य	रै	s	च	ली	s	आ	s	ई
ग	–	रे	–	सा	–	–	–								
यो	s	हो	s	मां	s	s	s								

शेष अन्तरे इसी भांति गाये जायेगें

X	0	X	0

जवारे की मिट्टी लेने जाते समय ताल कहरवा ठेका दुगुन में (राग तिलक कामोद की छाया)

संजा बेरा मइया चलो हें भंवरवा — मालिन चली आधी रात हो मांय

काये खों भौरां सरी संजा चलो हैं। — काये मालिनियाँ आधी रात हा मांय

नन्दन वन मैया फूली फुल बगिया — पहुचँत लागत भारी देर हो मांय

कहाँ मालिनियॉ तैने रात बितायी — कहाँ रहे तेंरे बास हो मांय

फुलवा बिनत बीती आधी रतियाँ — माई के भुंवन मोरें बास हो मांय

बासे फूल जिन लइयों री मालिन भुवन धरत कुम्हलाय हो माय

नौनें फूल ले अइयों री मालिन चरन धरत महकाय हो माय

ताल कहरवा (ठेका दुगुन में)तिलक कामोद की छाया (सा, रे, ग, म, प ध, सात स्वर–सभी शुद्ध)

–	प	प	म	पध	धप	म	–	ग	रे	म	म	ग	रेग	सा	–
s	सं	जा	वे	ss	राs	मै	या	च	लो	है	भं	व	रs	वा	s
–	सारे	रे	रे	सारे	रेसा	रेग	ग	रे–	–ग	रे	–	सा	–	–	–
s	माs	लिन	च	ली	ss	आs	धी	राs	sत	हो	s	मां	s	s	s
X				0				X				0			

अन्तरा

–	प्सां	सां	सां	नि–	–	पध	धम	–	म	प	नि	ध	–	प	–
s	काहे	हे	भं	वर	वा	सs	री s	s	सां	झs	च	लो	s	है	प
–	प	प	प	पध	ध	प	म	ग	रे	म	म	ग	रेग	सा	–
s	का	हे	भं	वर	वा	स	री	–	सां	झ	च	लो	ss	है	s
–	सारे	–रे	सा	–रे	सा	ग	ग	रे	–ग	रे	–	सा	–	–	–
s	काहे	sरे	मा	लिनि	याँ	आ	धी	रा	sत	हो	s	मां	s	s	य
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगें

जवारे ले जाते समय लहचारी

अरे कहूँ देखी, अरे कहूँ देखी' कथरी माय मूरती अजब बनी

मइया के भुवन ऊंची नीची घटियाँ मोपे पाउँन चलो न जाय, मूरती अजब बनी

मइया के भुवन की छिड़ियाँ बहुत है हलाडोल सो आय–

मइया के भुवन में भीर बहुत है मीलो दरसन ना करपावँ, मूरती –

ताल कहरवा ठेका द्रुत लय में (राग बिलाबल की छाया) सा, रे ग, म, प पाँच स्वर – सभी शुद्ध

प	–	–	–	–	–	प	–	म	–	म	–	म	–	म	ग
अ	र	र	र	दे	s	खी	s	अ	रे	क	हूँ	दे	s	खी	s
रे	–	रे	सा	सा	रे	ग	ग	ग	रे	रे	सा	रे	रे	रे	सा
क	थ	री	s	मा	s	य	मू	s	र	ती	s	अ	ज	ब	ब
सा	–	–	–	–	–	–	–								
नी	s	s	s	s	s	s	s								
X				0				X				0			

अन्तरा आलाप द्वारा ताल रहित गाया जायेगा।

प	–	प	–	–	प	ग	–	–	–	–	–	–	–	–	–
मै	आ	के	भु	व	न	में	s	s	s	s	s	s	s	s	s
रे	–	–	–	–	–	–	सा	रे	–	–	सा	सा	–	–प	प
भी	s	s	s	s	र	s	ब	हु	s	त	है	s	s	s	मोपे ❁।
प	–	प	–	प	–	प	म	सा	रे	ग	ग	ग	रे	रे	सा
द	र	स	न	क	रे	s	ना	जा	s	य	मू	s	र	ती	s
रे	रे	रे	सा	सा	–	–	–								
अ	ज	ब	ब	नी	s	s	s								

फूल द्वारा चिन्हित स्थान से ठेका पुनः बजेगा

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें।

लांगुरिया

ऐसो बॉन चलो लंका में, सनाका छा गओ लांगुरिया
रंग महल में राउन बैठो।संग मन्दोदरि नार,
महलन के जब खंब फाट गये तबहि नार घबराय ऐसो
तू तो तिरिया चतुरंगिनी हैं काहे खौं घबराय
मेघनाथ से पुत्र हमारे, कुंभकरन से भाई–ऐसो–
बृह्म लोक से शक्ति आई, रावन जोधा लाओ
मेघनाथ ने धर के तानी, लक्ष्मन ह्रदय समायो ऐसो।

स्थाई ताल कहरवा (ठेका दुगुन में) राग पीलू की छाया (सा, रे , ग,ग,म, प ,ध)

														ग	गरे
														ऐ	सोऽ
सरे	रे–	स	नी	सस	स–	रेग	गग	सरे	रेरे	स	नी	सा	–	–	–
बा	नच	लो	लं	काऽ	मेंस	ऽना	काऽ	छाय	गओ	लांगु	रि	या	–	–	–
म–	रे–	रे	मम	म	मम	मम	मम	म–	ग–	रे	रेरे	स	–	ग	ग
छाय	गओ	लां	गुरि	या	ऽतु	माई	सो	छाय	गओ	ला	गुरि	या	–	ऐ	सो
X				0				X				0			

अन्तरा

नी	नी	नी–	नी–	स	स–	सा	सरे	रेग	ग	रे	रे–	सा	–	सग	रेस
र	गम	हज	ये	रा	उन	बै	ठोऽ	संग	मं	दो	दरि	ना	ऽ	ऽऽ	रऽ
मरे	रेम	म	म–	म	मम	म	म–	पप	ध–	प–	म–	ग	रेस	ग	गरे
मह	लन	के	जब	ख	म्बफा	ऽट	गये	त ब	हीना	ऽर	घब	रा	यऽ	ऐ	सोऽ
X				0				X				0			

जस

तुमरे दरस खों मइया सब दल उमगें	खोलो मठी के किवार हो माय
कै लख उमगें मइयॉ बहम्मन बनियॉ	दस लख उमगें कलार हो माय
का चढ़ आवे मइया बहम्मन बनियॉ	का चढ़ आवे कलार कहो माय
गाड़ी सग्गड़ से बहम्मन बनियॉ	नंगे पाउन कलार हो माय
कहा चढावे जो बहम्मन बनिया	कहा चढ़ावे कलार हो मॉय
ध्वजा नारियल बहम्मन बनिया	रस की धार कलार हो मॉय
काये की लोभिन मइया देवी कालिका	काये को लोभी कलार
देवी को भुवन के देओ परिकम्मा	अटल छत्र जय बोलो हो मॉय

ताल कहरवा ठेका दुगुन में (पॉच स्वर)

सा, रे , ग, म, प –सभी शुद्ध

म	–	–	–	म	मप	प	म	ग	ग	ग	ग	रे	ग	रे	सा
तु	म	रे	द	रस	खॉंऽ	मै	या	स	ब	द	ल	उ	म	गे	ऽ
सा	सार	ग	–	रे	–	सा	सा	रेग	ग	रे	–	सा	–	–	–
खो	लोऽ	ऽ	म	ठी	ऽ	के	कि	बाऽ	र	हो	ऽ	मां	ऽ	ऽ	ऽ
X				0				X				0			

सभी अन्तरे स्थाई की ही भॉति गाये जायेगे।

बीरोठ

देव देव अरक नदी बैरन भई –2

1– देव देव घरर –घरर नदिया बहै–2	है कैसें के उतरों पार बेहनार सिंह, अटक नदी
2– देव देव काहे की नइया बनी–2	हे काहे डार किडवार वेहनार सिंह –अटक नदी
3– देव देव चन्दन की नैया बनी –2	हे अमुवा डार किडवार बेहनार सिंह–अटक नदी
4–देव देव को तेरी नैया बैठियो–2	को हे खेवन हार, बेहनार सिंह –अटक नदी
5– देव देव देवी नैया बैठियो–2	हे लगुंरा खेवनहार बेहनार सिंह –अटक नदी

6– देव देव कौना की –भीगे रंग चनुरी–2 हे कौना की पंचरंग पाग बेहनार सिंह–अटक नदी

7– देव देव देवी की भीगें रंग चुनरी –2लंगुरे की पचरंग पाग बेहनार सिंह –अटक नदी

8–देव–देव कैसे के सूके रंग चुनरी–2 हे कैसे के पचंरेग पाग बेहनार सिंह –अटकनदी

9–देव देव लहरन सूके रंग चुनरी –2 हे लपटन पंचरग पाग बेहनार सिंह –अटक नदी

ताल कहरवा (ठेका दुगुन) राग दुर्गा की झलक (विलावल थाट)

सा, रे, ग, म, चार स्वर –सभी शुद्ध

म	–	म	ग	रे	रे	रे	रे	[ग]रे	–	(रे)	स	सा	–	सा	सा–
दे	व	दे	व	अ	ट	क	न	दी		(वै)	s	र	न	म	ई
X				0				X				0			

अन्तरा

म	–	म	ग	रे	रे	रे	रे	[ग]र	–	(रे)	स	या	–	सा	सा
दे	व	दे	व	घ	र	र	घ	र	र	(न)	दि	या	s	ब	हे
म	–	–	–	म	–	म	म	म	–	म	ग	रे	–	रे	[ग]र
हे	s	s	s	कै	s	से	के	उ	त	रौ	s	पा	र	वे	ह
स	–	ध	–	रे	–	रे	रे	रे	–	रे	स	सा	–	ला	–
ना	रे	सिं	ह	अ	ट	क	न	ही	s	बै	s	र	न	म	ई
X				0				X				0			

सभी अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें।

डॉ0 (श्रीमती वीणा श्रीवास्तव से साभार प्राप्त)

भगत

माई केवल राम सुमिर लेओ मन मोरे अजान

1– बिना पंख को सुअना रे, उड़ जात अगास–2

जहॉ पेड ना पत्ता, जहॉ भूख ना प्यास, माई............

2– अरे आठ काठ को पिजंरा , बामें सुअना अनमोल–2

टंगो कदम की छैयाँ बामें करत–किलोल– माई.........

3– ऊँचे महल को दियना रे, कौने गुलकीन्ह –2

राम लछन की जोड़ी, कौने हर लीन्ह –माई ....

4– अरे ऊँचे महल को दियना रे, भौंरा गुल कीह –2

राम लछन की जोड़ी राउन हर लीन्ह– माई ....

5– किन्ने रची पिरथवी रे दुनियाँ सिनसार–2

किन्ने रचे पांडवा , देवी दरबार माई..............

6– बिरमा रची पिरथवी रे दुनियाँ सिनसार –2

देवी रचे पांडव अपने दरबार –माई ....

7– भौ सागर एक नदिया रे वामे डरी है जहाज

खेवन हार विधाता लग जैहो पार–माई.............

8– सुमर–सुमर मइया तोरे जस गा लंऊ–2

जे बोलो हिंगलाज हो मां ....

ताल कहरवा ठेका दुगुन

(राग मांड पर आधारित)

सा, रे, ग, म, प, पाँच स्वर– सभी शुद्ध

सा	रे	रे	रे	रे	ग	रे	सा	सा	रे	रे	ग	ग	म	ग	रे
के	s	व	ल	रा	s	म	सु	म	र	ले	s	s	s	म	न
रे	ग	रे	सा	सा	–सा	सा	सा								
मो	रे	s	अ	जा	sन	मा	ई								
X				0				X				0			

अन्तरा

												—	—	म	म
														अ	रे
म	—	म	म	—	म	म	—	म	प	प	—	म	—	म	ग
वि	ना	ऽ	पं	ऽ	ख	को	ऽ	सु	अ	ना	ऽ	रे	ऽ	उ	ड
ग	रे	रे	सा	सा	—रे	म	ग	रे	—	सा	सा	सा	रे	रे	ग
जा	ऽ	त	अ	गा	ऽस	उ	ड़	जा	ऽ	त	अ	गा	ऽ	ऽ	स
म	म	—	ग	रे	रे	रे	ग	रे	—	स	—	—	—	सा	सा
ज	हाँ	ऽ	पे	ऽ	ड	न	ऽ	प	ऽ	त्ता	ऽ	ऽ	ऽ	ज	हाँ
रे	गं	रे	सा	रे	—रे	सा	.सा	रे	ग	रे	सा	सा	—सा	सा	सा
भू	ऽ	ख	न	प्या	ऽस	ज	हाँ	भू	ऽ	ख	न	प्या	ऽस	मा	ई
X				0				X				0			

सभी अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें— डॉ0 (श्रीमती) वीणा श्रीवास्तव से साभार प्राप्त

उमाहें

बिन डोरा सूज मलिन गजरा गुह लइयों रे

देवी मइया कों दियों पहराय मनायें दुरगे मन जायें रे

1—बिन डोरा बिन सूज मलिन गजरा गुंथ लइयो रे

भैरव बाबा कों दियो पहराय मनायें बाबा मन जायें रे—

ताल अति द्रुत कहरवा (राग देश की छाया)

प	प	प	म	म	म	म	ग	ग	ग	ग	रे	रे	रे	सा	रे
बि	न	डो	ऽ	ग	ऽ	बि	न	सू	ऽ	ज	म	लि	न	ग	ज
ग	—	म	ग	रे	—	रे	सा	सा	—	—	—	—	—	—	—
रा	ऽ	गु	ह	ल	इ	यो	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0				X				0			

अन्तरा

														सा	ऩि
														दे	वी
सा	रे	रे	रे	रे	ग	म	प	म	ग	रे	रे	म	ग	रे	रे
म	इ	या	दि	यो	ऽ	प	ह	रा	ऽ	य	म	ना	ये	दु	र्गे
म	ग	रे	सानि	सा	–	–	–								
म	न	जा	येऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ								
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी भॉति गाये जायेगें

(देवी देवताओं से सम्बन्धित)

गणेश

पैले तुमखों मनाऊँ गौरी लाला–

हरे–2 गुबरा से अँगन लिपाऊॅ मुंतियन चौक पुरॉऊ, गौरीके

गंगा जल अस्नान कराउॅ, चन्दन तिलक लगाऊँ–गौरी

धूप दीप और भोग आरती, लडुअन भोग लगाऊँ गौरी

ताल दादरा (राग पहाड़ी की छाया)

ध़, सा, रे, ग, म, – सभी शुद्ध

–	–	ग	ग	ग	ग	रे	रे	–	रे	–	रे
ऽ	ऽ	प	ह	ले	ऽ	तु	म	ऽ	को	ऽ	म
सा	–	सा	–	सा	–	रे	–	–	सा	सा	–
ना	ऽ	ऊँ	ऽ	गौ	ऽ	री	के	ऽ	ला	ला	ऽ
X			0			X			0		

अन्तरा

—	—	ध	सा	सा	—	सा	—	रे	म	—	म
		ह	रे	ह	रे	गु	ब	s	रा	सों	s
—	—	म	—	प	—	म	—	ग	—	रे	ग
		अँ	ग	न	लि	पा	s	s	ऊँ	s	s
—	—	ग	ग	ग	ग	—	रे	—	रे	s	रे
		मुं	ति	य	न	चौ	s	s	क	s	पु
सा	—	सा	—	सा	—	रे	—	—	सा	सा	—
रा	s	ऊँ	s	गौ	s	री	के	s	ला	ला	s
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

काली

लट छुटकारें लम्बे केस कलाधारिन लट छुटकारें लम्बे केस हो बाय

सिर मैया तोरे मुकुट विराजे गरे मुण्डन की माल–कलाधारिन

बायें हाथ मैया खप्पर सौहै दायें हाथ तिरसूल– कलाधारिन

कौने मैया तोहे खप्पर दीहो कौना दये तिरसूल –कलाधारिन

बृहमा मैया तोह खप्पर दीहो, शिवशंकर दये तिरसूल –कलाधारिन

काहे कों तोये खप्पर दीहे काये दये तिरसूल –कलाधारिन

रकत बीज खो खप्पर दीन्हे मईषासुर तिरसूल– कलाधारिन

ताल दादरा ठेका दुगुन में (राग पीलू की छाया) (नि, सा, रे, ग , ग,म प) दोनो गांधार शेष शुद्ध

—	—	ग	—	ग	—	ग	—	—	ग	—	रे
s	s	ल	ट	छु	ट	का	रें	s	ल	म्बे	s
सा	—	सा	रे	ग	—	रे	—	सा	—	—	—
के	—	स	क	ला	s	धा	s	s	रि	न	s
—	—	प़	—	नि़	—	सा	—	—	रे	प	—
s	s	ल	ट	छु		का	रे		ल	म्बे	s
ग	—	रे	सा	नी़	—	सा	—	—			
के	—	स	हो	s	री	मां	—	—			

अन्तरा

—	—	प	पप	प	—	प	—	—	प	म	—
—	—	सि	रs	मैं	s	या	s	s	तो	रे	s
—	—	म	म	—	—	म	—	—	ग	—	—
s	s	मु	कु	ट	वि	रा	s	s	जे	s	s
—	—	ग	ग	—	ग	—	—	—	ग	रे	—
s	s	ग	ले	मुं	s	ड़	न	s	की	s	s
सा	—	सा	—	रे	ग	रे	—	सा	—	—	—
मा	s	ल	क	ला	s	घा	s	s	रि	न	s
—	—	प़	—	नि़	—	सा	—	—	रे	प	—
s	s	ल	ट	छु	ट	का	रें	s	ल	म्बे	s
ग	—	रे	स	नि़	—	स	—	—	—	—	—
के	s	स	हो	s	री	मां	s	s	s	s	s
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें।

दुर्गा

बाजॅनू पैजनियां, हो मैया तोरी बॉजनू पैजनियां

कौनां खों ले आओ माई पॉव पैजनिया

कोना खौं लाल उढनियॉ माई तोरी

दुर्गा को लिआव माई पॉव पैजनियॉ .

छतियॅन लाल उढनियॉ, माई तोरी,

ताल कहरवा (ठेका अति द्रुतलय में)

नि़, स, रे, ग, म – सभी शुद्ध

												सा	–	सा	रे
												मै	या	तो	री
नि़	–	–	नि़	सा	रे	रे	–	सा	–	सा	–	सा	–	सा	रे
बा	s	s	ज	नूं	s	पैं	s	ज	नि	याँ		मै	या	तो	री
अन्तरा															
नि़	–	नि़	नि़	सा	–	नि	सा	रे	–	रे	–	सा	–	सा	–
कौ	s	ना	को	लाँ	ऊ	मै	या	पाँ	व	पै	s	ज	नि	याँ	
म	–	म	–	म	–	ग	–	रे	–	ग	–	रे	ग	सा	रे
कौ	s	नाँ	को	ला	s	ल	उ	ढ	नि	यॉ	s	मा	ई	तो	री
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गायें जायेगें।

पार्वती

पार्वती तोरो सैंया मैं दिख आयी, पार्वती तोरो सैंया, हो माय

पाय पदम माथे पे चन्द्रमा, जटा में गंगा लहरइयॉ, मैं दिख

बिच्छू ततैइन के कुण्डल पैरे, गले नाग लपटइयॉ, मैं दिख

अंग भभूत बगल मृगछाला, डमडम डमरू बजैया, मैं दिख,

डूंड़ां बैल की करत सवारी, धमना चडों हैं कनैंया मैं,दिख,

अस्सी बरस के भोले बाबा, पार्वती लरकैंया– मैं दिख–

ताल कहरवा ठेका दुगुन में (राग पीलू की छाया) सा, रे, ग, म, प, ध–सभी स्वर शुद्ध

–	–	ग	–	ग	ग	ग	म	ग	ग	गरे	रे
s	s	पा	s	र	व	ती	s	s	ते	रोs	s
स	–	रे	सा	रे	–	ग	–	रे	सा	सा	–
सैं	s	याँ	s	मैं	s	दे	s	ख	आ	s	ई
–	–	ग	–	ग	रे	सा	–	सा	–	रे	–
s	s	पा	s	र	व	ती	s	s	ते	रो	s
ग	–	रे	–	सा	सा						
सैं	s	याँ	s	हो	मॉ						
X			0			X			0		

अन्तरा

–	–	प	–	– –	प प	प	–	–	धप	प	म
s	s	वि	s	च्छू	तs	तैं	s	य	नs	के	s
म	–	–	म	म	म	म	–	–	प	म	ग
–	–	कुं	s	ड	ल	पै	s	s	रें	s	s
–	–	ग	–	–	ग	ग	ग	ग	ग	ग	–
s	s	ग	ले	s	ना	s	ग		ल	प	s
ग	रे	–	सा	सा	–	रे	ग	रे	सा	सा	–
टैं	s	याँ	s	मै	s	दे	s	ख	आ	s	ई
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे

सीता

सीता असोक वन मे बैठीं हैरें रामचन्द्र की

रामचन्द्र की वाट, हैरें रामचन्द्र की बात

1— लडडू लै मन्दोदरि आई, सीता जू के पास,

उठो जानकी भोजन कर लेओ, करो लंक पे राज,—सेवा

2— ना मेरी माता भोजन करहैं ना करें लंक पे राज

या मेरी मैया हेई मर जेंहैं या जेंहें राम के पास—सीता

3— तुम तो बेटी सत्य की सॉची, एक पुरूष की नार

जब हर ल्याये पति हमारे, काये न दे दओ सराप—सीता

4— राउन लागे पिता हमारो, मन्दोदरि मेरी माय

लंकपुरी मायको अरे कौन को देती श्राप—सीता

5— कैंसे राउन पिता तुम्हारो, मन्दोदरि कैसे माय

लंकपुरी कैसे मायको अरे जाको भेद बताव — सीता

6— सब रिसियॅन ने यज्ञ करो तो मिदरी बनी एक नार

धोउत लंगोटी गर्भ भये तो याद करो मेरी माय

7— राउन के गरजे से गरभ खिसक गये, घट दीन्हे भरवाय

राजा जनक बाग में अरे घट दीन्हों गड़वाय

8— राजा जनक ने पाली पोसी पढ़ा लिखा हुसयार

अवधपरुी मेरो सासुरो और राम चन्द्र भरतार

ताल कहरवा ठेका दुगुन में (राग पीलू की छाया) नि़, सा, रे, ग, म, प, ध नि–सभी स्वर शुद्ध

												रे	म	म	ग
												सी	ऽ	ता	ऽ
रे	ग	—	(रे)स	रे	—	सा	नि़	सा	—	सा	—	रे	म	म	ग
अ	सो	ऽ	क	व	न	में	.ऽ	बै	ऽ	ठी	ऽ	हे	ऽ	रें	ऽ
रे	—	रे	ग	ऽ	रे	सा	नि़	सा	—	—	सा	रे	म	म	ग
रा	ऽ	म	चं	ऽ	द्र	की	ऽ	बा	ऽ	ऽ	ट	सी	ऽ	ता	ऽ
X				0				X				0			

अन्तरा

सा	रे	रे	—	रे	—	सा	नि़	सा	रे	—	—	रे	—	रे	सा
ल	ऽ	ह	ऽ	ले	ऽ	मं	ऽ	दो	ऽ	द	रि	अ	ऽ	यीं	ऽ
म	—	म	—	रे	—	सा	नि़	सा	—	—	—	—	—	—	—
सी	ऽ	ता	ऽ	जू	ऽ	के	ऽ	पा	ऽ	ऽ	स	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
म	—	म	—	म	—	ग	.म	प	—	—	—	प	ध	नि	ध
उ	ठो	ऽ	जा	ऽ	न	की	ऽ	भो	ऽ	ज	न	क	र	ले	ओ
प	—	प	प	ध	प	म	ग	रे	—	—	—	(रे)प	ऽ	म	ग
क	रो	ऽ	लं	ऽ	क	पे	ऽ	रा	ऽ	ऽ	ज	सी	ऽ	ता	ऽ
X				0				X				0			

राधा जू

झूला झुलन राधा चली हो माय मन मोहन के साथ रे।। झूला

काये के पलना बने हो माय काये की जोती चार रे।। झूला

चन्दन के पलना बने हैं हो माय रेशम जोती चार रे ।। झूला

को जो झूले को जो झुलावे कहा करे गोपी ग्वाल रे।। झूला

राधा जू झूले श्री कृष्णा झुलावें मिचकी लगावें गोपी ग्वाल रे।। झूला

ताल कहरवा ठेका दुगुन में (राग पहाड़ी की छाया)

सा, रे, ग, म, प –सभी स्वर शुद्ध

स	–सरे	ग	–	रे	रे	सा	–	–	सारे	–	रे	सारे	रे	स	–
झू	लाऽ	ऽ	झू	ल	न	रा	ऽ	ऽ	धाऽ	ऽ	च	लीऽ	ऽ	हो	ऽ
सा	–	–	–	–	–	म	म	म	–	म	म	म	म	म	म
मां	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ब	म	न	मो	ऽ	ह	न	के	ऽ
–	ग	–	ग	रे	–	सा	–								
ऽ	सा	ऽ	थ	रे	ऽ	अ	ब								
X				0				X				0			

अन्तरा

सारे	रेसा	रेग	ग	रे	–	सा	–	–	रे	–	सा	सारे	रे	सा	–
का	ऽऽ	हेऽ	ऽऽ	के	ऽ	प	ल	ऽ	ना	ऽ	ब	नेऽ	ऽ	हो	ऽ
सा	–	–	–	–	–	म	म	म	–	म	म	म	म	म	प
मां	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ब	का	ऽ	हे	की	जो	ऽ	ती	ऽ
–	ग	–	ग	रे	–	सा	–								
ऽ	चा	ऽ	र	रे	ऽ	अ	ब								
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये गायेगें

श्री राम

छोटे–2 पाऊँन सोने की खड़ाँऊ चलत माधुरी चाल निगन कहूँ देखी री माई,

पीताम्बर को कछनी काछें लटकत फेंटा लाल लहर कहूँ देखी री माई

भर–भर नैनन सुरमा सौहे, भोंहन चढ़ी कमान हेरन कहूँ देखी री माई

मुख भर चाबें पानन को बीरा ओठन चुअत पराग हँसन कहूँ देखी री माई

क्रीट मुकुट मकराकृत कुण्डल लयें धनुष और बान चमक कहूँ देखी री माई

ताल कहरवा ठेका दुगुन में (पीलू की छाया) ध़, नि, सा, रे, ग

प	म	रे	सा	नि़	–	सा	सा	सा	रे	सा	नि	सा	रे	–	–
छो	टे	छो	टे	पॉ	s	ऊं	न	सो	ने	की	रव	ड़ा	s	ऊ	s
रे	ग	–	–	रे	ग	रे	ग	नि़सा	रे	सा	नि़	सा	रे	रे	रे
च	ल	त	या	s	धु	री	s	चाs	s	ल	नि	ग	न	क	हूँ
ध़	रे	रे	–	ग	रे	सा	नि़	सा	–	–	म	ग	रे	सा	नि़
दे	s	खी	s	री	s	मा	s	ई	s	s	नि	ग	न	क	हूँ
ध	रे	–	–	ग	रे	सा	नि़	सा	–	–	–	–	–	–	–
दे	s	खी	s	री	s	मा	s	ई	s	s	s	s	s	s	s
X				0				X				0			

अन्तरे स्थाई की भॉति गाये जायेगे

श्री कृष्ण

फन पर बीन बजैया, काले नाग के नाथैय्या,

काये की तोरी गेंद बनी हैं कोजू हैं खिलवैया

लत्ता की तोरी गेंद बनी है, नन्द के लाल खिलैया

दौरे–2 मौड़ा पहुँचे, काँ गई जसुदा मैया

तेरौ लाल गिरो जमुना में, जाको नाम कन्हैया

ताल कहरवा ठेका दुगुन में

पॉच स्वर दोनों गान्धार (नि़, सा, रे, ग, म, प)

												सा	–	नि़	सा
												का	s	ले	s
रे	ग	रे	सा	रे	म	म	–	ग	रे	रे	–	–	–	–	–
नां	s	s	ग	के	s	ना	s	थै	s	था	s	s	s	s	s
म	–	म	म	म	–	म	ग	रे	ग	ग	–	रे	–	सा	–
फ	न	पे	s	बी	s	न	ब	जै	s	या	s	का	s	ले	s
X				0				X				0			

अन्तरा

म	–	म	म	ग	–	रे	ग	म	प	प	प	म	ग	रे	रे
का	s	हे	s	को	s	तो	री	में	s	द	ब	नी	s	है	s
म	–	म	म	म	–	म	.ग	रे	ग	ग	–	रे	s	सा	s
को	s	ना	के	ला	s	ल	खि	लै	s	या	s	का	s	ले	s
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

शंकर जू

ओ भोले तुम जटा धारी, लगाय गये तारी

भोले के सिर पर गंगा, बिराजे, सपरत–2 हारी

भोले के संग में डूडॉ नादिया, बॉधत छोरत हारी

भोले के गले में मुण्डों की माला, बिनती कर कर हारी

भोले के साथ में आदि भुआनी, विनती कर कर हारी

ताल दादरा ठेका दुगुन में (दोनो मध्यम)

(नि़, सा, रे, ग, म, म॑, प)

ग	–	ग	–	ग	–	रे	–	–	रे	रे	–
ओ	s	भो	s	ले	s	तु	म	s	ज	टा	s
सा	–	सा	–	सा	.–	सा	रे	–	सा	ग नि	–
धा	s	री	s	ल	s	गा	s	य	ग	s	ये
सा	–	–	रे	–	–						
ता	s	s	री	s	s						
X			0			X			0		

अन्तरा

—	—	स	—	ग	ग	प	प	—	प	—	—
ऽ	ऽ	भो	ऽ	ले	के	सं	ग	ऽ	में	ऽ	ऽ
म॑	—	प	म॑	प	—	म॑	—	प	म	ग	—
ढूँ	ऽ	ड़ा	ऽ	ना	ऽ	ऽ	दि	ऽ	या	ऽ	ऽ
ग	—	ग	—	ग	—	रे	—	—	रे	(ग)रे	—
बाँ	ऽ	ऽ	ध	त	ऽ	छो	ऽ	ऽ	र	त	ऽ
सा	—	सा	—	सा	—	सा	रे	—	सा	नि़	—
हा	ऽ	री	ऽ	ल	ऽ	गा	ऽ	य	ग	ऽ	ये
सा	—	—	रे	—	—						
ता	ऽ	ऽ	री	ऽ	ऽ						
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

हनुमान जू

मेरी लाज हैं तुम्हारें हाथ, पवन सुत अंजनी के लाला

हाथ में सोटा बाबा लाल लंगोंटा, गले में मोतिन की माला

एक बार हनु गये बन घूमन , मिल गये दशरथ के लाला

एक बार हनु गये द्रोणागिरि , उखाड़ ल्याये पर्वत ही सारा

एक बार हनु गये पाताल में , बने अहिरावण के काला

एक बार हनु गये सिया खोजन , जला आये सोने की लंका

तुलसीदास आस रघुवर की , हरि के वरनन चित लागा।

तालकहरवा

(ठेका दुगुन में) (ऩि, सा, रे, ग, म, प, ध)

												सा	–	रे	म
												मे	s	री	s
ग	–	रे	सा	रे	–	ऩि	–	सा	–	सा	–	रे	ग	म	ग
ला	s	ज	तु	म्हा	s	रे	s	हा	s	थ	प	व	न	सु	त
रे	रे	रे	नि	ग	रे	स	नि	सा	–	–	–	सा	–	रे	म
अं	ज	नी	s	के	s	ला	s	ला	s	s	s	मे	s	री	s
X				0				X				0			

अन्तरा

सा	–	रे	म	ग	–	रे	सा	रे	–	सा	ऩि	सा	–	सा	प
हा	s	थ	में	सो	s	टा		ला	s	ल	लं	गो	s	टा	ग
प	–	म	म	म	प	ध	–	ध	प	म	ग	रे	–	–	–
ले	s	में	s	फू	s	लों	s	की	s	मा	s	ला	s	s	s
स	–	म	ग												
मे	s	री	s												
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे

हरदौल जू

निरदोसी हरदौल लला खों , विष भोजन करवाउत काय

प्रीतम पाप कमाउत काय

चुगल चबाइन की बातन में , जान बूझ के आउत काय

आज आपनेई हाथन सों , अपयीं भुजा कटवाउत काय

पुत्र समान लला है मोरे , तिनै कलंक लगाउत काय

ताल कहरवा ठेका दुगुन में

(राग पहाड़ी की छाया)

(ध़, स, रे, ग)

ठेका दुगुन

सा	सा	रे	ग	रे	ग	रे	सा	सा	रे	रे	ग	रे	ग	ग	सा
नि	र	दो	ऽ	सी	ऽ	ह	र	दौ	ऽ	ल	ल	ला	ऽ	को	ऽ
सा	रे	रे	ग	रे	सा	सा	ध	घ	सा	सा	रे	ग	—	—	स
वि	ष	भो	ऽ	ज	न	क	र	बा	ऽ	उ	त	का	ऽ	ऽ	य
रे	ग	रे	सा	ध़	सा	रे	ग	रे	ग	रे	सा	सा	—	—	—
प्री	ऽ	त	म	पा	ऽ	प	क	मा	ऽ	उ	त	का	ऽ	ऽ	य
X				0				X				0			

सभी अन्तरे स्थाई की ही भांति जायेगें

(ब्रत एवं त्यौहार से सम्बन्धित)

गनगौर :—

जल भरबे कों गौरा चली बिचारी

घाट पे झोंका खा गई गौरा , महादेव की नारी

हाँथ मे लुटिया , बगल मे धुतिया , चाल चले मतवारी

इन गौरा को रूप देख के , समुद हंसे दे तारी

किन की बहू कौन की बेटी , कौन पुरूष की नारी

कौन राजा खों प्यास लगी है, कौन पढ़े दई सुघर पनिहारी

राजा हिमांचल की बेटी कहिये , महादेव की नारी

बूढ़े नादिया खों प्यास लगी सो ऊनई पठाई सुघर पनिहारी

ताल कहरवा

(ठेका दुगुन)(देस की छाया) (प़, नि़, सा, रे, ग, म, प, ध)

सा	ग	रे	ग	सा	रे	नि़	s	प़	s	नि़	s	सा	—	रे	ग
ज	ल	ग	र	दे	s	को	s	गौ	s	रा	s	च	ली	s	वि
(रे)सा	—	—	—	—	—	—	—								
चा	s	री	s	s	s	s	s								
X				0				X				0			

अन्तरा

(म)रे	—	रे	रे	रे	म	—	म	म	प	प	—	प	—	प	म
घा	s	ट	पे	झों	s	का	s	रवा	s	ग	ई	गौ	s	रा	s
म	प	प	पम	ध	—	प	ध	म	—	म	ग	ग	रे	रे	सा
म	हा	s	देs	s	व	की	s	ना	s	s	री	s	s	s	s
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

शीतलाष्टमी :—

शीतला महारानी की जय जय बोलों

गेगा को नीर मैया कैसे चढ़ाँऊ , मछरी ने डारो जुठार

बारी के फूल मैया कैसे चढ़ाँऊ , भौरां ने डारे जुठार

गैया के दूध मैया कैसें चढ़ाँऊ , बछ़रा ने डारे जुठार

साठी के चावल मैया कैसे चढ़ाँऊ , चिरइ ने डारे जुठार

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में (पहाड़ी की छाया) (ध़, सा, रे, ग, म, प, ध)

												–	–	म	म
												s	s	मै	या
–	प	–	ध	म	–	म	म	ग	रे	म	म	रे	ग	सा	सा
s	शी	s	त	ला	s	म	हा	रा	s	नी	की	जै	जै	बो	लो
X				0				X				0			

अन्तरा

–	ध़	सा	रे	रे	—	म	–	–	म	प	म	ग	रे	ग	–
s	गं	गा	को	नी	sर	मै	या	s	कै	से	च	ढ़ा	s	ऊँ	s
–	प–	–	घ	प	–	म	–	ग	रे	म	ग	ग	रे	ग	–
–	मछ	री	ने	ड़ा	s	रो	जु	ठा	s	र	कि	जै	जै	बो	लो
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

जगन्नाथ जू :–

जीवन श्री जगन्नाथ जाल से निनारौ

(1) थाके ना हाथ पाँव, धरै नई कोऊ नावँ
चलत फिरत चलौ जाँव , घौरूआ ना घोरों – जीवन

(2) बनी रये बान बात , इज्जत के संग साथ
दीनबन्धु दीना नाथ , रै गओ दिन थौरो – जीवन

(3) हाथ जोर चरन परत , चरनामृत धोय पियत
जियत राम देखौं ना , दूसरे को दोरौ – जीवन

(4) ईसुर परभाती पढ़त , आर्वदा सोऊ पढ़त
कीचड़ में सनौ भओ नीर ना बिलोरौ – जीवन

ताल दादरा

मध्यलय(राग मालगुंजी) (प़, ध़, नी़, नी, स, रे, ग, ग, म, मे, प, ध, नी)

नी़	—	स	—	रे	—	सनी़	स	—	नी़	धप़	ध़
जी	s	व	न	श्री	s	ज	ग	न	ना	ss	थ
स	—	स	ग	ग	ग	ग	—	रेग	म	ग	रेस
जा	s	ल	सैं	s	नि	नौ	s	रौंs	s	s	ss
X			0			X			0		

अन्तरा

स	—	ग	—	म	ग	प	—	मे	प	—	प
था	s	कें	s	न	s	हा	s	थ	पां	s	व
मे	—	मे	प	प	—	मग	म	—	ग	—	—
घ	रै	s	न	हिं	s	कोंs	s	ऊ	नां	s	व
ग	ग	म	ध	ध	—	धध	संनी	—	ध	—	प
च	ल—	त	फि	र	त	चs	लौ	s	जा	s	ऊँ
ग	म	ग	रे	स	—	ध़	स	रेग	म	ग्र	रेस
घो	रू	वा	s	न	s	धौ	s	रौंs	s	s	ss
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे

डॉ0 (श्रीमती) वीणा श्रीवास्तव से साभार प्राप्त

आंसमाई जू :—

मैया विनती करूँ दोऊ कर जोरी

मैया एक अरज सुन लिइयो , मेरी मांग को सिन्दुरा अमर करियों

मैया एक अरज सुन लिइयो , मेरे हाथ की चुंरियाँ अमर करियों

मैया एक अरज सुन लिइयो , मेरे माथे की बिदियाँ अमर करियो

मैया एक अरज सुन लिइयो , मेरे पैर के बिछिया अमर करियो

मैया एक अरज सुन लिइयो , मेरे गोदी के लाल अमर करियो

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में (रागं मालगुंजी की छाया) (नि, सा, रे, म, प, ध)

स्थाई

														म	म
														मै	या
ग	–	रे	सा	सानि	–	सा	रे	ग	–	रे	–	सा	–	म	म
वि	न	ती	क	रूँs	s	दो	ऊ	क	र	जो	s	री	s	मै	या
X				0				X				0			

अन्तरा

														सा	–
														मै	या
रे	–	म	–	प	–	प	प	प	म	मध	पध	म	–	म	म
ए	s	क	अ	र	ज	मो	री	सु	न	लिs	ss	यो	s	मो	री
ग	–	रे	सा	सानि	–	सा	रे	ग	–	रे	–	सा	–	म	म
मा	s	थे	की	बेंs	s	दी	अ	म	र	र	खि	यो	s	मै	या
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

गंगा दशहरा :–

अपनो कोऊ नइंया रे बिना राम रघुनन्दन अपनो कोऊ नइया रे

(1) बाग लगाये बगीचा लगाओ , बिच बिच रोपे केरा

जब जे हँसा निकर जात है , लुटन लगे सब डेरा

(2) चार जनै मिल खाट उठायी , चढ़े काठ की घोड़ी

जाय उतारी जमुन रेत पे , फूँक दई जैसें होरी

(3) हाड जरें जैसे चन्दन लकड़ी ; केस जरै जैसें घास

कुन्दन जैसी काया जर गई , कोऊ ना आओ पास

(4) पेट पकर के माता रोवे , बाँह पकर के भाई

चरन पकर के तिरियाँ रोवे, कर गये आस पराई

(5) तेरा दिना लों तिरिया रौवे , छह महीना लो भाई

जनम –जनम खों माता रौवे , कछु ना लाज निभाई

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में (राग पीलू की छाया) (ऩि, सा, रे, ग, म, प, ध)

												सा	ग	ग	रे
												अ	–	प	नो
सा	–	रे	–	ऩि	–	सा	–	ग	–	–	–	–	–	–	–
को	s	ऊ	s	न	इ	यॉ	s	रे	s	s	s	s	s	s	s
सा	ग	–	ग	ग	–	सा	–	सा	ग	ग	सा	म	प	प	म
बि	ना	s	रा	s	म	र	घु	न	s	द	न	अ	प	नो	s
ग	–	–	ग	रे	–	रे	–	सा	–	–	–	सा	ग	ग	रे
को	s	ऊ	s	न	इ	यॉं	s	रे	s	s	s	अ	प	नो	s
X				0				X				0			

अन्तरा

सा	–	सा	सा	रे	ग	रे	सा	सा	–	सा	सा	सा	ग	ग	रे
बा	s	ग	ल	गा	s	ये	ब	गी	s	चा	ल	गा	s	ये	s
सा	–	रे	–	ऩि	–	सा	–	रे	–	रे	–	रे	ग	ग	रे
वि	च	बि	च	रो	s	पे	s	के	s	रा	s	s	म	जू	s
सा	–	रे	–	ऩि	–	सा	–	रे	–	रे	–	–	–	–	–
वि	च	बि	च	रो	s	पे	s	के	s	रा	s	s	s	s	s
रे	म	म	म	म	–	रे	–	रे	म	म	म	प	ध	ध	म
ज	ब	जे	s	हं	s	सा	s	नि	क	र	जा	s	त	है	s
म	म	म	म	ग	–	ग	रे	सा	–	सा	–	सा	ग	ग	रे
लु	s	न	ल	गे	s	स	व	डे	s	रा	s	अ	प	नो	s
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

गुरू पूनों :–

सत गुरू की अटारी चढ़ जाओ नसेनी बिना पाँउन की

काम क्रोध मेरे देवर जेठा , रास्ता रोंकें हमार

ससुर हमारे अहंकार है , बैठे हैं पलंग विछाय – नसेनी

ननद हमारी चिन्ता कर हैं , तनक ना लैहैं चैन

बड़ी जिठानी ममता कहिये , घर बैठे गुर्राय – नसेनी

सास हमारी शीलवन्त है , रास्ता दई बताय

बहुआ धरो ध्यान चढ़ जाओ – नसेनी

कहत कबीर सुनो भाई साधो , ये पद है निर्बाना

जो इस पद का अर्थ लगाये , आवागमन छुट जाय ।

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में (राग मालगुंजी की छाया)दोनो गंधार निषाद कोमल (प़, ध़, नि़,सा, रे, ग, ग, म,प)

														रे	म
														स	त
ग	रे	रेम	म	ग	रे	रे	रे	सा	–	ध़	ध़	ध़सा	सा	रे	रे
गु	रू	कीs	अ	टा	री	च	ढ़	जा	s	ओ	न	सेंs	नी	बि	ना
ग	ग	रे	रे	सा	–	–	रेम								
पा	s	ऊँ	न	की	s	s	सत								
X				0				X				0			

अन्तरा

निनि	धध	प–	ध–	धसा	–सा	–रे	–रे	ग	ग	रे	रे–	सा	–	–	–
काs	मक्रो	sध	मेरे	देव	रजे	ठs	हैs	र	स्ता	रो	केह	मा	s	s	र
रेरे	–म	म–	म	रेरे	–म	म–	म	–	म	ग	म	म	प	म	ग
सस	रह	माs	रे	अंह	ss	कारी	है	s	बै	ठे	है	पं	लं	ग	बि
ग	रे	सा	ध़	ध़	सा	रे	रे	ग	ग	रे	रे	सा	–	–	रेम
छा	s	य	न	सै	नी	बि	ना	पा	s	ऊँ	न	को	s	s	सत
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

साऊँन :—

गिर गई मोरे महाराज , झूला झूलत बेंदी गिर गई

कौना सहर की जा बिन्दिया , कहाँ धराई रवार

झांसी सहर की जा बिन्दिया , पन्ना धराई रवार

कौना गढा दई तोय बिन्दिया , कौना धराई रवार

जेठा गढा दई मोय बिन्दिया , देवरा धराई रवार

ताल दीपचन्दी 7 स्वर (दोनों गंधार रायसा की झलक)

(ध़, नि़, सा, रे, ग, ग, म, प)

ध़		स	—	स	—	स	—	ग	रेस	रे	म	—	ग.	—
गि		र	ऽ	ग	ऽ	ऽ	ई	मो	ऽरे	ऽ	म	ऽ	हा	ऽ
म		—	—	—	—	—	पम	ग	—	रेस	रे	—	सनि़	—
रा		ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	जऽ	झू	ऽ	ऽऽ	ला	ऽ	झूऽ	ऽ
सा		—सा	रे	रे	—	ग	ग	रे	—	ग	रे	—	—	सा
ल		तऽ	ऽ	वे	ऽ	दी	ऽ	गि	र	ऽ	ऽ	ऽ	ग	ऽ
स	—	—	—											
यी	ऽ	ऽ	ऽ											
X				2				0			3			

अन्तरा

सा	ग	रे	सा		–	ऩि	सा		–	–	रे	–	प	–
कौ	s	s	न		s	श	ह		र	s	की	s	s	s
ग	–	रे	सा	–	ऩि	–	सा		–	–	–	–	–	–
जा	s	s	विं	s	दिं	s	या		s	s	s	s	s	s
ध़	ध़	सा	सा	–	सा	–	रेग		सा	रे	म	–	म	–
कौ	s	s	ना	s	ध	s	राs		s	s	ई	s	र	s
म	–	–	–	–	–	–	–		–	–	–	प	–	ग
वा	s	s	s	s	s	s	s		s	s	s	s	र	s
ग	–	सा	रे	–	सा	ऩि	सा	–	सा	–	रे	–	ग	ग
झू	s	s	ला	s	झू	s	ल		त	s	बें	s	दी	s
रे	–	ग	रे	–	सा	ऩि	सा		–	–	सा	–	–	–
गि	र	s	s		ग		यी		s	s	s	s	s	s
X			2				0				3			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

जन्माष्टमी :–

कहन लगे मोहन अब मैया मैया

नन्द बाबा से बाबा बाबा, बलदाऊ से भइया

आज तो दूधा पी लेओ कन्हैया भोर जमा दऊँ दहिया

दूर खिलन मत जइयो कन्हैया, मार दैहे काऊ की गइया

निज परछाई निहारत खम्बन, नाचत ताता थैया

चन्द्र सखी भज बाल कृष्ण छबि, बलि बलि जा रई मैया।।

ताल दादरा

(ठेका दुगुन)

सात स्वर सभी स्वर शुद्ध (नि़, सा, रे, ग, म, प, ध)

												सा	—
												क	s
सा	रे	—	सा	सा	नि़	नि़	सा	नि़	नि़			सा	रे
ह	न	s	ल	गे	s	मो	s	s	ह			न	s
नि	सा	रे	—	ग	—	सा	—	सा	—			सा	—
अ	ब	मै	s	या	s	मै	s	या	s			क	s
X			0			X			0				

अन्तरा

—	—	सा	—	सा	रे	म	—	—	म	—	—
s	s	नं	s	न्द	बा	बा	s	s	सों	s	s
म	—	प	—	म	—	ग	रे	—	ग	—	—
ओ	s	बा	s	बा	s	बा	s	s	बा	s	s
प	—	प	—	प	—	प़	ध	प़	—़	प़	—
ब	ल		दा	s	s	ऊ	s	s	सें	s	s
म	प	प	—	ग	—						
भै	s	या	s	क	s						
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

हर तालिका :–

सिव शंकर ब्याहन आये ,

कका बाप कुटुम नई जिनके , कौन ने नाम धराये

आजी दाई मताई नई जिनके , कौन ने दूध पियाये।

बैन फुआ कोऊ ना जिनके , कौन ने तेल चढ़ाये

आजे–बाजे जुरे ना जिनके , . डमरू लैके आये।

सिर पै मौर बंधी ना जिनके , गले नाग लपटाये।

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में

(राग देस की छाया) (नि़, सा, रे, ग, म, प, ध)

												–	–	सा	नि़
												s	s	सि	व
सा	रे	रे	सा	सारे	ग	–	ग	रे	–	सा	–	–	–	सा	नि़
शं	s	क	र	ब्या	s	ह	न	आ	s	ये	s	s	s	सि	व
X				0				X				0			

अन्तरा

म	–	म	म	म	–	म	ग	प	–	प	प	प	–	प	म
क	s	का	s	बा	s	प	कु	टुं	म	न	ई	जि	न	के	s
प	ध	–	–	प	ध	प	.म	म	–	म	ग	रे	सा	सा	नि़
को	s	ना	ने	ना	s	म	ध	रा	s	ये	s	s	s	सि	व
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

गणेश चौथ :–

रइयो रइयो बिरत गन्नेश , तुमारी मंसा पूरन हो जैहै

पहलो विरत राधा जू ने कीन्हो , सो बर पाये किसन भगवान –तुमारी

दूजो विरत सीता जू ने कीन्हो , सो बर पाये राम भगवान ''

तीजो विरत गौरा जू ने कीन्हो , सो बर पाये भोलेनाथ ''

चौथो विरत सुहद्रा जू ने कीन्हो , सो पाये अर्जुनवीर महान ''

पाचंओ विरत सावित्री जू ने कीन्हो , सो पाये हैं अचल सुहाग ''

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में

(राग मालगुंजी की छाया) ध़, नी़, सा, रे, ग़, ग, म)

			रेम — म
			र हि यो
ग रे रेम म	ग रे रेग गरे	सा — नी घ	सा– सा रे रे
र हि योंs वि	र त गं s	ने s श तु	म्हा री मं शा
ग ग– रे रे	सा — रेम म		
पू रन हो s	जै s रहि यो		
अन्तरा			
सा — नि ध	सा — रे —	ग — म ग	रे — स– रेम
प ह लो वि	र त सी s	ता s जू ने	की sन्हो सो s
ग रे रेम म	ग रे रेग गरे	सा — नी ध	सा सा रे रे
व र पाs ये	सि री भs गs	वा s न तु	म्हा री मं शा
ग ग रे रे	सा — रेम म		
पू रन हो s	जै s रहि यो		
X	0	X	0

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

महालक्ष्मी :–

कामना पूरन करो माई, पूरना पूरन करो माई

कि मोरी अम्बे काये की ईट लगायी, काहे को लागे गारा रे माई

कि मोरी अम्बे सोने की ईट लगायी , चन्दन के लागे गारा रे माई

कि मोरी अम्बे काहे की लागी किवरियाँ , काहे की लागी चौखट रे माई

कि मोरी अम्बे चॉदी की लागी किवरियाँ , रूपे की लागी चौखट रे माई

ताल कहरवा (ठेका दुगुन में) पांच स्वर सभी शुद्ध (सा, रे, ग, म, प)

															रे
															का
–	रे	–	–	सा	रे	रे	म	ग	–	रे.	–	सा	–	–	रे
ऽ	म	ना	ऽ	पू	र	न	क	रो	ऽ	मा	ऽ	ई	ऽ	ऽ	का
X				0				X				0			

अन्तरा

															सा
															कि
स	स	रे	म	म	–	म	.म	म	–	प	म	ग	रे	ग	रे
मे	री	अ	म्बे	का	ऽ	हे	की	ई	ऽ	ट	ल	गा	ऽ	यी	का
रे	–	रे	–	सा	ऽरे	ऽऽ	म	ग	–	रे	–	सा	–	–	रे
हे	ऽ	के	ऽ	गा	ऽरा	ऽऽ	ल	गे	ऽ	मा	ऽ	ई	ऽ	ऽ	का
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

कातिक के गीत :–

तुम बिन श्याम गई रन बन की

कुँअलन गई ती खबर नई तन की , सो सुध आयी मोय गगरी भरन की

बाँगन गई ती खबर नई तन की , सो सुध आयी मोय कलियॉ चुनन की

तला गई ती खबर नई तन की , सो सुध आयी मोय चीर धुबन की

सेजन गई ती खबर नई तन की , सो सुध आयी मोय पियरा मिलन की

ताल दादरा

ठेका दुगुन में(ध वर्जित बिहाग की छाया) (नि़, सा, रे, ग, म, मे, प)

—	—	ग	रे	ग	म	ग	—	रे	सा	—	रे
ऽ	ऽ	तु	म	बि	न	श्या	ऽ	ऽ	म	ऽ	भ
नि़	नि़	—	सा	रे	—	रे	नि़	—	सा	—	—
इ	ऽ	ऽ	र	न	ऽ	ब	न	ऽ	की	ऽ	ऽ
अन्तरा											
—	—	स	स	ग	ग	प	प	—	प	—	—
ऽ	ऽ	क	लि	यॉ	चु	न	न	ग	ई	ऽ	ऽ
—	—	मे	मे	प	प	मे	प	—	म	ग	—
ऽ	ऽ	सु	ध	न	ई	त	न		की	ऽ	ऽ
—	—	ग	रे	म	ग	ग	—	रे	सा	—	रे
ऽ	ऽ	सो	ऽ	सु	ध	आ	ई	ऽ	मो	हे	ऽ
नि़	नि़	—	सा	रे	—	रे	नि़	—	सा	—	—
क	लि	यॉँ	ऽ	ऽ	'चु	न	न	ऽ	की	ऽ	ऽ
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

दीवारी के गीत :–

धनुष चडाये राम ने सो प्यारे , थकित मये सब भूप रे।
मगन भई जानकी , सो देख राम को रूप रे !!
आज दिवारी इतै हौ , सो तला पार है काल रे
बाजत आबै ढोल सो, नाचत आबै ग्वाल रे !!
राधा दई ले नीकरी , कान्हा उवेरी गाय
ही दो कन्हैया नन्द के , मोरी मांग भरत है धूरि रे !!
अंगिया की फरिया करो , फरिया बनाँऊ छार
दे ठनकाऊ पैजनां , तोरे चरत बिडारौ ढोर रे !!
दइया मीठे भैसं के , और माता के दूध
कइयॉ मीठी बाप की , भइया की चार बाँह रे !!
चका चले चखील से , बैल जुआं के पार
नाम मरद के जव चलों , जब घरै सुलच्छन नार रे !!

ताल रहित गाते है

स्वर तार सप्तक होते है (प नि सां रें गं) 5 स्वर

प	प	प	–	नि	–	नि	नि	नि	–	–	सं	निसं	रेंगं	–	–
ध	नु	ष	च	डा	s	ये	s	रा	s	s	म	नेs	सौंs	s	s
गं	–	रेंसं	नी–	सां	रें	सं	प	नी	सं	रेंs	संरें	नीसं	–	–	सं
थ	कि	तs	म	ये	s	स	व	भू	s	पs	ss	रेंs	s	s	s
सां	नी	–	प												
s	s		s												

प	प	प	प	—	प	नी	—	नी	नी	—	सां	नि	सं	रें	गं
म	ग	न	म	यीं	ऽ	ऽ	ऽ	जा	ऽ	ऽ	न	की	ऽ	ऽ	ऽ
गं	गं	गं	गं	गं	गं	—	गंगं	गं	नी	—	सं	—	—	रें	संरें
सो	ऽ	ऽ	ऽ	दे	ऽ	ख	रा	ऽ	म	को	ऽ	ऽ	ऽ	रू	पऽ
—	नी	ऽ	प												
ऽ	रे	ऽ	ऽ												

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे

बसंत पंचमी :—

तुम्हरे दरस को आये शारदा , हेरो हमारी ओर हो मांय .

आमन बौर चडाये शारदा , हेरो हमारी ओर हो मांय

पियरे फूल चढाये शारदा , हेरो हमारी ओर हो मांय

पीरी खीर पीरी अठवाई , हेरो हमारी ओर हो मांय

कन्ठ विराजो सुमति विराजौ , हेरो हमारी ओर हो मांय

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में

देश की छाया (सा, रे, ग, म, प)

म	—	म	म	म—	प	म	—	ग	—	ग	ग	रे	—	सा	—
तु	म	रे	द	स	स	खाँ	ऽ	आ	ऽ	ये	शा	ऽ	र	दा	ऽ
सारे	ग	—	ग	रे	—	सा	—	रे	—ग	रे	सा	सा	—	—	—
हेऽ	रो	ऽ	ह	मा	ऽ	री	ऽ	ओ	—र	हो	री	मां	ऽ	ऽ	य
X				0				X				0			

अन्तरे स्थायी की भाँति गाये जायेगें

शिवरात्रि :—

भोले बने वर दूल्हा हो , दुलहिन खौं मचल रयें।

जय बोलो दुलहिन खौं मचल रयें।

बिरमा कहें भोले — मौर बाँध लयो

मौर को वे बाँधत नइयाँ गंगा को मचल रयें।

विष्णु कहैं भोले कुण्डल पैर लेओ

कुण्डल वे पैरत नइयाँ बिच्छू को मचल रयें।

नारद कहें भोले कंकन बाँध लेओ

कंकन वे बाँधत नइयाँ माला खौं मचल रयें।

बिरमा कहें भोले खौरे काड लेओ

खौरें वे काडत नइयाँ चन्दा खौं मचल रयें।

विसनू कहें भोले माला पैर लेओं

माला वे पैरत नइयाँ सरपन खौं मचल रयें।

नारद कहैं भोले रथ मे बैठ लेओ

रथ पे बैठत नइयाँ नादिया खौं मचल रयें।

ताल दादरा ठेका दुगुन में राग झिंझोटी की छाया (ध़, सा, रे, ग, म, प)

म	—	म	म	प	प	प	म	—	म	ग	—
मो	s	ले	s	ब		ने	s	s	ब	र	s
स	—	—	रे—	म		म	—	—	म	म	ग
दू	s	s	ल्हा	s		रे	s	s	दु	ल	s
ग	रे	रे	सा	सा	रे	रे	रे	—	सा	सा	ध़
हि	न	को	s	म	s	च	ल	s	रे	ये	s
ध़	सा	—	सा	रे	—	रे	म	—	म	—	म
ज	य		वो	s	s	लो	s	s	दु	ल	s

रे	रे	सा	—	रे	—	रे	—	—	रे	—	—
हि	न	को	s	म	s	च	ल	s	र	ये	s
X			0			X			0		

अन्तरा

ध़	—	रे	—	रे	—	रे	—	—	—	—	—
वि	र	मा	s	क		है	s	s	भो	ले	s
सा	ध़	सा	सा	—	सा	सा	—	—	—	—	—
मौ	s	र	s	बाँ	s	s	घ	s	ले	ओ	s
म	—	म	—	म	प	म	ग	म	म	ग	—
मौ	s	र	s	कौं	s	वे	s	s	वाँ	s	s
सा	—	सा़	रे	—	म	म	ग	म	म	ग	—
ध	त	s	न	ई	s	याँ	s	s	गं	s	s
ग	रे	रे	सा	सा	रे	रे	—	—	सा	ध़	—
गा	s	को	s	म	s	च	ल	s	र	s	ये
ध़	सा	—	सा	रे	—	रे	म	—	म	—	ग
ज	य	s	बो	s	s	लो	s	s	गं	s	s
रे	—	सा	—	रे	—	रे	—	—	रे	—	—
ग	s	को	s	म	s	च	ल	s	र	ये	s
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

भोला के गीत (टिप्पे) (बम बुलियाँ)

1. गंगा तेरे नीर को तलफत है दिन रैन

   मेहर भई भोला नाथ की तो आय करौ अस्नान ,

   बोलो की भाई बम बोलो की भाई बम बम भोले

2. भोला तेरी गैल मे भांति भांति सुख सोय

खावें ,खौं लडुआ मिलें, गावे को मन होय बोलो की भाई ————

3. गंगा तेरे तीर पें, पक्के बने मकान

पडंन के का बाप के बनवा दिये जजमान बोलो की भाई ————

4. राम बडाये वे बड़े बल कर बड़ो ना कोय

बल करके रावन बड़ो सो छिन में डारो खोय बोलो की भाई ————

5. हरि भले हरिना भले , सगुन भले है श्याम

अर्जुन रथ खौं हकियें , भली करै भगवान बोलो की भाई ————

6. एक अचम्मा हमने देखो कुआं मे लग गई आग

पानी सबरौ जर गयो , मछरी खैले फाग बोलो के भाई ————

राग पीलू की छाया (ताल रहित गाया जायेगा) (प नि, सां, रें, गं)

गं	–	–	–	गं	–रें	गं	–	गं	–	–	–	गं	–	–	–
भो	ला	ते	री	गै	ऽल	में	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
रें	ऽरें	ऽरे	रें–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–
भां	तभां	ऽत	सुख	हो	ऽ	य	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
नि	–नि	ऽ	नि–	सां	–	निसां	रेंगं	–	–	–	–	–	–	–	–
खा	वेंऽ	खौं	लडु	आ	ऽ	ऽमि	लेंऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
रें	–	–	–	सां	–	–	सां	–	–	–	–	–	–	–	सां
गा	वे	को	मन	हो	ऽ	ऽ	य	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	बो
सां	सां	सां	सां	प	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	सां
लो	के	भा	ई	बम	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	बो
सां	सां	सां	सां	प	–	–	–	–	–	–	–	सां	–	–	सां
लो	के	भा	ई	बम	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	भो	–	–	ले
X				0				X				0			

शेष इसी प्रकार गाये जायेगें

गंगा जू :–

गंगा तेरो जल अमरित नीर

गंगा है गोरी जुमना है कारी दोनऊँ बहैं एक नीर ,

गंगा नहाये से पाप कटत है निरमल होत सरीर

गंगा नहाये से केवट के दरसन पाप कटत गम्भीर

राम धाट पें राम विराजें हनुमत पर्वत बीच

माधव दास कहत कर जोरें तेरो चरन मेरो सीस

(प्रकृति एवं पशु पक्षी से सम्बन्धित)

दोनो निषाद तिलक कामोद की छाया

ताल कहरवा ठेका दुगुन में (नि़, स, रे, ग, म, प, ध, नि॒)

															सरे
															सिरी
नि़	नि़	सा	रे	–	रेम	म	म	ग	ग	रे	रे	सा	–	–	सरे
गं	गा	मै	या	s	तेरो	ज	ल	अ	म	रि	त	नी	s	र	सिरी
X				0				X				0			

अन्तरा

												–	स	ग	म
												s	गं	गा	न
प	प	प	–	–प	नि॒नि॒	नि॒नि॒	नि॒	ध	प	–	–	ध	–	–	–
हा	s	ये	से	sपा	ss	sप	क	s	त	है	s	s	निर	म	ल
प	ध	प	म	म	रे	–	रेसा								
हो	s	त	स	री	ss	र	सिरी								
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

जमुना जू :– जमुना तोरो दरस हमें भावें

सूरज नारायण की कुँआरी कन्या कालिन्दी कहलावे

जम की जंजीर कटे नाम लेये से नाम से यम कांपें

मथुरा जू में जुमना बहत है धारा अधिक सुहावे

बिद्राबन की गुंज गलिन में , मुरली मधुर बजावे

चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण को , बिमल बिमल जस गावे।

ताल कहरवा

(ठेका दुगुन में)

राग खमाज की छाया (सा, रे, ग, म, प, ध)

												रे	–	रे	रे
												ज	मु	ना	s
सा	–	रे	म	ग	–	रे	–	सा	–	सा	–	रे	–	रे	रे
ते	रो	s	द	र	स	ह	में	मा	s	वे	s	ज	मु	ना	s
X				0				X				0			

अन्तरा

म	–म	–	म	म	–	म	ग	प–	–	प	–	प	–	व	म
सू	sर	ज	ना	रा	य	ण	की	कवा	s	री	s	क	s	न्या	s
प	ध	ध	ध	प	प	प	म	म	–	म	ग	रे	रे	रे	–
का	s	लि	s	दी	s	क	ह	ला	s	वे	s	ज	मु	ना	s
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

नर्मदा जू :— नरवदा तो माता लगे रें

अरे माता लगे गंग जमुन लागे बैन

जमुना हनाये सातऊँ रोज

अरे सातऊँ रोज जम से मिल है चैन

गंगा हनाये से पाप कटें

अरे पाप कटें चांयें हनाओ दिन रैन

नरबदा तो माता लगे रे

अरे माता लगै दरस करे़ कल्यान

दादरा

ठेका दुगुन (रायसा की झलक) (ध़, सा, रे, ग, ग, म, प)

सा	ध़	ध़	सा	सा	–	सा	–	सा	रे	–	–
न	र	म	दा	s	तो	झा	s	ता	ल	गे	s
म	–	–	म	–	–	म	–	--	–	प	ग
रे	s	s	s	s	s	s	s	s	s	s	s
ग	–	ग	–	रे	स़	रे	–	–	सा	–	–
मा	s	ता	s	ल	s	गे	s	s	रे	s	s
स	ध़	रे	–	रे	–	रे	–	–	रे	रे	सा
गं	s	गा	s	ज	s	मु	न	s	ल	में	s
सा	–	–	–	–	–	स	–	–	–	–	ध़
बै	s	s	s	s	s	s	s	s	s	s	न
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

विन्धाचल जूः—

महारानी बरदानी कि धन धन विन्ध्याचल रानी

कि मेरी अम्बे पहाड़ के उपर

इक मंदिर बना खासा जहाँ जग तारिन को बासा

अरी अम्बे तरै बहै गंगा

गंगा का निरमल पानी , नहाये मेरी ज्वाला जगत रानी

कि अरी अम्बे भवन इक कुइया

कुइया का शीतल पानी पियें मेरी ज्वाला जगत रानी

कि अरी अम्बे चन्दन इक चौकी

चौकी मे जड़े हीरा, चाव रही पानन के बीरा

कि अरी अम्बे जोत वहाँ जलती

ज्योति का उजयारा , करै बाल बच्चन का रखवारा

ताल कहरवा

ठेका दुगुन (राग तिलक कामोद छाया) (नि़, सा, रे, ग, म, प)

														नि़	सा
														म	हा
रे	–	रे	ग	रे	रे	रे	सा	ग	–	–	सा	रे	–	सा	–
रा	ऽ	नी	ऽ	व	र	दा	ऽ	नी	ऽ	ऽ	कि	ध	न	ध	न
नि़	ऽ	सा	–	रे	ग	रे	–	सा		–	–	–	–	नि़	सा
वि	ऽ	ध्या	ऽ	च	ल	रा	ऽ	नी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	म	हा
X				0				X				0			

अन्तरा

															सा
															कि
सा	सा	रे	म	म	—	—	प	ग	—	रे	ग	रे	—	सा	—
अ	री	अं	s	म्बे	s	s	प	हा	s	ड़	के	उ	s	प	र
—	—	नि	सा	रे	रे	—	ग	रे	—	रे	सा	ग	—	—	सा
s	s	इ	क	मं	दि	र	ब	ना	s	खा	s	सा	s	s	ज
रे	—	सा	नि़	नि़	सा	—	सा	रे	ग	रे	सा	—	—	नि़	सा
हाँ	s	ज	ग	ता	s	रि	न	को	s	बा	s	सा	s	म	हा
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

गोवधर्न जूः—

दुविधा कब जैहै जा मन की

इन चरनन परिकम्मा दैहो छाया गोवर धन की

रूनक झुनक आँगन मे खेले , राम लखन की जोड़ी

जब मेरो कान्ह खिलौना मांगे , दूध माखन से रोटी

जब मेरो कान्ह दुलैय्या मांगे , बड़े भूप की बेटी

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में

राग पीलू की छाया (प, नि, सा, रे, ग, म, प)

ग	रे	सा	नि	प़	नि़	—	—	स	ग	रे	सा	सा	—	सा	—
दु	वि	धा	s	क	व	जै	s	है	s	जा	s	म	न	की	s
X				0				X				0			

अन्तरा

सा	—	ग	म	प	—	प	—	ग	—	म	म	ग	—	रे	सा
इ	न	च	र	न	न	प	र	क	ऽम	मा	ऽ	दे	ऽ	हो	ऽ
प	—	प	—	प	म	निप	प	ग	—	रे	सा	—	—	—	—
छा	ऽ	या	—	गो	ऽ	व	र	ध	न	की	ऽ				
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

तुलसी जू :—

बोलो री सखि सब रामई राम
कहाँ बैठी तुलसा , कहाँ बैठे राम जू
कहाँ विराजे , सालिग राम जू
घरूआ बैठी तुलसा तिवारे बैठे राम जू
सोने की सिंहासन , सालिग राम
कहाँ पीवे तुलसा , कहा खाये राम जू
दूध पीवे तुलसा , लडुआ खाये राम जू
माखन मिसरी के भोग सालिग राम

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में

राग देश की छाया (सा, रे, ग, म, प, ध)

सा	रे	रे	ग	ग	—	ग	—	—	म	—ग	रेसा	सा	—	—	—
बो	लो	री	स	सी	ऽ	स	ब	ऽ	रा	ऽ	मई	रा	ऽ	ऽ	म
X				0				X				0			

अन्तरा

म	—	म	ग	प	—	प	म	ध	—	ध	म	प	—	—	—
क	हा	पी	वे	तु	ल	सा	s	क	हा	पी	वे	रा	s	s	म
प	ध	ध	—	प	घ	प	म	प	ध	ध	—	प	ध	प	म
क	हा	पी	वे	रा	s	s	म	क	s	हा	s	खा	s	वे	s
म	—	म	ग	रे	—	सा	—								
शा	s	लि	ग	रा	s	s	म								
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

पीपलः—

तेरो भवन नीम सार देवी दुर्गा

देवा दुआरे एक हरा हरा पीपल — लाल धुजा फहराय देवी दुर्गा

देवा दुआरे इक अंधरा पुकारै — देओ नयन घर जाये देवी दुर्गा

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में मालगुंजी की छाया (ध़, ऩि, सा, रे, ग, ग, म)

—	साऩि	घ़	ऩि	सा	—	सा	—	रे	म—	म	ग	रे	—	सा	—
—	ते—	रो	म	व	न	नी	sम	सा	sर	दे	वी	दु	र	गा	s

अन्तरा

—	साऩि	घ़	ऩि	सा	—	सा	—	सा	रे	म	ग	रे	—	सा	—
s	देs	बा	दु	आ	रे	इं	क	ह	रो	ह	रो	पी	s	प	र
—	ग	ग	ग	म	—	म	सा	सा	रे	म	ग	रे	—	सा	—
s	ला	ल	धु	जा	s	फ	ह	रा	य	दे	वी	दु	र	गा	s
X				0				X				0			

आम, नीम, महुआ, लोग, इलायची :–

लोगंन बिरछा झालरे हो माय

कौना लगाय दये रे कि मैया मेरी

आम,नीम ,महुआ , गुलजार लोगंन के झाड़ लायचिन के झाड़

कौना लगाये रस केवरा हो माय

राजा लगाये दये रे कि मैया मोरी

आम नीम महुआ गुलजार ,लोगंन के झाड़ लायचिन के झाड़

रनियाँ लगाये रस केवरा हो माय

ताल कहरवा

ठेका दुगुन 5 स्वर सभी शुद्ध (सा, रे, ग, म, प)

सा	रे	रे	ग	रे	सा	रे	म	–	ग	–	रे	ग	–	रे	–
लौं	s	ग	न	बि	र	छा	s	s	झा	s	ल	रे	s	हो	s
सा	–	–	–	–	–	सा	सा								
मां	s	s	s	s	s	मै	या								
X				0				X				0			

अन्तरा

–	सा	सा	रे	रे	सा	रे	म	म	–	–	पम	प	प	प	प
s	कौ	ना	ल	गा	य	द	.ये	रे	s	s	किs	मै	या	मो	री
म	–	म	–	ग	म	रें	सा	ग	–	ग	रे	रे	रे	सा	–
आ		म	नी	s	म	म	हु	आ		गु	ल	जा	र	लौं	s
ग	–	ग	रे	रे	रे	सा	–	ग	–	ग	रे	रे	रे	सा	–
ग	न	के	s	झा	sड	ला	य	चि	न	के	s	झा	s	s	ड़
–	रे	रे	रेग	रे	सा	रे	ग	–	ग	–	रे	ग	–	रे	–
को		ना	लs	गा	ये	र	स	s	के	s	व	रा	s	हो	s
सा	–	–	–	–	–	सा	सा								
माँ	s	s	s	s	s	मै	.या								
X				0				X				0			

जवारे अनार :—

बारी से लहर आवे होम की हो माय

कौना लगाये दये हरे जवारे

कौना ने लाल अनार रें

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में 5स्वर सभी शुद्ध (सा, रे, ग, म, प)

सा	रे	रे	ग	ग	रे	रे	सा	—	रे	—	रे	रे	—	सा	—
बा	री	से	ल	ह	र	आ	बे	s	हो	s	म	की	s	हो	s
सा	—	—	—	—	—	स	स								
मां	s	s	s	s	s	अ	ब								
X				0				X				0			

अन्तरा

म	म	म	म	म	प	म	म	ग	—	ग	रे	रे	—	रे	सा
कौ	s	ना	ल	गा	य	द	ये	ह	रे	s	ज	वा	s	रे	s
स	रे	रे	ग	ग	रे	रे	सा	—	रे	—	रे	रे	—	सा	—
कौ	s	ना	ने	ला	s	ल	अ	ना	र	हो	s	मां	s	s	s
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

कदम्ब :—

ले गयो चीर मुरारी कदम पे, ले गयो चीर मुरारी हो माय

लेकें चीर कदम पै बैठों हम जल मांझ उघारी

हमरें चीर हमें देओं मोहन , नातर दैहो गारी

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में पीलू की छाया (प़, नी़, सा, रे, ग॒, म, प)

–	ग॒	–	ग॒ ग॒	ग॒	–	ग॒	रे	स	–	स	रेम	ग॒	रे	सा	नी़
ऽ	ले	ऽ	गओ	ची	ऽ	र	मु	रा	ऽ	री	क	द	म	बै	ऽ
–	प़	–	नी़–	सा	–	रे	प	ग॒	ग॒रे	सा	नी़	सा	–	–	–
ऽ	लै	ऽ	गआ	ची	ऽ	र	मु	राऽ	रीऽ	हो	ऽ	मां	ऽ	–	ऽ
X				0				X				0			

अन्तरा

–	प	–	प	प	–	प	प	म	म	–	मम	म	–	म	ग॒
ऽ	ह	म	रे	ची	ऽ	र	ह	ऽ	में	ऽ	तुम	दे	ऽ	दे	आ
–	ग॒–	–	ग॒ग॒	ग॒	–	ग॒	रे	सा	–	स	रे	ग॒	रे	सा	नी़
–	हऽ	मज	–ल	मां	ऽ	झ	उ	घा	ऽ	री	क	द	म	त	रैं
–	प़	–	नी़–	स	–	रे	प	ग॒–	ग॒रे	सा	नी़	सा	–	–	–
ऽ	लै	ऽ	गओ	ची	ऽ	र	मु	राऽ	रीऽ	हो	ऽ	मां	ऽ	ऽ	ऽ
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

गाय :–

धौरी को पूजें मेरे साहिब तो
जो धौरी खों पूज रये माथें
पंचरगी पाग रे
धौरी के गले घूंधर माला
धौरी अन दो धन दो लक्ष्मी दो
लक्ष्मी से भरौ भण्डार
करौं मैं तो धौरी की आरती

पुजें वो तो मेरे पूत रें
बिनकी पचरंगी पाग रें
कानन कुण्डल जगमगें।
पावॅन तो में बाजनियाँ

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में राग पीलू की छाया

														नि	सा
														धौ	s
रे	–	–	म	ग	रे	सा	नि	सारे	गरे	सा	नि	सा	रे	रे	सा
री	s	कों	पू	जे	जें	ने	रे	सा	ss	हि	ब	तौ	s	धौ	s
नि	–	सा	–	–	–	नि	सा								
री	s	कों	s	s	s	धौ	s								
X				0				X				0			

अन्तरा

सा	–	ग	म	प	–	प	प	म	ग	म	म	ग	रे	सा	सा
जौ	s	धौ	s	री	s	कों	s	पू	s	जें	s	मा	s	थे	s
रे	रे	रे	म	ग	रे	सा	–	सारे	गरे	सा	नि	सा	–	नि	सा
वि	न	के	s	प	च	रं	ग	पाs	ss	ग	अ	रे	s	धौ	s
X				0				X				0			

घोड़ा ,बैल, भैंस–

बधाई बाजे नन्दं घर मोरी आली

कि मोरी आली पहलां मोर विआनी ,सो मुंतिअन चुन धरे मोरी आली

कि मोरी आली दूजां गाय विआनी , सो बछरन हर चलै मोरी आली

कि मोरी आली तीजां घोड़ी विआनी , बछेरन खुर धरे मोरी आली

कि मोरी आली चौथां भेंस विआनी , मटकियन दध भमै मोरी आली

ताल दादरा

ठेका दुगुन मे राग तिलक कामोद की छाया (ध़, नि़, सा, रे, ग, म, प)

											स
											ब
रे	–	–	सा	सा	नि़	ध़	–	ध़	–	नि़	–
धा	s	ई	बा	जे	s	s	s	नं	s	द	s
सा	–	रे	रे	रे	सा	सा	–	सा	–	–	सा
घ	र	s	मो	री	s	आ	s	ली	s	s	ब
											स
											के
X			0			X			0		

अन्तरा

सा	–	सा	रे	म	–	–	–	म	म	म	–
मो	री	s	आ	ली	s	s	s	प	ह	लाँ	s
म	प	म	म	–	म	ग	–	ग	–	स	–
मो	s	s	र	s	वि	या	s	नी	s	सो	s
रे	–	–	सा	सा	नि़	ध़	–	ध़	–	नि़	–
मुं	ति	s	य	न	s	s	s	चुं	न	घ	s
सा		रे	रे	रे	सा	सा	–	सा	–	–	सा
रे	s	s	मो	री	s	आ	s	ली	s	–	ब
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

तोता कोयल :–

गोदी के ललनवा नौने राखियो हो माय

कौना मे पाली काली कोइली हो माय

अरे कौना ने पाले गंगा राम

तोता बेइमान कुतरे लौटन आम , मैया गोदी के लल......

राजा ने पाली काली कोइली हो माय

अरे रनियाँ ने पाले गंगाराम

तोता बेइमान कुतरै लोटन आम मैया गोदी के

ताल कहरवा

ठेका दुगुन (सा,रे, ग, ग, म, प)

														सा	सा
														मै	या
सा	रे	रं	ग	रे–	सा	रे	म	–	ग	रे	रे	ग	–	रे	–
गो	दी	के	ल	लन	वा	नौ	ने	s	रा	s	खि	यो	s	हो	s
ास	–	–	–	–	–	सा	सा								
मॉ	s	s	म	s	s	मै	या								
X				0				X				0			

अन्तरा

सा	–सा	सा	रे	सा	सा	रे	म	–	ग	–	रे	ग	–	रे	–
कौ	sना	s	ने	पा	ली	का	ली	s	को	s	य	ली	s	हो	s
सा	–	–	–	–	–	म	म	रे	म	म	म	मप	प–	पम	म
माँ	s	s	य	s	s	अ	रे	कौ	s	ना	s	पाs	ले	गंs	गा
ग	–रे	रे	सा	ग	–	ग	रे	रे	–रे	सा	सा	ग	ग–	–	गरे
रा	sम	तो	s	ता	s	बे	ई	मा	sन	कु	त	रे	sलो	s	टन
रे	–	–	–	–	–	सा	सा								
आ	s	s	s	s	म	मै	या								
X				0				X				0			

मोर पपीहा :–

कौना ने हरिआर सुअना , कौना के पपीहा मोर
बादर गरजै घनघोर, बिजुरी चमकै चारिऊ ओर
अरे जेठा तपै भारई बोलियो हो माय
मइया के हरियर सुअना लुगंरा के पपीहा मोर
बादर गरजै घनघोर बिजुरी चमकै चारिऊ ओर
जेठा तपै भारई बोलियो हो माय

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में

सा	सा	–	रे	सा	–	सा	सा	रे	–	म	–	ग	–	रे	सा
कौ	sना	s	के	ह	रि	य	ल	सु	अ	ना	s	रे	s	कौ	s
रेग	ग	गग	गरे	रे	–	सा	–	रेग	ग	गग	गरे	रे	–	सा	––
नाs	के	पपी	हाs	मो	sर	को	s	नाs	के	पपी	हाs	मो	र	बा	दर
रेग	ग	गग	रे	रे	–	सा	––	रेग	ग	गग	गरे	रे	––	रे	रे
गर	जे	घs	न	घो	र	वि	जुरी	चम	के	चाs	रऊं	ओ	sर	मा	इ
रे	–रे	–	ग	रे	सा	रे	म–	–	म	–	रे	ग	–	रे	–
जे	sठ	s	त	पें	s	भा	रइ	s	वो	s	लि	s	यो	हो	s
सा	–	–	–	–	–	सा	सा								
मा	s	s	s	s	s	मै	या								
X				0				X				0			

(संस्कार सम्बन्धी)

राजा दशरथ :—

राजा दशरथ सौबे सुख सेज कौशिल्या रानी पिंडरी मलै महाराज

हंस हंस पूछें राजा दशरथ घना कैसी अनमनी महाराज

भौतऊ है अन्न धन गउयें कि मौतऊ लक्ष्मी महाराज

सूनौ अजुध्या को राज अकेली संतत बिना महाराज

तुम राजा जैयो बजारें संतत मोल ले लियो महाराज

तुम रानी मूरख अजान कहाँ लौ समझाइयो महाराज

हाटन में सब कुछ विकाय संतत नई पाइयो महाराज

नगर को नौआ बुलइयो छुरा मंगवाइयो महाराज

चीरो अमागिन की कूखं राजा कहे गवांरिन महाराज

कासी पंडित बुलैयों बेद बचवाइयो महाराज .

पहलो पन्ना जब खोलो वॉच सुनवाइयों महाराज

नगर ना बाजे बधइया सखी ना गावें सोहरे महाराज

दूजो पन्ना जब खोलो बॉच सुनबाइयों महाराज

अहिरा ना लोई लगइयो मथनी नई धूमियो महाराज

तीजो पन्ना जब खोलो बॉच सुनबाइयो महाराज

राजा जनम के है भोगी बाउन हिरनी मारी है महाराज

सोने की हिरनी गढ़वायो रूपा के गवेलुआ महाराज

बन बन देव छुडवायं संतत तब होइ है महाराज

सहदेई लखना लुखरिया वाह्मी मंगवाइयो महाराज

घिस लुढिया बंटवाइयो. कटोरन छानियो महाराज,

पिय लई बाँट बडार तीनऊ रानी गर्भ से महाराज

भये हो नौ दस मास ललन चार हो गये महाराज

नगर बाजन लागी बधैंया संखी गावे सोहरे महाराज

गैया के गोबर मगांइयो अंगन लिपबाइयो महाराज

कांशी से पडित बुलाये बेद बचवाये है महाराज

बारा बरस के हौहे राम तब बन को जैहे रे महाराज

इतनी सुन राजा दशरथ पंलग पे पर रहे है महाराज

पाछूँ से गई कौसिल्या नाथ कैसे अनमने महाराज

बारो वरस के हौ है राम तबई बन को जैहे महाराज

बन को जैहे तो जान देओ लौट फिर आहै रे महाराज

मोरो मिट गयो बाँझ का नाम तुमारो बंस चलो महाराज

ताल दादरा

ठेका दुगुन में राग मिश्र शिव रजनी की छाया ध़, नि़, सा, रे, ग, म)

ध़	स	स	स	—	—	सा	सा	रे	ग	ग	म
रा	जा	s	द	स	s	र	थ	s	सो	वे	s
ग	म	ग	रे	सा	—	ग	म	ग	रा	सा	नि़
से	s	s	ज	s	कौ	सि	ल्या	s	रा	नी	s
ध़	—	—ध़	ध़ नि़	नि़	सा	सा	—	—	रे	—	—
s	s	पि	sड़	री	म	ले	s	s	म	हा	s
सा	—	—	—	—	ग	ग	म	रे	रे	सा	नि़
रा	s	s	ज	s	कौ	सि	ल्या	s	रा	नी	s
ध़	—	ध़	ध़	नि़	नि़	सा	—	—	रे	—	—
—	—	पि	ड़	री	म	ले	s	s	म	हा	s
सा	—	—	सा	—	—						
रा	s	s	ज	s	s						
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार भांति गाये जायेगें

कैसी मचल रही दाई अबध में कैसी मचल रही रें।

संतरंग चुनरी कौसिल्या लयें ठाड़ी वाई ना लैबे दाई अवध में.........

सौने को हार कैकेई लै आयी कूलौ मरोर गई दाई अवध में....

सौने की तिलरी सुमित्रा ले आई मुखई न बोलो दाई अवध में.........

थार भरी मुहरें राजा दसरथ दई तौऊँ ना माने दाई अवध में.......

नरा तुआये हम तवई छीन है दरसन दै रघुराई अवध में...............

रूप चतुर्भुज तब दरसाये सुध बुध भूल गई दाई अवध में........

दरसन कर पाये दाई बड़भागिन घर घर करत बड़ाई अवध में.........

ताल कहरवा

ठेका दुगुन राग आसावरी की छाया स, रे, ग, म, प, ध, नि

स	सप	प	—	प	पनि	ध	प	म	प	मध	प	ग	—	रे	सा
कै	ऽसी	ऽ	म	च	लऽ	र.	ही	दा	ऽ	ईऽ	अ	ब	ध	में	ऽ
सा	रेरे	म	—	प	पनि	–ध	प	प	—	—	—	प	—	—	—
कै	ऽसी	ऽ	म	च	लऽ	रऽ	ही	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0				X				0			

अन्तरा

प	प	ग	ममम	प	—	प	—	प	सां	सां	–सां	नि	ध	प	—
ऽ	स	त	रंग	चु	न	री	कौ	सि	ल्या	ऽ	लयें	ठा	ऽ	ड़ी	ऽ
सा	सप	—	प	प	पनि	ध	प	म	प	मध	प	ग	—	रे	सा
वा	ऽई	ऽ	ना	ले	ऽऽ	वे	ऽ	दा	ई	ऽऽ	अ	ब	घ	में	ऽ
सा	रेरे	म	—	प	पनि	ध	प	प	—	—	—	रं	—	—	—
कै	ऽसी	ऽ	म	च	लऽ	र	ही	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

झुला दे माई श्याम परे पलना

काये के तोरे पलना बनै है काये के फुंदना

रतन जड़ाव के चंदन पलना रेशम के फुंदना

काऊ गुजरिया की नजर लगी सो रोउत है ललना

राई कौन उसारे जसोदा हंसन लगे ललना

जौ मोरे लला को पलना झुलैहै देहों जडाऊं ककना

ताल कहरवा सा, रे, ग, म, मे, प

															सा
															झु
सा	रे	सा	नि	–	म–	म	म	ग	रे	गम	गरे	सा	–	–	सा
ला	दे	मै	या	s	श्या	म	प	रे	s	पs	लs	ना	s	s	झु
X				0				X				0			
अन्तरा															
स	–	ग	म	प	–	प	–	मे	प	मे	प	ग	मे	ग	–
का	s	हे	s	के	s	ह	रि	ब	ने	s	पा	s	ल	ना	s
ग	s	म	s	ग	रे	गम	गरे	सा	–	–	–	–	–	–	सा
का	s	हे	s	के	s	फुंs	दs	ना	s	s	s	s	s	s	झु
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

दशरथ जू की रनिया राम लयें कनियाँ

कवै भये राम कवै लछमनियाँ

संजा भये राम सवेरे लछमनियाँ राम लये.....

कौना के भये राम कौना लछमंनियाँ

कौशिल्या के राम सुमित्रा लछमनियाँ राम लगें.....

कौना घरी राम भये कौना लछमनियाँ

सुभधरी राम मूलन मे लछमनियाँ

ताल दादरा

ठेका दुगुन में (राग बिहाग की छाया) (ऩि,' सा, रे, ग, म, मे, प)

									–	सा	सा
									s	द	स
सा	रे	–	सा	ऩि	–	ऩि	सा	ऩि	सा	रे	–
र	थ	जू	s	की	s	र	नि	s	याँ	s	s
–	ऩि	सा	रे	ग	–	ग	सा	–	–	सा	सा
s	रा	म	ल	ये	क	नि	याँ	s	s	द	स
अन्तरा											
सा	–	–	ग	म	'ग	प	–	–	प	–	–
क	वै	s	म	ये	s	रा	s	म	s	क	s
मे	–	प	–	प	–	म	–	–	ग	–	–
वै	s	s	ल	छ	s	म	नि	s	याँ	s	s
ग	–	म	–	म	प	म	–	म	ग	रे	–
सं	s	जा	s	भ	ये	रा	s	म	भो	s	s
सा	रे	–	सा	ऩि	–	ऩि	सा	ऩि	सा	रे	–
रे	s	s	ल	छ	s	म	नि		यॉ	s	s
–	ऩि	सा	रे	ग	'–	ग	सा	–	–	सा	सा
s	रा	म	ल	ये	क	नि	याँ	s	s	द	स
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

जनक जू के महलन कैसी परी भीर

1. हरस रही मीर हुलस रही भीर — नाना चटा रये ललन खो खीर
2. काहे की विलिया काहे की खीर — सोने के विलिया इमरत खीर
3. काहे की चम्मच व काहे की खीर — चाँदी की चम्मच चांउर की खीर
4. रतन जड़ी चम्मच मेवन की खीर — मामा चटा रये ललन कौं खीर

ताल दादरा

ठेका दुगुन (राग देश की छाया) (सा, रे,ग, म, प, ध)

									–	–	ग
									ऽ	ऽ	ज
ग	ग	–	रे	–	–	सा	–	रे	सा	रे	–
न	क	ऽ	जू	के	ऽ	म	ह	ऽ	ल	न	ऽ
ग	ग	–	रे	रे	–	सा	–	–	–	–	सा
कै	ऽ	री	प	री	ऽ	भी	ऽ	ऽ	र	ऽ	ज
X			0			X			0		

अन्तरा

											सा
											ह
सा	सा	रे	रे	रे	–	रे	–	–	सा	–	रे
र	स	ऽ	र	ही		भी	ऽ	ऽ	र	ऽ	हु
ग	ग	–	ग	म	ग	रे	–	–	स	–	–
ल	स	ऽ	र	ही	ऽ	भी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
म	–	म	–	म	–	म	–	–	–	म	–
ना	ऽ	ना	ऽ	च	ऽ	टा	ऽ	र	ये	ल	ऽ
प	प	ध	प	म	–	म	प	ग	–	–	ग
ल	न	ऽ	को	ऽ	ऽ	खी	ऽ	ऽ	ऽ	र	ज
X			0			X			0		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

तीन तगा को डोरा री दमरू को सूत सुन भैया

तीन तगा को जनवा री कैसो मजबूत सुन भैया

मैले में विस्नू दूजे विरमा तीजे सूत संकर अवधूत सुन भैया

पैले तगा मे ओंकार हो दूजे में अगन सबूत सुन भैया

तीजे तगा मे नाग बास है चंद विराजे चौथे सूत सुन भैया

पॉचे सूत मे वितर विराजे प्रजापति है छटँये सूत सुन भैया

सांतये तंत अस्थान पवन को सूरज को आठों सूत सुन भैया

नमये तंत मे विश्व देवा हीरा कातें कन्या सूत सुन भैया

ताल कहरवा

राग झिंझोटी की छाया (ध़, सा, रे, ग, म, प)

सा	म	—	म	प	म	भ	—	ग	—	ग	रे	रे	सा	सा	सा
ती	न	s	त	गा	s	को	s	डो	s	रा	s	री	s	द	म
स	—	रे	—	रे	ग	ग	ग	रे	ग	रे	स	स	—	स	ध़
री	s	को	s	सू	s	s	त	सु	न	भै	s	या	s	द	म
स	रे	—	म	म	—	म	—	ग	ग	ग	रे	रे	स	स	ध़
री	s	को	s	सू	s	s	त	सु	न	भै	s	या	s	s	s
सा	रे	—	म	म	—	म	—	ग	ग	ग	रे	रे	स	स	ध़
ती	s	न	त	गा	s	को	s	ज	न	वा	s	री	s	कै	s
स	रे	रे	रे	ग	—	—	ग	रे	ग	रे	स	स	—	—	—
सो	s	म	ज	बू	s	s	त	सु	भै	s	या	s	s	s	
X				0				X				0			

अन्तरा

स	रे	–	म	म	म	प	ग	ग	रे	रे	ग	रे	सा	सा	–
पै	ले	ऽ	में	वि	स	नू	ऽ	दू	ऽ	जे	ऽ	वि	र	मा	ऽ
स	रे	रे	ग	ग	ग	स	ध	स	रे	रे	ग	ग	–	–	ग
ती	ऽ	जे	ऽ	सू	त	स	ऽ	क	र	अ	व	धू	ऽ	ऽ	त
रे	ग	रे	सा	सा	–	सा	ध	स	रे	रे	ग	ग	–	–	ग
सु	न	भै	ऽ	या	ऽ	शं	ऽ	क	र	अ	व	धू	ऽ	ऽ	त
रे	ग	रे	सा	सा	–	–	–								
सु	न	भै	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ								
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेगें

ऑधी और पानी को बन्द करत है

सो लज्जा के राखन हारे

पवन जूके हनुमत है रखवारे

1. हमरे गणेश बाबा ऐसे गरजत है

कि जैसे बजे इन्द्र नगारे पवन जू के

2. हमरे हरदौल लाला ऐसे गरजत है

कि जैसे बजे इन्द्र नगारे पवनं जू के

ताल दीपचन्दी

ठेका दुगुन में राग तिलक कामोद की छाया (प़, नि़, सा, रे, ग)

प़	प़	–	नि़	–	नि़	–	सा	–	–	सा	–	सा	–
आँ	s	s	धी	s	वै	s	ह	र	s	को	s	s	जे
सा	रे	–	सा	–	नि़	–	नि	सा	नि़	सा	रे	रे	–
बं	s	s	द	s	क	s	र	त	s	है	s	सो	s
नि़	सा	–	सा	–	सा	–	रे	ग	–	रे	–	सा	–
ल	s	s	ज्जा	s	के	s	रा	s	s	ख	s	न	s
सा	रे	–	सा	–	नि़	–	नि़	सा	नि़	सा	रे	रे	–
हा	s	s	रे	s	प	s	व	न	s	जू	s	के	s
नि़	सा	–	सा	–	सा	–	रे	ग	–	रे	–	सा	–
ह	नु	s	म	s	त	s	है	s	s	र	s	ख	s
सा	–	–	सा	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–
वा	s	s	रे	s	s	s	s	s	s	s	s	s	s
X			2				0			3			

सो आज मोरे राम जू खौ तेल चढ़त है

सो तेल चढ़त है फुलेल चढ़त है

सो सोने की विलयन तेल भराओ

हरदी के संग कैसो झलकत है।

ताल दीपचन्दी 5 स्वर सभी स्वर शुद्ध (ध़, ऩि, सा, रे, ग, म, प)

										—	—	ग	—
										s	s	सो	s
रे	रे	—	सा	—	ऩि	—	ध़	सा	सा	सा	—	सा	रे
आ	ज	s	मो	s	रे	s	रा	म	s	जू	s	कों	s
रे	म	ग	रे	—	सा	नि	सा	—	सा	सा	—	सा	ग
ते	s	s	ल	s	च	s	ढ	त	s	है	s	सो	s
X			0				X			0			

अन्तरा

ग	—	ग	रे	ग	सा	—	रे	ग	—	म	प	म	ग
ते	s	s	ल	s	च	s	ढ	त	s	है	s	फु	s
ग	रे	—	ग	—	म	—	ग	रे	ग	सा		—	ग
ले	s	s	ल	s	च	s	ढ	त	s	है		s	सो
X			0				X			0			

बैठे बैठे कौसिल्या की गोद राम चन्द्र दूल्हा बने

1. सीस बना के सेहरो सोहे

सो कलगी पे नाच रही मोर राम चन्द्र .....

ताल दादरा

ठेका दुगुन में (ध़, ऩि, सा, रे, ग, म, प)

									ग	म	—
									बै	ठे	s
प	—	प	—	म	—	ग	—	रे	म	म	गरे
बै	s	ठे	s	कौ	s	सि	s	ल्या	s	की	ss
सा	—	—	सा	—	रे	ऩि	—	—	सा	रे	—
गो	s	s	s	s	द	रा	s	म	चं	s	द्र
ग	म	ग	रे	सा	ऩि	सा	—	—	ग	म	—
दू	s	ल्हा	s	ब	s	ने	s	s	वै	ठे	s
X			0			X			0		

अन्तरा

नि	सा	–	ध	नि		सा	–	–	सा	–	–
शी	s	s	स	s	ब	ना	s	s	के	s	s
ग	रे	–	म	म	–	ग	रे	–	सा	–	–
से	ह	s	रा	s	s	सो	s	s	हे	s	s
ग	म	प	–	म	ग	ग	–	रे	म	ग	रे
क	ल	गी	s	पे	s	ना	s	च	र	ही	s
सा	–	–	–	सा	रे	नि	–	–	सा	रे	–
मो	s	s	s	s	'र	रा	s	म	चं	s	न्द्र
ग	म	ग	रे	सा	नि	सा	–	–	म	म	–
दू	s	ल्हा	s	ब	s	ने	s	s	बै	ठे	–

राजा दशरथ फूले ना समाय

लगुन आई हरे हरे लगुन आई मोरे अंगना

1. दादा सज गये दादी सज गई सज गई सकल बारात

मेरो बनरा ऐसे सज गयो जैसे सिरी भगवान – लगुन.............

ताल कहरवा

ठेका दुगुन में (राग पीलू की छाया)

														सा	सा
														रा	जा
नि	सा	ध	प	सा	सा	नि	नि	सा	–	–	स	ग	ग	ग	रे
द	स	र	थ	फू	ले	ना	स	मा	s	य	ल	गु	न	आ	ई
गम	मग	रेरे	स	ग	ग	ग	रे	रेम	मग	ग	रे	सा	–	सा	सा
हरे	sह	रेs	ल	गु	न	आ	ई	मोंs	रेs	अं	ग	ना		रा	जा
X				0				X				0			

अन्तरा

सा	सा	ध़ध़	प़प़	सा	–	–	–	रेम	मग	गरे	रेसा	सा	–	सा	–
दा	दा	सज	गये	दा	दी	सज	गई	सज	गई	सक	लंबा	रा	s	s	त
रे	म	म–	–	रे	म	म–	म–	–	म	म	ग	मप	पम	म	ग
मे	रो	वन	रा	ऐ	सो	सज	गओ	s	जै	से	सि	रीs	ss	म	ग
रे	–	सा	सा	ग	ग	ग	रे	गम	मग	रेरे	सा	ग	ग	ग	रे
वा	s	न	ल	गु	न	आ	ई	हरे	sह	रेs	ल	लु	नु	आ	ई
रेम	मग	ग	रे	सा	–	सा	सा								
मोs	रेs	अं	ग	ना	s	रा	जा								
X				0				X				0			

निर्गुण अध्यात्म संम्बधी :–

सपरन चली धोबिन दै टटिया

1. जाय जो पहुँची सतगुरू घाट पे

होई बहैं रे निरमल नदिया–

2. काये को पथरा काये को मुगरा

काय़े के बने पाँचऊ रसिया –

3. दया का पथरा धरम को मुगरा

पाप–पुण्य के पाँचऊ रसिया

4. नहाई धोय ठाड़ी भई धोबिन

होई पछाड़े पाचँऊ रसिया

5. तन मन से जब निरमल भई धोबिन

होई मिलें सतगुरू बढ़िया –

6. सतुगुरू स्वामी से पूँछन लागी

कैसे चढ़े जाये गगन घटिया

7. सतुगुरू स्वामी ने मंत्र दये है।

हंस हंस चढ़ जाओ गगन घटिया

ताल कहरवा (ठेका दुगुन में)

(राग तिलक कामोद की छाया)

														सा	नि
														स	प
सा	रे	रे	सा	सा	रे	ग	म	ग	रे	ग	रेसा	सा	–	सा	नि
र	न	च	ली	धो	s	बि	न	दे	s	ट	टिs	या	s	स	प
X				0				X				0			

अन्तरा

सा	–सा	–सा	रे	सा	–	रेग	'म	म–	म–	–म	ग	रे	–	ग	–
जा	ss	यs	जो	प	हुँ	चीs	s	सत	sगु	sरू	घा	s	ट	पे	s
प	–	प	प	प	ध	प	म	ग	रे	रे	सा	सा	–	रे	सा
हों	s	ई	ब	है	रे	नि	र	म	ल	न	दि	या	s	स	प
X				0				X				0			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जोयगें

षष्ठ अध्याय

बुन्देली लोक वाद्य

सृष्टि सृजन के साथ ही मनुष्य का जन्म हुआ। मानव का विकास उत्तरोतर हुआ है। मानव के सभ्य होने के साथ ही लोक का जन्म हुआ। सभ्यता के साथ लोक भी विकास के पथ पर मनुष्य के साथ–साथ चला प्रकृति से मानव ने सीखना प्रारम्भ किया था आदि मानव ने सूर्य से गर्मी, चन्द्रमा से शीतलता, सर्दी से ठिठुरता ग्रीष्म से तप्त व होने पर वर्षा के जल से शीतलता अधिक वर्षा होने पर कष्ट का अनुभव किया। पशु पक्षियों की आवाज बादलों की गडगडाहट कभी मन्द पवन तो कभी झझांवतो की आवाजों ने मानव को अनुकरण करने के लिये बाध्य किया होगा। अनुकरण की इसी प्रवृति के कारण भाषा से पहले स्वर का जन्म हुआ। उत्तरोतर विकास से भाषा तथा लोकगीत का जन्म हुआ, जो मानव के सुख दुख की अनुभूतियों की कथा ही नही सजीव चित्रण हैं उनमें बाहय आडम्बर नहीं है। हृदय की सीधे साधे उद्‌गार हैं उनमें लोक का हृदय का इतिहास प्रतिविम्वित होता हैं इनमें यर्थाथ है, कल्पना की उड़ान ना होकर स्वाभाविकता है भोलापन है निष्कपटता है सहजता है। अकृतिमता है जीवन का हर पहलू हैं जीवन से मृत्यु पर्यन्त तक का लेखा जोखा हें जिसमें प्रेम का आकर्षण है, श्रद्धा है, करूणा है, कोमलता है,। मानव ने प्रत्येक कार्य को अपनी रसानुभूति से गीत मय बना दिया। स्वरों की तमन्यता होने पर लय की उत्पत्ति होती है। श्रम से क्लान्त होने पर राही गीत गाता है। पशु चारण के समय चरवाहें के स्वर, सम्पूर्ण बन स्थली को गुंजायवान कर देता है। आटा पीसते समय चक्की की घरघराहट में स्वर तथा लय दोनों व्याप्त हैं। कोल्हू की चरमराहट, में स्वर भर कर रात्रि का सन्नाटे को भुला दिया जाता है। खेत काटते समय, धान रोपते समय गीत गाये जाने से नव स्फूर्ति का अनुभव होता है। जिनमें लय तो प्राकृतिक रूप से व्याप्त है। लय का प्राकृट्य कार्य होने वाले उपकरणों से होता है लय पर सम्पूर्ण प्रकृति विद्यमान हैं सूर्य, चन्द्र तारे , नक्षत्र, दिन, रात आदि एक निश्चित गति से एक दूसरे की प्रदक्षिणा कर रहे है। सम्पूर्ण प्रकृति निश्चित लय ताल, छन्द पर गतिमान है। लय की इसी सार्वमौमिकता ने गायन के साथ लय देने की महती आवश्यकता के लिये मनुष्य को विकल कर दिया फल स्वरूप उस समय उस स्थान पर जो उपलब्ध हुआ लय देने के लिये उसी का प्रयोग मानव ने प्रारम्भ कर दिया, कुछ नहीं मिलने पर कर ताल (हाथ से ताली बजाकर) से लयाघात प्रारम्भ कर दिया। इस क्रम में लकड़ी से लकड़ी, पत्थर

से पत्थर टकरा कर धातु से धातु टकराकर ताल की आवश्यकता की पूर्ति हुई। उत्तरोत्र विकास ने बाद्यो को जन्म दिया होगा, लोक को सहज जो वस्तु प्राप्त हुई उसी से वाद्य का निर्माण कर लिया। भिखमंगे काठकी लकड़ी के दो टुकड़ों को बजा कर लय साम्य स्थापित करते है। साधुओं ने चिमटा अपना लिया, तो धोबी जाति ने सूप और गागर बजा कर ताल वाद्यों की पूर्ति कर ली। गाड़ीवान बैलों के गले में बधें गलगले की ध्वनि से, स्त्रियाँ पैरों के पैंजना की ध्वनि से ताल देने का काम चला लेती है घड़ियाल के स्थान पर थाली ही बजा कर आरती सम्पन्न हो जाती है। ढेंकुली की छपछपाह स्वर सम्पन्न हो जाती हैं ढेंकुंली की छपछपाहट स्वर तथा ताल दोनों का काम चलाती है। चरवाहे नरकुल में छेद कर के स्वर की उत्पत्ति कर लेते है। इस प्रकार लोक गीत एवं वाद्य दोनों में समृद्ध होता है। अनादि काल से समाज रूपी रथ को चलाने के लिये दो पहिये के समान हैं लोक और वेद। लोक के अत्यधिक समृद्ध होने पर वेद, शास्त्र की रचना हुई "यह बात सर्व विदित हैं कि शास्त्रीय संगीत की उत्पति इसी लोक संगीत से हुई , यदि शास्त्रीयसंगीत की उत्पत्ति इसी लोक संगीत से हुई, तो निश्चय ही लोक संगीत अपने आप में पूर्ण होना चाहिये। लोक संगीत का निर्माण स्वाभाविक है इस प्रकार बना हुआ संगीत निशचित ही अपने आप में पूर्ण वस्तु हो जाता है वह मूल "लोक" रूप अधिक सुसंस्कृत और व्यवस्थित होता है"[1]। शास्त्रीय संगीत लोक संगीत की कुक्षि से जन्मा है। शास्त्र की दृष्टि से वत्रासुर संग्राम में रक्त से सनी मिट्टी से बने भाण्ड वाद्य में मृत वत्रासुर के चर्म को आच्छादित कर सर्बप्रथम ताल बाद्य का जन्म हुआ। भगवान शंकर के ताडंव पर ब्रम्हा ने उक्त वाद्य का वादन किया। विकास प्रक्रिया में आवश्यकताओं ने नवीन् वाद्यों को जन्म दिया। वैदिक काल से वर्तमान युग तक अनेकानेक वाद्यों का सृजन हुआ। वाद्यों की अविच्छिन्न परम्परा में विष्णु शंख धारण करते है। तो भगवान शंकर के हाथ में डमरू सुशोभित रहता हैं सरस्वती वीणा धारिणी है नारद की पहचान वीणा एवं करतार दोनों से है, गणेश मृदंग बजाते है तो कृष्ण को पर्याय मुरली है प्रजापति ब्रम्हा तो स्वयं ही व अवनद्य वाद्यों के निर्माता हैं फलतः वाद्यों की चिरन्तर धारा अनादि काल से चली आ रही है और इसका अविष्कार तथा विकास लोक जीवन में ही हुआ है। लोक संगीत ने कभी बन्ध ान स्वीकार नही किया न ही लोक वाद्यों ने बन्धन स्वीकार किया। वह तो ह्रदय के उद्गार है उन्हें

1—श्री कुमार गन्धर्व "भारतीय संगीत का मूलधार लोक संगीत" सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ 303, 304

वाह्य आडम्बरों की आवश्यकता नहीं है उनकी धुन और लय ही अभिभाज्य अंग है अधि ाकाशः लोकगीत 2/2, 3/3, 4/4 या 3/4,/3/4 की लय पर चलते हैं किन्तु कभी 3/2/2, 2/3/2/3 या 3/2/3/2 जैसे लय बॉट दिखायी पड़ते है। लोकगीतों में तीनों प्रकार की लय, (विलम्बित मध्य और द्रुत) का प्रयोग हुआ हैं अति विलम्बित लय का प्रयोग लोक संगीत को स्वीकार नही है।

बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में गीतों के अनुरूप काल, स्थान, जाति के अनुसार वाद्य में परिवर्तन होते रहे है। यहां कुछ वाद्य तो ऐसे हैं जिनका प्रयोग स्थान विशेष तथा समय विशेष में ही किया जाता है। "लोक जीवन में हमें वाद्यों के दो मुख्य स्वरूप मिलते हैं–प्रथम मनुष्य की क्रियायें वाद्य का स्वरूप धारण कर लेती हैं जैसे ढेकली के चलाने से उत्पन्न ध्वनि। इन क्रियागत ध्वनियें को हम सुविधा के लिए क्रिया–वाद्य का नाम दे सकते हैं। द्वितीय –दूसरे प्रकार के वाद्यों को हम वाद्यों के स्वरूप से ही सम्मुख लाते है –उदाहरण के लिए ढोल्लक। यदि हम इन वाद्यों के इतिहास को टटोलें तो हम इन प्रचलित वाद्यों के पीछे भी क्रिया को ही पायेगे। लोक वाद्य अपने उत्पत्ति काल मे ऐसे साधनों से उत्पन्न हुए जो प्रतिदिन के कार्यो में आते रहे। आज भी आसाम का अत्यधिक प्रचलित लोक वाद्य दो वांसों से बनता है जो बहुत मधुर ध्वनि उत्पन्न करता है। ये बांस लोक मानस के क्रिया अंग ही रहें होगें। लोक वाद्य संगीत के साथ संगत देने वाले उपकरण ही नहीं रह गये, अपितु वह स्वतंत्र रूप से भ ीबजाये जाने लगे और श्रोताओं को इन अर्थ हीन किन्तु अनुभुतिपूर्ण स्वरों में भी मानवीय संवेदनशीलता अनुभव होने लगी"। 1 इससे स्पष्ट हैं कि लोक वाद्यों के कुक्ष से ही शास्त्रीय वाद्यों का विकास हुआ है।

मध्यकालीन भारत में वाद्य यन्त्रों का उल्लेख हुआ है 2।

1–डॉ0 सत्या गुप्ता : खड़ीबोली का लोक साहित्य पृ0 158–59

2–"चतुर्भुज दास कथित 'खटऋतु की वार्ता' में 36 वाद्य–यंत्रों का उल्लेख हुआ हैं– बीना चीन, मुरली, अमृत कुण्डली, जलतरंग, मदनभेरी, धौंसा, दुन्दुभी, निसान, नगाड़ा, शंख, घंटा, मुहचंग, सिंगी, खंजरी, ताल, षटताल, मंजीरा, मुहरि, झालर, ढोल, ढप, डिमडिम, झांझ, मृदंग, गिड़गिड़ निाक, रबाब, जंत्र, शहनाई, श्रीमण्डल, सांरगी, दूधारी, करताल, तुरही तथ किन्नरी"।

–प्रभु दयाल मीतलः अष्टछाप परिचय, द्वितीय संस्करण, पंचम परिच्छेद–अष्टछाप का संगीत (अष्टछाप के वाद्य यंत्र) पृ0 364।

इन वाद्यों में अधिकाशं लोक वाद्य है जो किंबहुना आज भी प्रचलित हैं। संगीत कुल–भूषण पं0 तानसेन ने समसत वाद्यों को वर्गीकृत करते हुए उनकी बनावट तथा विशेषताओं को निम्न प्रकार से छन्दोबद्ध किया है–

तत को पहिले कहत हैं, वितत दूसरों ठान।
तीजे धन चौथे सिखर, तानसेन परमान।
तार लगे सब साज के, सो तत ही तुम मान।
चरम मढ़यों जाको मुख रवि ततलुक है बखान।।
कंस ताल के आदि दे, घन जीय जानहु मीत।
तानसेन संगीत रस बाजत खिर सुनीत।। 1

यद्यपि संगीत मार्तण्ड पं0 तानसेन का उपर्युक्त वर्गीकरण शास्त्रीय वाद्यों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है परन्तु इसकी सार्वभौमिकता ने समस्त (शास्त्रीय एवं लोकवाद्य) वाद्यों के अपने पाश में आबद्ध कर लिया है। अतः बुन्देलखण्ड मे प्राप्त लोक वाद्यों का उपर्युक्त कोटियों के प्रकाश में अध्ययन करना समीचीन जान पड़ता है।

(क)तंतु या तंत्री वाद्य

तार या तंतुओं से बने होने के कारण इसे 'तंतु या तंत्रीवाद्य' की संज्ञा से अभिहित किया गया है इसकी बनावट तथा विकास की सम्भावनाओं पर अभिमत स्थिर करते विद्वानों का निष्कर्ष है कि– ''मनुष्य कृषक बनने के पूर्व आखेटक था। इस आखेटक के पास अन्य अस्त्र शस्त्रों के अतिरिक्त घनुष भी था। वाण छोड़ते समय धनुष की डोरी में कम्पन होने से जो ध्वनि उत्पन्न हुई होगी, उसको उसने अपने संगीत में सम्मिलित करना चाहा होगा 2।और यही आधार तंत्री वाद्य के प्रादुर्भाव का। बुन्देलखण्ड में सांरगी, तंबूरा, (इकतारा) रेकड़िया, डुगडुगी आदि लोक वाद्यों के रूप में प्रचलित है।

1–तानसेन कृत 'संगीतसार' –अथ बाजे भेद नामान्। उद्धत डॉ0 सूरज प्रसाद अग्रवाल : 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि', प्रथम संस्करण पृ0 362

परिशिष्ट–तानसेन की रचनाएं।

2–श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग : सम्पादक संगीत पृ0 160।

1–सारंगी–

यह तंतु या तार वाद्य है। सागवान की लकड़ी से बनी सारंगी में 26 तार होते है जो इसके माथे में स्थित खूंटियों से बंधे होते है। ऊपर की मोटी ताँतें बकरी की आंतों कीबनी होती है। पीतल, ताँबे या स्टील की बनी तेरह तुरमें को चार बड़ी खूंटियों मेंबांध दिया जाता है। घोड़े के बालों से बंधे गज (धनुष) द्वारा इसे बजाया जाता हैं। वैसे तो यह जोगी जाति का विशेष वाद्ययंत्र है फिर भी लोक तथा शास्त्रीय संगीत में समान रूप से समादृत है।

'सारंगी'
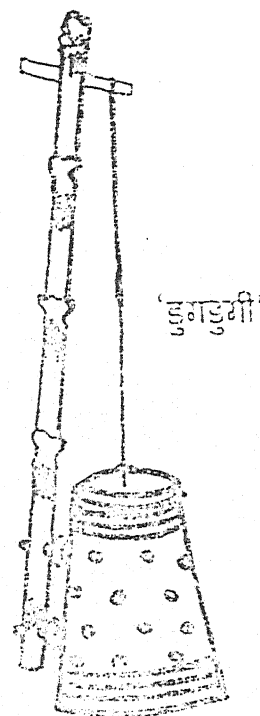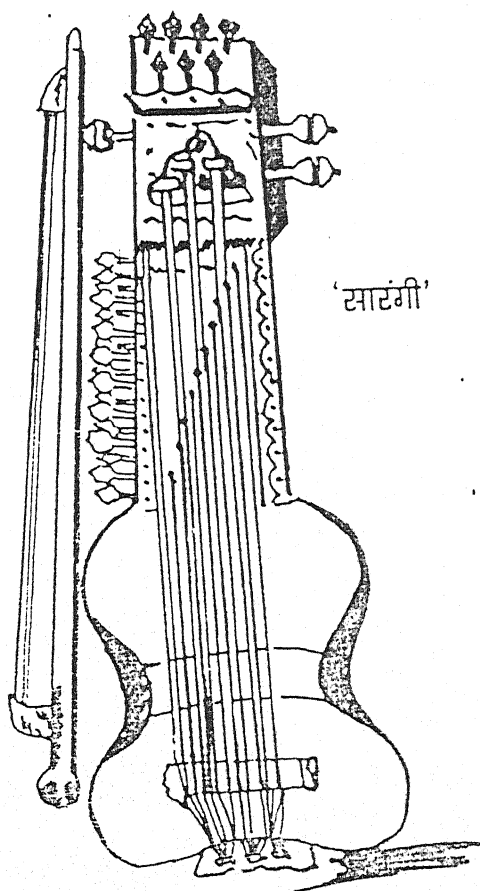
'डुगडुगी'

2–डुगडुगी :–

यह तंतु वाद्य इकतारा जैसा होता हैं। इकतारे में जहां तुम्बी का प्रयोग करते हैं, इसमें टीन के डिब्बे का। टीन के डिब्बे के बीच एक डेढ़ फुट लम्बा बांस का टुकड़ा लगा दिया जाता है। बांस के ऊपरी हिस्से में एक खूंटी लगी होती है तथा उस खूंटी से डिब्बे के बीच एक लोहे का तार कसा होता है जिसे उंगलियों से बजाते है इसकी ध्वनि उत्यन्त मधुर होती है। सस्ते इस वाद्य को बुन्देलीजन बड़ी तन्मयता से बजाते है।

3–रेंकड़िया: –

यह अति प्राचीन तंतु वाद्य हैं बुन्देलखण्ड मेंइसे रू–रू के नाम से जाना जताा है। नारियल के आधे हिस्से को काट कर उस पर चमड़ा चढ़ा दिया जाता है। नारियल के खोल में लगभग एक से डेढ़ फुट लम्बे वांस के टुकड़े को लगा दिया जाता है। बांस के ऊपरी खूंटी से नारियल तक घोड़े के बाल बंधे होते है तथा एक पतला तार भी बंधा होता है। चर्म –अवनद्ध हिस्से के बीच एक लकड़ी का टुकड़ा लगा होता है जो इस वाद्य को चढ़ाने –उतारने के काम आता है। इसको घोड़े के बालों से बधें गज से सारंगी जैसा बजाया जाता हैं। बुन्देलखण्ड में इसका उपयोग लोक गाथाओं को गाते समय किया जाता है। ढिमरियाई लोक नृत्य के साथ भी इसे बजाते है।
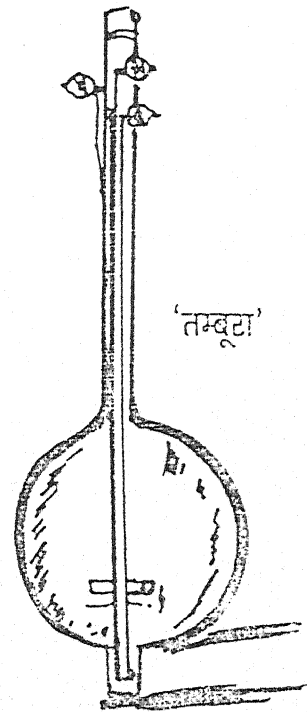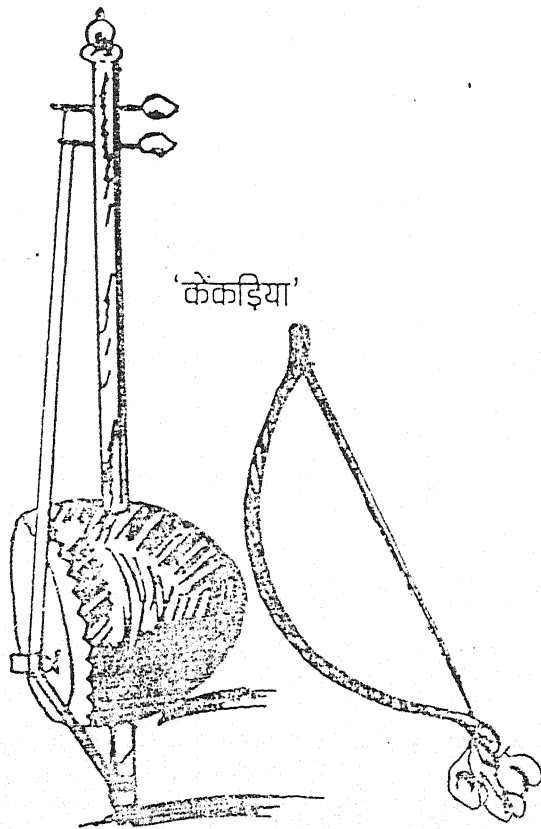
4–तंबूरा (इकतारा)

औसत गोल कद्दू या तुम्बे के खोल मे लगभग दो या ढाई फुट लम्बा एक बांस का डंडा लगा दिया जाता है। तुम्बे के ऊपरी भाग को काट कर बकरी के चमड़े से मढ़ दिया जाता है। वांस के ऊपरी हिस्से में लकड़ी की खूंटी होती है। उस खूंटी से लेकर वांस के निचले हिस्से में एक तार

बांध दिया जाता है। तार को ऊपर वाली खूंटी से चढ़ाया, उतारा जाता है तथा उंगलियें से तानपूरा जैसा इसे बजाया जाता है। एक तार वाले को इकतारा तथा चार तार वाले को चौंतारा या तंबूरा कहा जाता है। बुन्देलखण्ड में साधु –संत तथा जोगी भजन गाते समय इसे बजाते है।

'एकतारा'
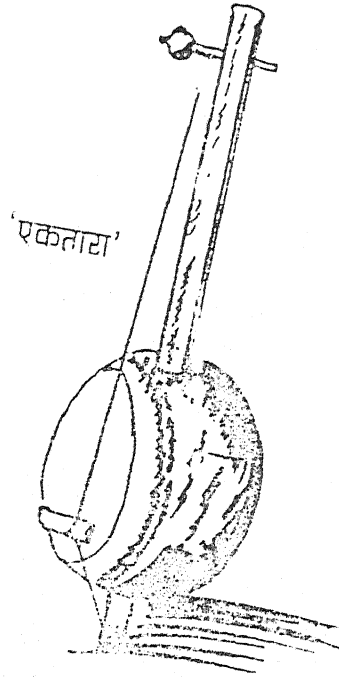
(ख) अवनद्ध – वाद्य

अवनद्ध का शाब्दिक अर्थ है चारों ओर से छाया या मढ़ा हुआ । जो वाद्य यंत्र अन्दर से खोखला तथा ऊपर या मुख पर चमड़े मढ़े होते हैं उन्हें अवनद्ध अथवा वितत वाद्य कहते है। बनावट के अनुसार इनमें एक अथवा दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है। इन वाद्य–यन्त्रों को हाथ या किसी दूसरी वस्तु की सहायता से बजाया जाता हैं बुन्देलखण्ड में प्रचलित अवनद्ध लोकवाद्यों में ढोलक, ढोल, ढपल्ला, ढपली, ढप, ढाक, मृदंग (पखावज) डमरू, डहरू, नगाड़ा, नगड़िया, खंजड़ी, तांसा, चंग, नौबत, धौसा, नाहर धैकंनी, आदि उल्लेखनीय है।

1–ढोलक :–

"गायन के पीछे ढुलकती हुई चलने के कारण इस वाद्य ने ढोलक का सम्बोधन पाया"1

1–के वासुदेव शास्त्री, संगीत–शास्त्र' पृ0 282।

बुन्देलखण्ड के लोकवाद्यों में सर्वप्रचलित तथा सर्वप्रिय लोकवाद्य है। इसका प्रयोग लोकगीतों के गायन में स्त्री–पुरूष समान रूप से करते है। लोक जीवन में इसकी उपयोगिता सार्वधिक हैं जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त समस्त संस्कारों के अवसर पर इसका वादन किया जाता है।

ढोलक शीशम, सागवान, आम या बीजा की लकड़ी का खोल होता है जिसका दाहिना मुख, बायें मुख की अपेक्षा व्यास में कुछ छोटा तथा बीच में अपेक्षाकृत उठा होता है इसके दोनों पाशर्वो में बकरी काचमड़ा मढ़ा होता है। वायीं ओर का चमड़ा दायीं ओर की अपेक्षा कुछ मोटा होता हैं सूत की डोरी से बायां तथा दायां मुख आपस में कसा होता है। रस्सी पर लगे सूत, लोहा या
या पीतल के छल्लों की सहायता से इसे चढ़ाया जाता है। ढोलक के मुख पर स्याही लगी होती हैं। इसे दोनों हाथों से बजाते है। इसकी ध्वनि बहुत दूर तक जाती है।

'ढोलक'

'ढप'
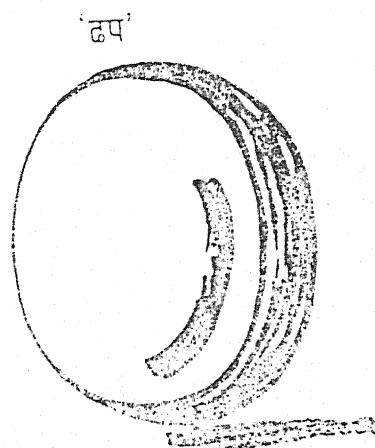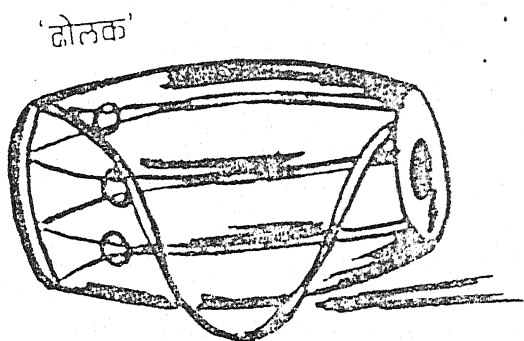
2–ढप (डफ):–

इसका निर्माण लकड़ी के गोल घेरे पर एक ओर उड़द की दाल से बकरे या भैंस का चमड़ा चिपका कर किया जाता हैं। भक्ति से संबंधित गीतों तथा मोहम्मदीय त्योहारों में इसका प्रयोग होता हैं।

3–ढपली :–

यह ढपले से अपेक्षाकृत छोटी होती है। इसे ढपलिया भी कहते हैं इसका गोल घेरा लकड़ी या स्टील के चादर से निर्मित होता है।
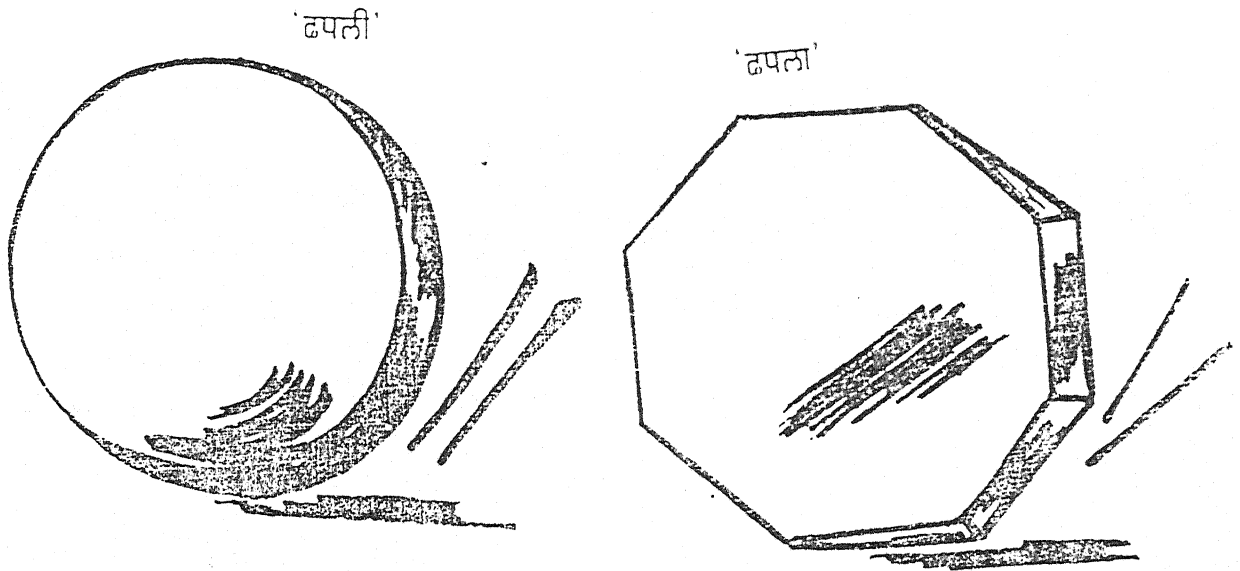
4–ढपला :–

पूर्वी उत्तर–प्रदेश (भोजपुरी–क्षेत्र) में इसको 'डफरा' कहते है। यह चमार–जाति का मुख्य लोकवाद्य है। जिसे मांगलिक अवसर पर गीत–नृत्य के साथ बजाया जाता है। यह अष्टकोणीय या षटकोणीय होता है,, यह आठ या छः अंगुल बराबर लम्बाई तथा चौड़ाई एवं कुछ कम मोटाई की लकड़ी की पटरियों से अष्ट या षटकोणीय बनाया जाता है। यह एक ओर बकरे के चमड़े से मढ़ा होता है तथा दूसरी ओर तांत से जालीनुमा बुना होता है । वादक के दाहिने हाथ में सीधी लकड़ी तथा बांये हाथ में बांस की पतली पनच होती है। इसको चढ़ाने के लिए धूप या आग दिखाई जाती है बुन्देलखण्ड में यह धार्मिक अवसरों तथा संस्कारों पर बजाया जाता है। ढपले पर बजता 'कहरवा' ताल सुखद लगता है।

5–ढोल :–ढोलक का बड़ा रूप ढोल कहलाता है। इसका मुंह ढोलक की अपेक्षा चौड़ा होता है यह बकरे अथवा भैंस के चमड़े से आच्छादित होता है यह टेढ़ी मुंहदार बेंत या लकड़ी की सहायता से बजाया जाता है। यह रामदल, अखाड़े धार्मिक या सांस्कारिक अवसरों पर बजाया जाता है। मोहम्मदीय –मुहर्रम के त्योहार का यह मुख्य वाद्य है।
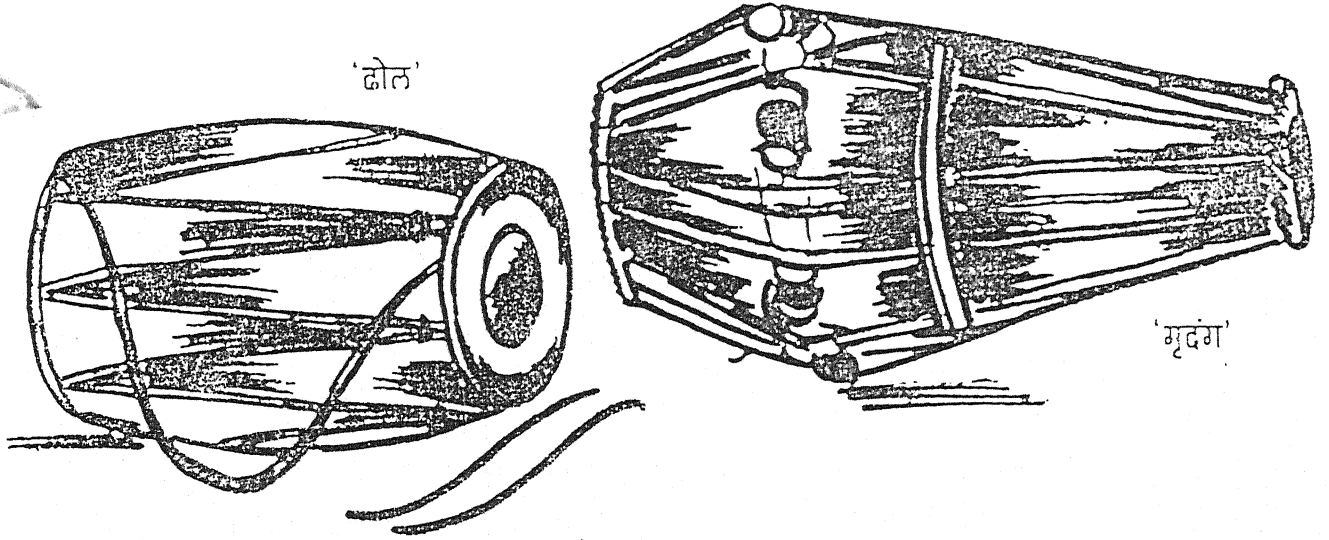
6–मृदंग (पखवज) :–

मृदंग भारत का अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य है। इसकी प्राचीनता को रेखांकित करते हुए 'श्री नारायण गर्ग' ने लिखा है – "यह भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के 'पुष्कल' वाद्य 'परववज' का अपभ्रंश है जो कालान्तर में 'पखावज' बन गया।[1] प्राचीन ग्रन्थों में मृदंग आदि अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति केसंबंध में अनेक आख्यान प्राप्त होते है। एक मत के अनुसार शिव ने त्रिपुरासुर विजय पर जो नृत्य किया, उसमें संगीत देने के लिस ब्रह्मा ने एक अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया, जिसका ढ़ांचा मिट्टी का था, अतः उसे मृदंग कहा गया।' शिव–पुत्र गणेश ने सर्वप्रथम इस वाद्य को बजाया।"[2]

मृदंग या पखावज ढोलक जैसा ही होता है। यह शीशम, आम, सागौन, बीजे की लकड़ी का लगभग 20 इंच या दो फुट का खोल होता है। बांए मुंह की अपेक्षा दाहिने मुंह का व्यास छोटा होता हैं। तथा बीच का व्यास अधिक होता है दोनों मुंह बकरे के चमड़े से आच्छादित होते हैं। छोटे मुख

1–श्याम सुन्दर, 'बुन्देली –फाग–साहित्य' पृ0 66

2–सम्पादक –लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत मासिक पत्रिका अप्रैल 1958, पृ0 36

की ओर स्याही लगी होती है। तथा बड़े मुख की ओर गुंधा हुआ आटा स्वर ऊंचा –नीचा करने के लिए आवश्यकतानुसार बजाते समय पानी से चिपका दिया जाता है। इसके ऊपर रस्सी (बद्धी) में लकड़ी के गुटके लगाए जाते है। जो इसके चढ़ावे में सहायक होते है। बुन्देलीजन आल्हा, फाग, राई, देवी की भगतें कांडरा, जवारे आदि गीतों के साथ संगीत के लिए इसको बजाते है। यह लोक तथा शास्त्रीय –संगीत दोनों में समान रूप से समादृत है।

'ढाक'
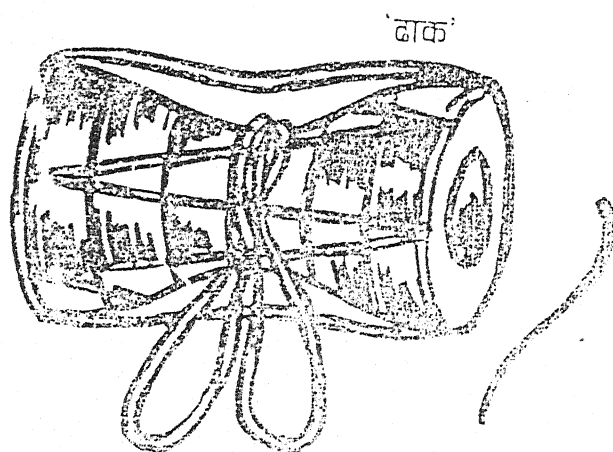
7—ढाक :—

"कदाचित् इसका मूल 'डहका' रहा होगा। इसे 'डफ' का बड़ा रूप भी कहा जा सकता हैं। 1 यह 'डमरू' या 'हुड़क' जैसे आकार –प्रकार का तथा उसमें बड़ा होता हैं यह पीतल की खोल, जिसके दोनों मुंह पर बकड़े का चमड़ा रस्सियों की सहायता से कसा होता हैं। बजााने वाला बैढ़कर दोनों पंजों के ऊपर कपड़ा रख, इसे रखता हैं तथा दोनों पैरों के अंगूठे में इसके ताने–बाने की रस्सी को फंसा लेता हैं। बीच की बड़ी रस्सियों को दोनां घुटनों मे डाल देता हैं। पतली घुमावदार लकड़ी के चमड़े पर आघात करते हुए पंजों में फंसी रस्सी को नीचे–ऊपर करता जिससे घुटनों में फसी रस्सियों में खिंचाव के कारण गुंज पैदा होती हैं इस वाद्य का प्रयोग कारस देव की गोंटें, कन्हैया गाते या 'भगत' लोग अपने 'इष्ट' को प्रसन्न करने के लिए करते हैं। 'फाग' गाने में भी इसका उपयोग होता हैं।

8—हुड़क :—

हुड़क की बनावट ढाक व डमरू की तरह ही होती है। एक ओर से हाथ से बजाने के कारण यह इन वाद्यों से भिन्न होता है। ढाक की रस्सी को जहां पैर के पंजों तथ घुटने में लगाकर लकड़ी से बजाते है। वही इसकी रस्सी को बांये कन्धें में फंसाकर तथा वांये हाथ से इसे बीच में पकड़कर दाहिने हाथ से बजाते है। इसे 'देहकी' भी कहते है। बुन्देलखण्ड के कहार के लोगो का यह प्रिय वाद्य है।

'हुड़क'

'डमरु'
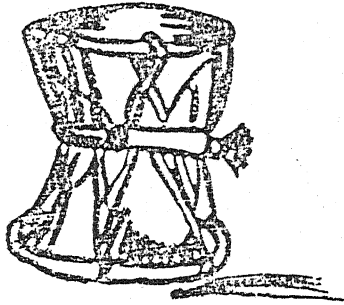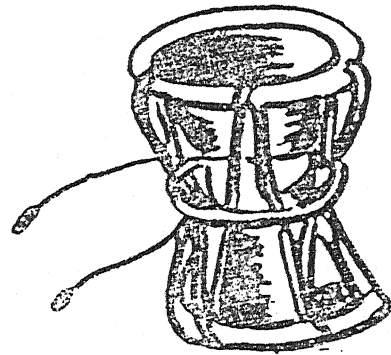
9—डमरू :—

उमरू शिव का पर्याय है अतः इसकी प्राचीनता स्वयंसिद्ध हैं। इसी के अन्य अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति मानी जाती है। इसका आकार—प्रकार ढाक जैसा होता है लेकिन ढाक से यह छोटा होता हैं। इसके दोनों मुखों पर बकरे काचमड़ा रस्सियों की सहायता से मढ़ा होता है। बीच का भाग संकरा तथा दोनों मुखों पर क्रमशः इसकी गोलाई बढ़ती जाती है। बीच में दो रस्सी की लड़ी, जिसके ऊपरी भाग पर गांठ बंधी होती है । हाथ हिलाने पर ये गांठें चमड़े से टकराती है तथ डम—डम—डम—डम की आवाज होती है। यह शिव मंदिरों में आरती के समय घंटा—घड़ियाल शंख आदि के साथ बजाया जाता है। बंदर, भालू नचाने वाले तथा मदारी (जादूगर) इस वाद्य का उपयोग करते है।

10—डहरू :—

बुन्देलखण्ड के झांसी तथा सागर क्षेत्र के बाल्मीकि जाति के लोग इस अवनद्ध वाद्य का उपयोग करते है। लकड़ी के खोल पर दोनों तरफ कनेर की लकड़ी में चमड़ा मढ़ा यह वा़ देखने में ढाक जैसा ही होता है एक हाथ से इसकी रस्सियें का पकड़कर खिंचाव पैदा करते हैं तथा दूसरे हाथ से मेंहदी के अर्द्धचन्द्राकार लकड़ी से इसे बजाते है।
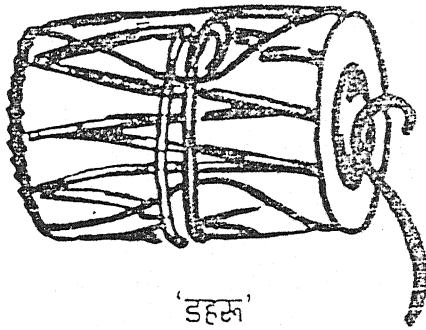
'डहरू'
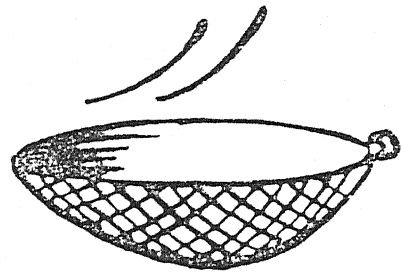
'तांसा'

11— तांसा :—

यह प्रायः मिट्टी, पीतल, तांबे या लोहे की चार का तसलेनुमाहोता है इसके ऊपरी भाग पर चमड़ा मढ़ा होता है। जिसे रस्सी या तांत की सहायता से कसा जाता है इसे बांस की खपंच्चियों से बजाते है इसकी आवाज तेज तथा कर्कश होती हैं। जो बहुत दूर तक सुनाई पड़ती हैं बुन्देलखण्ड मे यह वैवाहिक तथा धार्मिक अवसरों और मुनादी के लिए बजाते है।

12—नाहर—धौंकनी :—

यह मिट्टी के मटके के मुंह पर चमड़े से आच्छादित होता हैं। इसके मुंह के बीचों बीच में एक छेद करते हैं। जिसमें मोर के पंख 'को जड़ की ओर से डाल देते हैं पानी से गीले हाथ से मटके के मुंह के पास से मोर के पंख को ऊपर की ओर सरकाते हैं। इस क्रिया से उसमें से दहाड़ने की जैसी आवाज निकलती हैं। नाहर की दहाड़ जैसी ध्वनि निकलने के कारण कादाचित् इसे 'नाहर—धौंकनी' कहते हैं। बुन्देलखण्ड में तन्त्र—मन्त्र तथा आधि भौतिक शक्तियों की पूजा —उपासना

करने वाले लोग इसे बजाते है। इसकी आवाज भयानक तथा डरावनी होती है।
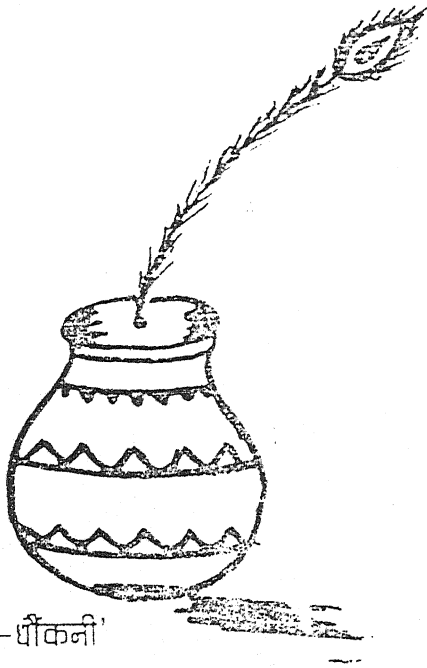
'नाहर–धौंकनी'
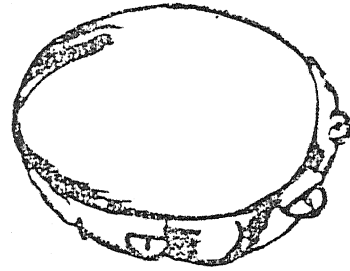
'खंजरी'

13—खंजड़ी :—

यह लकड़ी के 6 से 8 इंच व्यास का खोल होता है। जिसकी चौड़ाई 2 से 3 इंच तथा मोटाई आधा से पौन इंच तक होती है। इसके एक ओर 'गोह' का चमड़ा मढ़ा होता है। चोड़ाई वाले हिस्से में तीन—चार जगह घुंघरू या धातु के छल्ले होते है इसे बांए हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से बजाते है । बुन्देलखण्ड में इसका वादन भजन तथ ढिमरियाई —रावला नृत्यें में किया जाता है, यह मूल्य तथा वादन दोनों ही दृष्टि से सस्ता वाद्य है।

14—घौसा :—

यह 'नौबत' जैसे ही आकार—प्रकार का लेकिन उससे छोटा होता है मिट्टी, तांबें या पीतल के नादनुमा खोल पर मोटा चमड़ा मढा होता है। इसे दो दण्डों की सहायता से बजाते हैं। यह मंदिरों में आरती के समय बजाया जाता है।
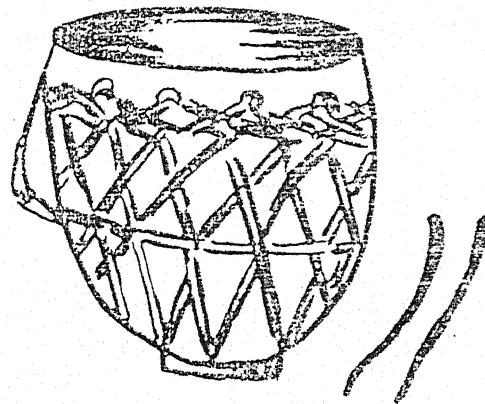
'घौंसा'

15—नगड़िया :—

यह मिट्टी की कटोरेनुमा आकार जैसी होती है। इसके मुंह पर चमड़े को तांत की सहायता से कसा जाता है। यह आकार—प्रकार में नगाड़े जैसी होती है। लेकिन उससे आकार में कुछ छोटी होती है। इसे लकड़ी की डंडियों की सहायता से बजाते हैं। इसे चढ़ाने के लिए आग याधूप दिखाते है तथा उतारने के लिए इसके मुंह को गीले कपड़े से पोंछते है। बुन्देलखण्ड में इसका प्रयोग संस्कारिक अवसरों, देवी—पूजन, भगतें, फागें, राई, दिवारी, जवारे तथा कजरियो आदि के अवसरों पर किया जाता है।
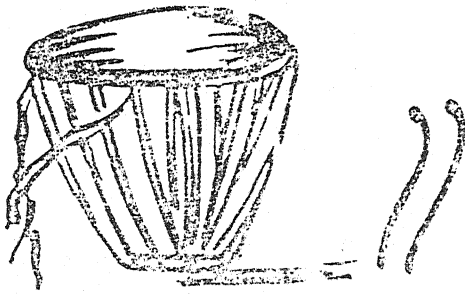
'नगड़िया'

'चंग'

16—चंग :—

'चंग' बुन्देलखण्ड का अत्यन्त प्रिय वाद्य है यह पीतल, तांबा अथवा निकल का गोल घेरा होता है इसके एक ओर चमड़ा मढ़ा होता है, जिसे धातु के हुकों द्वारा फंसाया जाता है। इस पर दाहिने हाथ से थाप देते है तथा बाएं हाथ की अंगुलियों में पीतल या लोहे के छल्ले से मेखले पर आघात करते है। 'ख्याल' व 'लावनी' गायकों का यह प्रिय वाद्य है।

17—नगाड़ा तथा डिग्गी :—

यह नौटकी में बजने वाला मुख्य वाद्य है। यह 'नॉद' के आकार का मिट्टी या लकड़ी का बना होता है। इसके ऊपरी भाग पर तांत की सहायता से चमड़ा मढ़ा होता हैं। जिसे डंडियें की सहायता से बजाते है। बोल निकालने के लिए 'टिमकी के आकार तथा उससे कुछ गहरी चमड़ा मढ़ी डिग्गी होती है जिसे नगाड़े के पार्श्व में रखकर, नगाड़े तथा डिग्गी को इंड़री पर थोड़ा तिरछा रखकर

बजाते है। डिग्गी , नगाड़े की सहायिका होती है इसको चढ़ाने के लिए आग पर सेंकते है। नगाड़े और डिग्गी की आवाज बहुत दूर तक सुनाई पड़ती है।
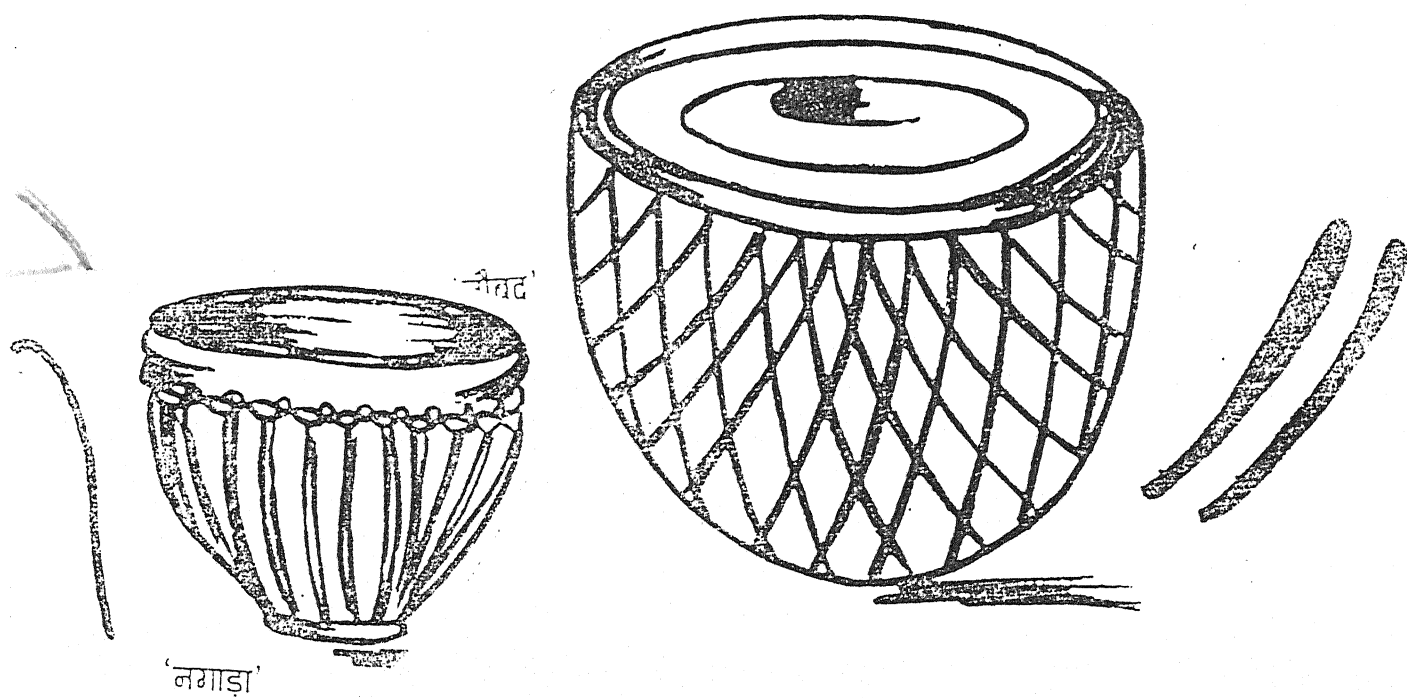
18—नौबत :—

मिट्टी , पीतल या तांबें के नॉदनुमा काफी बड़े खोल के मुंह पर मोटा चमड़ा मढ़ा होता है। जिसे दो डमडों से बजाया जताा है। बुन्देलखण्ड में आरती केसमय मंदिरों में इसे बजाया जाता है। इसकी आवाज गम्भीर होती है। राजा—महाराजाओं के महलों तथा युद्ध के अवसरों पर इसका वादन किया जाता था। इससे इसकी प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

(ग)'घनवाद्य'

आपस से टकरा कर बजाने के कारण इसे घनवाद्य कहा जाता हैं। इसका एक नाम 'तालवाद्य' भी है। इसे 'आधासाज' कहा जाता है। बुन्देलखण्ड में झांझ, मंजीरा,खड़ताल, चिमटी, चटकोला,घुंघरू , लोटा, घड़ा आदि धनवाद्य लोकवाद्य के रूप में प्रयोग किये जाते है।

1—खड़ताल :—

'खड़ताल' शब्द 'करताल' से बना है। लगभग 9, 10 इंच लम्बे तथा 2, 2½ इंच चोड़े

लकड़ी के दो टुकड़े होते है जिसके ऊपर नीचे के चौड़ाई वाले भाग को लगभग 1, 1½ इंच लम्बा काट देते है। इसमें लोहें, पीतल के छल्ले होते है। बांए वाले टुकड़े के मध्य अंगूठा तथा दाहिने वाले टुकड़े के मध्य हाथ की शेष चारों अंगुलियों को डालने की जगह बन जाती है। अंगूठे तथा अंगुलियों में पहने इन टुकड़ों को आपस में टकराते है जिससे छन–छन की ध्वनि होती है।

'करताल'
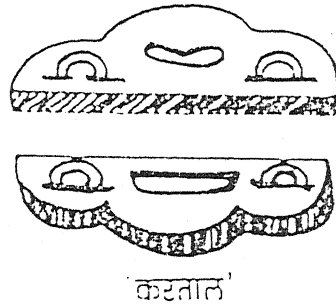
2–झांझ :–

'झांझ' अत्यन्त प्राचीन ताल–वाद्य हैं। इसका उल्लेख भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, बौद्ध –साहित्य, रामायण, महाभारत आदि पुस्तकों में 'झर्झर' केरूप में मिलता हैं। यह मंजीरें के आकार–प्रकार का, लेकिन इससे बहुत बड़ा होता हैं। इसका व्यास आठ अंगुल से लेकर सोलह अंगुल तक होता है। पीतल अथवा कांसे से बने इस बाद्य के मध्य गहराई वाले भाग में छेद होता हैं जिसमें डोरी डालकर गांठ बांध दी जाती हैं। बाहरी डोरी में कपड़े को मोटा बांधकर हाथ में पकड़ने योग्य बना लिया जाता हैं। दोनों हाथों से झांझ के जोड़े को टकराकर ध्वनि पैदा की जाती हैं। इसका उपयोग आल्हा, फाग तथा भजन में बुन्देली गायक करते है।

'झांझ'
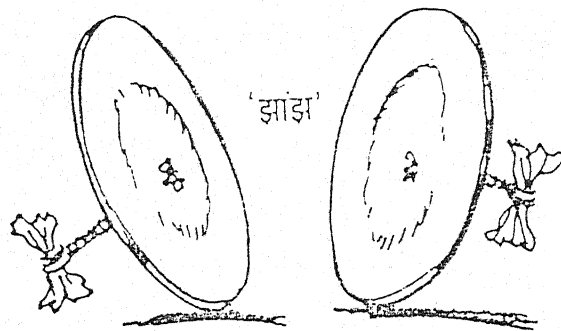
3—चिमटाः—

अधिकाशतः ढलाई द्वारा तैयार किया गया लोहे का बना हुआ ये घन वाद्य इसका आकार चिमटे की तरह होता हैं। इसके नीचे के सिरे में एक गोल लोहे का कड़ा लगा रहता हैं। बजाते समय इसी कड़े से चिमटे पर आघात करते है।

'चिमटा'

'घुंघरू'
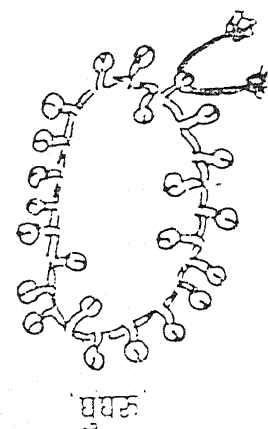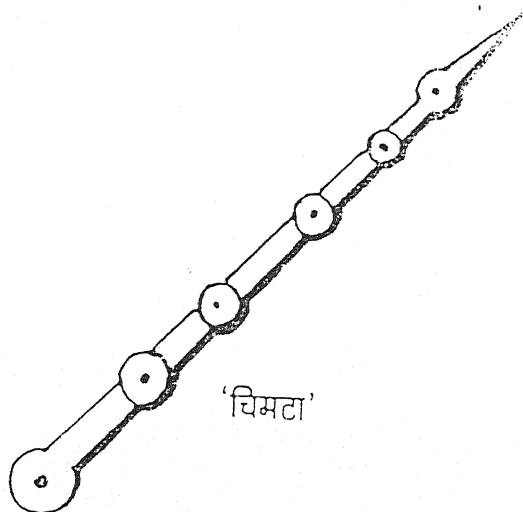
4—घुंघरू :—

घुंघरू कांसे की धातु से बने गोल तथा अन्दर से पोले होते है। इसके अन्दर धातु का ही एक कंकड़ रहता हैं, जो कि बजने पर टकरा कर मधुर ध्वनि उत्पन्न करता हैं । इन घुंघरूओं को डोरी में पिरोकर, चमड़े या कपड़े के पट्टे पर टांक कर पैर में बांधने योग्य बना लेते हैं। कई वादक हाथ में बांध कर कई वाद्य यंत्रों जैसे ढोलक , खंजड़ी आदि को भी बजाते हैं।

1—(क) गीतावली बाल काण्ड पद —2

(ख)मंजीरा , दे0 नन्द दास ग्रन्थावली रास पंचाध्यायी पद 192।

5—मंजीरा :—

'मंजीरा' प्रसिद्ध ताल—वाद्य है। राम तथा कृष्ण—काव्य में इस वाद्य का उल्लेख हुआ हैं। 1 समान्यतया चार अंगुल व्यास छिछला कटोरनुमा गोलाकार यह वाद्य फूल, पीतल, कांसा तथा अष्ट धातु का बना होता हैं। गहराई के बीचोंबीच एक छिद्र होता हैं जिसमें सुतली या डोरी पिरोई जाती हैं। इसकी डोरी का हाथ मे लपेटकर जब दो मंजीरों का आपस में टकराकर बजाते हैं तो मधुर ध्वनि उत्पन्न होती हैं। बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का उपयोग भजन , आल्हा , फाग आदि गीतों के गायन में किया जाता है।
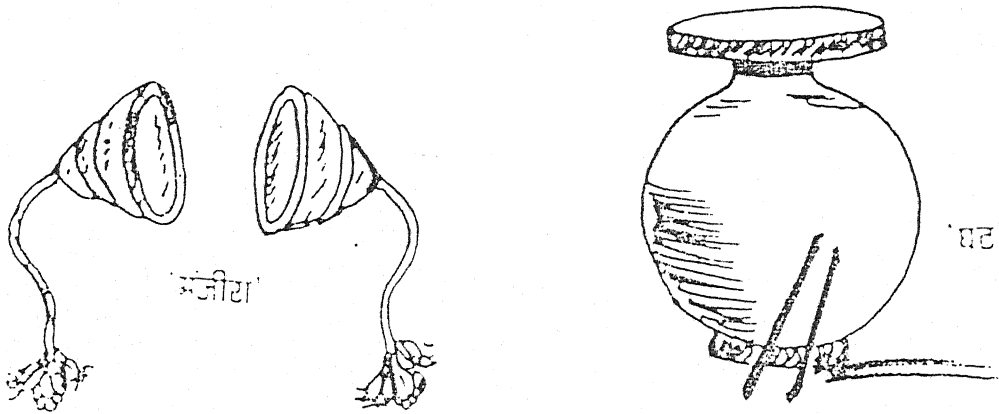
6—घड़ाः—

काली मिट्टी से निर्मित इसका मुंह अन्य घड़ों की अपेक्षा छोटा होता है बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का प्रयोग विशेषतः कुम्हार, कहार तथा चमार जाति के लोग अपने जातीय गीतों को गाते समय करते है।। वादक अपनी बांई हथेली को मटके के मुख पर रखकर थाप देता हैं तथा दाहिने हाथ से सिक्के या अन्य धातु के टुकड़े से घड़े के मध्य भाग पर आघात करता है इससे सुन्दर ध्वनि निकलती है। इसकी मधुर ध्वनि से प्रभावित होकर आजकल इसे सभी वर्ग के लोग अपना लिए है।

7—झूला :—

यह लकड़ी का एक फुट लंबाव 6 इंच चौड़ा होता हैं इसमें लोहे के दो तार लगे रहते हैं। तारों में लोहे की गोलाकार पत्ती लगी रहती हैं। इस पर आघात करने से मधुर ध्वनि उत्पन्न होती हैं। इसे झींका भी कहते हैं।

8—चटकोला :—

चार या पांच फुट के बांस या डण्डे में ऊपर की ओर चारों तरफ चार लकड़ी के टुकड़े लगे रहते हैं। जो रस्सियें के द्वारा नीचे की ओर जुड़े रहते हैं बांस के ऊपरी सिरें पर लकड़ी द्वारा निर्मित पक्षी या अन्य किसी भी प्रकार की आकृति लगी रहती हैं। रस्सी खींचने से लकड़ी के टुकड़ों पर आघात से चट—चट की ध्वनि निकलती हैं।

9—कसावरी :—

कसावरी कांसे की धातु से निर्मित थाली के आकार जैसी होती हैं। जिसके ऊपरी हिस्से में पकड़ने के लिए एक रस्सी लगी रही हैं इसे लकड़ी से पीटकर बजाते है।
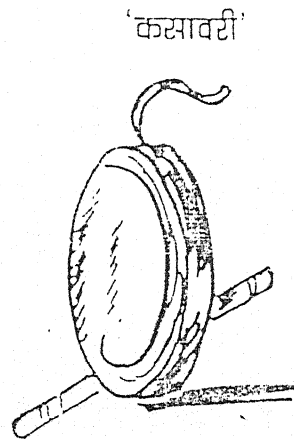
10—लोटा:—

यह कांसे का होता हैं इसे प्रायः सिक्के से बजाया जाता हैं। इसका प्रयोग प्रायः मांगलिक संस्कारादि गीतों को गाते समय स्त्रियां करती है।

(घ) 'सुषिर वाद्य'

'सुषिर' का शाब्दिक अर्थ हैं 'सांप का बिल'। जो बाद्य–यंत्र बिल की तरह होते है। तथा जिन्हें फूंक कर बजाया जाता हैं। उन्हे सुषिर वाद्य कहते हैं। डॉ0 राधेश्याम जायसवाल' का मत हैं कि –''सुषिर –वाद्य प्रायः लोक वाद्य हैं लोक में निर्धनता अधिक हैं, अतः सस्ते एवं सर्बसुलभ सुषिर वाद्यों को निर्धन एवं निम्न वर्ग के लोगों ने अपना लिया। 'वंशी' इसका अपवाद हैं । चरवाहें से लेकर अ्टालिका पर रहने वाले प्रेमी बंधु भी वंशी की स्वरावली का आनन्द लेते है। 1 बुन्देलखण्ड में प्रचलित सुषिर लोकवाद्यों में शंख, वांसुरी, बीन, तुरही शहनाई, मदनभेरी, अलगोजा, रमतूला, टोंटा पपैया, पुंगी आदि है।

1–बांसुरी :–

बांसुरी सबसे प्राचीनतम वाद्य हैं कदाचित् आदि मानव ने बांस –रन्ध्रो से प्रवेश करती एवं निकलती वायु –ध्वनि की मोहकतापर रीझ कर इसका निर्माण किया होगा। बांसुरी कृष्ण की पर्याय हैं। 'महाभारत' में इसके लिए 'वेणु' शब्द प्रयुक्त हुआ है। भारतीय प्राचीन –ग्रन्थों, में शिल्प–कलाओं तथा भित्ति–चित्रों में इसका स्पष्ट उल्लेख हैं। बांसुरी , वेणु वंशी, मुरली इसके कई नाम हैं। मूलतः यह लोकवाद्य था, जिसे विकसित कर शास्त्रीय बना लिया गया। 'शारंगदेव' ने लिखा हैं – ''यह दो हाथ लम्बी होती थी, जिसमें एक मुख–रन्ध्र तथा चार स्वर–रन्ध्र होने के कारण ये वाद्य शास्त्रीय संगीत के अनुपयुक्त था। इस वाद्य का उप्रयोग लोक–संगीत में होता था1 कालान्तर में इसमेंसात स्वर विकसित कर इसे शास्त्रीय बना लिया गया, फलतः इसकावादन शास्त्रीय तथा लोक–वादक समान रूप से करते हैं।

यह बांस लकड़ी, चन्दन, हाथी दांत, लोहा, कांसा, पीतल, चांदी अथवा सोने की बनाई जाती हैं। अन्य की अपेक्षा बांस की बनी बांसुरी सर्वोत्तम होती हैं बांसुरी के मुख्यतः तीन भाग–(1) मुख–नलिका (2) नली तथा (3)नली के ऊपर समान अन्तर पर छिद्र होते हैं। इसकी आवाज स्निग्ध ा, गम्भीर तथा मधुर होती हैं। बुन्देलखण्ड में इसका वादन दिवारी, राई रसिया तथा फाग आदि पर किया जाता हैं। साधू मदारी लोग भी इसका उपयोग करते देखे जाते है।

2—शहनाई :—

'शहनाई' एक मांगलिक वाद्य हैं यह लकड़ी या धातु की बनी बड़ी चिलम के आकार की होती हैं। इसके मुंह पर तीन, चार अंगुल लम्बी तांबे या पीतल की नली लगी होती हैं, जिसके मुख पर ताड़पत्र या कांसे की दो पत्तियां दूध में भिगोकर लगाई जाती हैं। इसकी पीठ पर बांसुरी की तरह समान अन्तर पर छिद्र बने होते हैं। फूंक कर बजाए जाने वाले इस वाद्य का स्वर अत्यन्त मधुर और कर्णप्रिय होता है । बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का प्रयोग शादी विवाह, उत्सव तथा लोक नाट्यो में किया जाता हैं। यह अत्यन्त प्राचीन वाद्य हैं। शास्त्रीय संगीत में इसका स्वतंत्र वादन भी होता है।

'शहनाई'

'शंख'
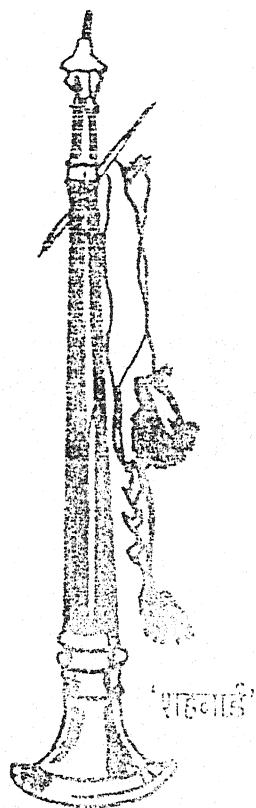
3—शंख :—

'शंख' विष्णु का प्रिय वाद्य हैं। अतः इसकी प्राचीनता निर्विवाद हैं प्राचीन भारत में युद्ध एवं शान्ति की घोषणा इसके द्वारा की जाती है।

'शंख' समुद्र में रहने वाले जीव विशेष का खोल हैं बनावट के अनुसार दक्षिणावर्त तथा वामावर्त इसकी दो जातियां हैं । यह अन्दर से बाहर तक घुमावदार होता हे।। इसके मुंह पर फूंक मार कर इसे बजाते हैं। यह एक मंगल वाद्य हैं बुन्देलखण्ड में कथा, भागवत आदि के आरम्भ एवं

अन्त में इसका बजाना आवश्यक होता है। भगवान की आरती तथा भोगादि में इसका उपयोग किया जाता हैं। अधिकतर साधू लोग इसे बजाते है।

4—अलगोजा :—

अलगोजा प्रारंभिंक सुषिर —वाद्य हैं। इसका आकार —प्रकार बांसुरी जैसा होता हैं। तथा यह जोड़े में होता हैं। इसकी दोनों नलियों में चार—चार छिद्र होते हैं। ये दोनों नली ऊपर की ओर डोरी से बंधी रहती हैं तथा दोनों को मुंह से फूंक कर बजाया जाता हैं। इसके वादन में बड़ी निपुणता की आवश्यकता है।

'अलगोजा'

'बीन'
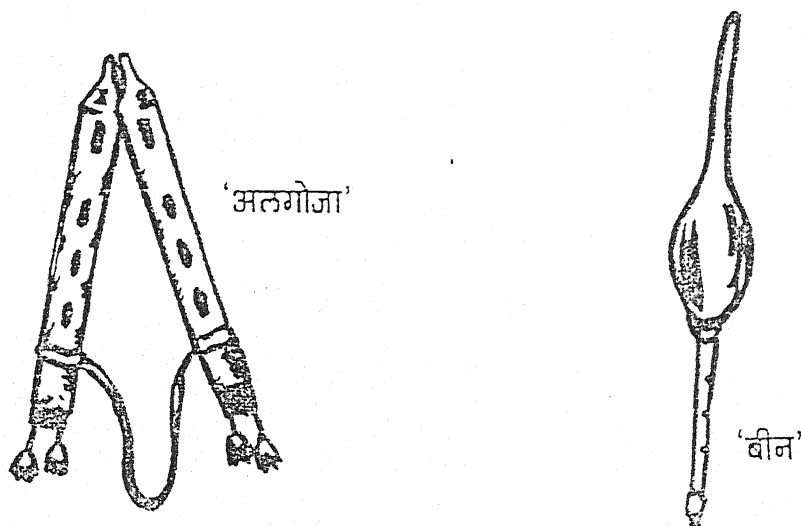
5—बीन :—

'बीन' तुम्बे या लौकी के खोल की बनी होती हैं। तुम्बी के पृष्ठ भाग में बांस या लकड़ी की नली होती हैं जिस पर बांसुरी की तरह समान अन्तर पर छिद्र बने होते हैं। वादक तुम्बी पर बने मुंह की ओर से फूंक मार कर इसे बजाता हैं सपेरों का यह प्रिय तथा इकलौता वाद्य है। इसकी ध्वनि में सांप को मोहित करने की अदभुत क्षमता होती है।

1—डॉ0 राधेश्याम जायसवाल, 'भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास पृ0 150

6–रमतूला :–

यह तांबे या पीतल से निर्मित होता हैं इसका आकार अंग्रेजी वर्ण के 'एस'क समान होता हैं। इसकी नली तीन हिस्सों में बंटी होती हैं जो मुंह की ओर पतली तथा मध्य और अन्त की ओर क्रमशः चौड़ी होती जाती हैं। भोजपुरी प्रदेश में इसे 'सिहा' कहते हैं। संस्कारादि अवसरों पर जाति –विशेष के लोग इसे बजाते हैं तथा एवज में नेग या पारितोषिक पाते है।

'रमतूला'

'तुरही'
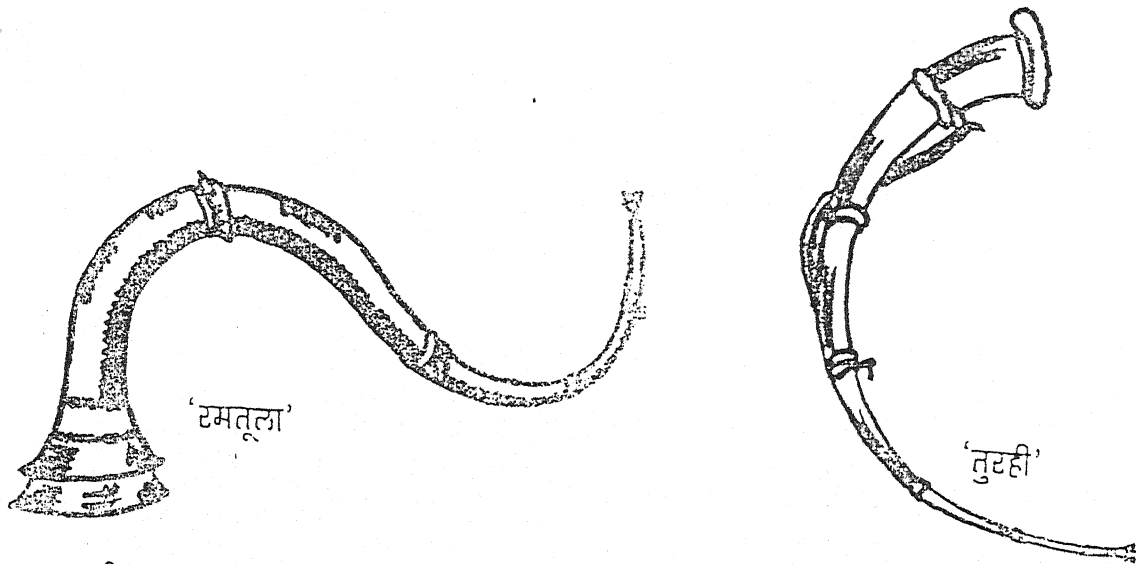
7–तुरही :–

संस्कृत शब्द 'तूर्य' से तुरही बना हैं, तांबे अथवा पीतल से बने इस वाद्य –यंत्र की लम्बाई में काफी अन्तर देखा जाता हैं इसमें एक नलिका होती है

6–मदन–भेरी :–

यह पीतल तथा धातु से निर्मित एक लम्बी नली होती हैं जो ऊपर की ओर पतली तथा नीचे क्रमशः चौड़ी और गोलाकार होती जाती हैं। बुन्देलखण्ड में इसका वादन राजा –महाराजाओं के यहां मांगलिक अवसरों पर होता था। युद्ध की सूचना , सेवा के प्रस्थान तथा राजाओं की सवारियों के निकलने पर इसका प्रयोग होता था। अब इसका प्रयोग यदा–कदा ही दिखाई देता है।

'मदन–भेरी'
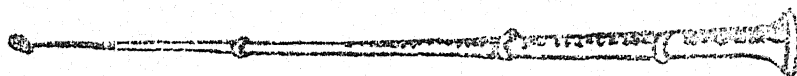
9—पपैया और पुंगी :—

यह बच्चों का प्रिय वाद्य हैं। जिसे वहखेल तथा मनोरंजन के लिए बजाते हैं। इन वाद्यों का निर्माण भी वे स्वयं करते हैं। पपैया आम की गुठली का बनता हैं। गुठली के छिलके के नीचे का मुलायम हिस्सा निकाल कर पत्थर पर घिसा जाता हैं, जिससे गुठली का अग्रभाग घिसकर पतला हो जाता हैं तथा उसके दोनों दलों के बीच पतली सी खोखली जगह हो जाती हैं। इसमें फूंकने पर पी—पी—पी की आवाज आती है।

'पुगीं बरगद , पीपल या ताड़ के पततों से बनाई जाती हैं। पत्ते को गोलाई में मोड़कर इसके पतले हिस्से को दबा देते हैं। फूंकने पर इसमें से पी—पी की आवाज आती है। बुन्देलखण्ड में आज भी बच्चों को इसे बजाता हुआ देखा जाता हैं।

9—टोटा:—

छः छिद्र वाले इस वाद्य का आकार ऊपर की ओर पतला तथा नीचे की ओर क्रमशः मोटा तथा गोल होता जाता है। इसके मुंह में लोहे का एक ढक्कन सा लगाकर इसे बजाते हैं। जिसका मुख भाग वाद्य से जुड़ा होता हैं। फूंककर बजाया जाने वाला यह वाद्य मंगल —वाद्य की श्रेणी में आता हैं। बुन्देलखण्ड में प्रायः कहार जाति के लोग इसे बजाते हैं इस दृष्टि से यह जातीय —वाद्य भी हैं विभिन्न संस्कारोत्सव पर जाति विशेष के लोग घर—घर जाकर इसे बजाते है। तथा एवज में नेग या इनाम पाते है।

1—डॉ0 राधेश्याम जायसवाल, 'भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास' पृ0 110

सप्तम अध्याय

उपसंहार

वर्तमान समय की समस्त घटनायें भविष्य में इतिहास बन जाती हैं। इसका विषय कुछ भी हो सकता है। बुन्देलखण्ड के इतिहास पर दृष्टि डालते है तो ज्ञात होता है कि बुन्देलखण्ड की धरती आज से करोड़ो वर्ष पुरानी क्रोंम्बियन युग की है ऐसा वैज्ञानिक शोधों से सिद्ध हो चुका है साथ ही यह धारणा भी सत्य साबित हो गयी है। इसी धरती पर मानव का विकास हुआ है क्योकि" आर्य कुलों के सिवाय अनार्य कुलों की कितनी असभ्य नंगी धड़ंगी जातियों कौदर सौंर आदि कई स्थानों पर मिलती है जो आर्य सभ्यता के पूर्व युग की ओर ध्यानाकर्षण कराती हैं। पत्थरों के तीर अस्त्र शस्त्र आदि यहाँ से प्राप्त हुये है वह भी लाखों वर्ष पुराने माने गये हैं। आर्यो के निवास स्थान उनके आने-जाने को लेकर विद्वानो. में मतैक्य नहीं है परन्तु यह सत्य है कि आर्यो को आगमन का सत्य सरस्वती नदी के साथ जुड़ा हुआ है। क्योंकि सरस्वती नदी के तट पर ही आर्य सभ्यता के चिन्ह मिलते हैं अतः सरस्वती नदी की स्थिति पर विचार करके आर्यो की स्थिति का सही आंकलन हो सकता है। आर्य सभ्यता सरस्वती नदी के तट पर विकसित हुयी और उसी के साथ अपनी सांस्कृतिक जड़ें मजबूत करती हुई आज भी वट वृक्ष की भाँति इस देश में अडिग खड़ी है। बुन्देलखण्ड के विषय में भी यह तथ्य स्वीकारने योग्य है कि प्राचीन काल में यहाँ पर आर्य ही थे और उनकी सांस्कृतिक विरासत को हम सब अपने जीवन में जीते हुये आज भी अक्षुण्ण बनाये हुये है। बुन्देलखण्ड की धरा भगवान बुद्ध के समय 16 जनपदों के अंतर्गत आती थी तथा चेदि जनपद नाम से जानी जाती रही है वेदों में वर्णित नौ क्षेत्रों में तथा पुराणों में दशार्ण बज्र देश कर्णावती , विध्य क्षेत्र, पदमावती, युद्ध देश खजुरपुर, जैजाक मुक्ति यजुर्होत, आदि नामों से होती हुई आज बुन्देलखण्ड नाम से जानी जाती है। बुन्देलखण्ड नामकरण भी ज्यादा पुराना नहीं है। अपने उत्स काल से लेकर आज तक इस धरा पर विभिन्न राजाओं का शासन रहा है किन्तु बुन्देलों के राज्य करने के कारण बुन्देलखण्ड कहलाया है ऐसा ही अधिक समीचीन जान पड़ता है। बुन्देलखण्ड में वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड में उ0 प्र0 के सात एवं मध्य प्रदेश के 25 जिले सम्मिलित है। इस धरा पर गेहूँ चना, जौ, मसूर, मटर, सरसों अलसी , अरहर, मूंग, उड़द, ज्वार, बाजरा, मक्का, चावल कपास आदि सभी

प्रकार के दलहन, तिलहन पैदा होते हैं। इस क्षेत्र का सम्पूर्ण क्षेत्रफल 12000 वर्ग मील माना जाता है '' 1 तथा भाषायी दृष्टि से ''इस भाषा को बोलने बालों की संख्या 8569893 है '' 2 यहाँ की भूमि कहीं पथरीली तो कहीं अत्यधिक उपजाऊ है नदियें तथा वन्य भूमि का आधिक्य है। यहाँ के निवासी पुरूष धोती कुर्ता, साफा, पाजामा, अंगौछा, अधिक पहनते है तथा वर्तमान समय में शिक्षा एवं सड़को का विस्तार होने के कारण हर प्रकार के वस्त्रों का चलन हो गया। स्त्रियों के पहनावे में लहंगॉ, चुनरी, चोली, साड़ी, ब्लाउज, पेटीकोट इत्यादि प्रमुखता से पहनी जाती हैं। पुरूष कान में बाली गलें में जंजीर हाथ में अगूठी अधिक पहनते हैं। स्त्रियां नाक में लोंग बेसर गले में जंजीर या मंगल सूत्र पैरों में बिछिया कलाई में चूड़ी कंगन कमर में बिछुआ बहुतायत पहनती है। खान–पान में महुआ, बेर, से लेकर आधुनिक मिठाइयाँ अब मिलती है तथा उपयोग में लाई जाती है। मकानों की दृष्टि में बुन्देलखण्ड में अभी की प्राचीनता एवं आधुनिक तकनीक के दर्शन होते है यद्यपि शिक्षा का प्रसार हुआ है। टेलीविजन की पहुँच सुदूर अंचलोंतक हो गयी हैं किन्तु मुख्य धंधा कृषि ही है बुन्देलखण्ड की संस्कृति धार्मिक संस्कृति है धर्म जन मानस में कूट–कूट कर भरा हुआ है दैनिक जीवन में नित्य क्रियाओं में धार्मिक क्रियायें ही दृष्टि गोचर होती है। बुन्देली लोक धर्म से इतना गहरा जुड़ा हुआ है कि जिस प्रकार सिक्के के दो पहलू पृथक नही हो सकते है उसी प्रकार बुन्देली लोक से धार्मिकता को अलग नहीं किया जा सकता है। बुन्देली संस्कृति, लोकमूल्य, लोकदर्शन, लोक विश्वास, लोकाचार, सभी धार्मिक हैं। जो धर्मिक ग्रन्थों में के आधार पर ही निर्मित है यहाँ पर वैष्णव, शैव, शक्ति सभी मतों के अनुयायी मिल जुल कर रहते हैं तथा सभी एक दूसरे को मानते है उनका सम्मान करते है। सगुण भक्ति का आधिक्य है यद्यपि निर्गुणी मत प्राप्त होता है उनसे सम्बधित लोक गीत बुन्देली लोक में प्रचलित है धार्मिकता की भावना का आधिक्य होने के कारण यहाँ नदी, तालाब, पेड़, पौधे, चबूतरा, लोक देवता, ग्राम देवता, सती चौरा, तुलसी, यहाँ तक कि कूड़ा डालने का स्थान 'घूरे' तक की पूजा की जाती है षोडस संस्कारों में अब 8 या 10 संस्कार ही प्रमुखता से किये जाते है जिनमें जन्म, अन्नप्राशन

1–डॉ0 सरला कपूर– बुन्देलखण्ड के नरेश कवि पृ0 20

2–डॉ0 कृष्णानन्द गुप्त बुन्देली लोक साहित्य हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास पृ0 22

चूड़ाकरण, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, विवाह संस्कार, ही प्रमुख है। लोक विद्याओं में स्वांग भड़ैती, नृत्य रामलीला, रास लोक , ढोला, एवं गीत है लोक साहित्य में तथा लोक विद्याओं में लोक गीत को ही प्रमुख स्थान मिला हुआ है। लोकगीतों का अक्षय भण्डार है वर्तमान समय में विद्वानों के लोकगीत सम्बंधी जो वर्गीकरण प्राप्त होते है उनमे सभी शाखाओं के लोकगीत प्रचुरता में है धार्मिक अुनष्ठान, व्रत त्यौहार, पूरे वर्ष में आच्छादित रहते हैं चैत्र से नववर्ष का शुभारंभ होता है। नव वर्ष के शुभारंभ पर देवी की पूजा

अत्यधिक हार्दिक प्रेम एवं तन्मयता से की जाती है। नवरात्रि नौ दिन तक चलती है तथा राम नवमी, श्री राम का जन्म दिन मनाने के पश्चात यह व्रत पूजा पूर्ण होती है गनगौर, शीतलाष्टमी जगन्नाथ पूजा चैत्र मास के ही व्रत एवं पूजा हैं। वैशाख में आसमाई, हरायते लेना ज्येष्ठ मास में वरमानस, बरसातें, भीमसेनी, एकादशी, गंगा दशहरा एवं आदि मनाये जाते हैं। आषाढ़ मास में वर्षपर्यन्त पूजे जाने वालो के नाम लेकर पूजा की जाती है । गुरूपूर्णिमा को गुरू पूजन होता है श्रावण मास में शिव पूजन, कुनघुसू पूनों, हरी जोत, सावन तीज, नागपंचमी, नौमी, तथा पूर्णिमा को रक्षा बन्धन श्रावणी पर्व मनाया जाता है भादों में हलषष्ठी जन्माष्टमी, बाबू दौज, हरतालिका व्रत गणेश चतुर्थी. ऋषि पंचमी, मोराई छठ, सन्तानसप्तमी, डोलग्यास (जलबिहार एकादशी) ओक द्वास, अनन्त चर्तुदशी, बड़ा मंगल, (हनुमान जयन्ती) जैसे व्रत एवं त्यौहार होते है क्वॅार मास में पित्र पक्ष महालक्ष्मी, तथा पुनः शारदीय नवरात्रि में नौ दिन तक शाक्त पूजा तथा दसवें दिन दशहरा का त्यौहार मनाया जाता है, इसी मास की पूर्णिमा को शऱद पूर्णिमा तथा टेसू झिंझिंया का व्याह सम्पन्न होता है कार्तिक मास में करवाँ चौथ, अहोई आठे , दीपावली, गोपाष्टमी, इच्छा नौमी, देवोत्थानी एकादशी, इत्यादि मनाये जाते हैं। मार्ग शीष में मकर सक्रान्ति , भँवरात, आदि होते है पौष मास में शुभ कार्य नही होते है माघ मास में बसन्त पचंमी, सूर्य पूजा, शिवरात्रि , तथा फाल्गुन मास में होली जैसे त्यौहार जन मानस में उल्लास भर देते है इन सभी पर्वो तथा व्रतों पर धर्मपरायण लोकगीत गायन अथवा कथा वाचन होता है

वर्तमान समय में चलचित्र टेलीविजन रेडियो आदि द्वारा देश विदेश अन्य प्रान्तों भाषाओ के गीतों का प्रसारण तथा भौतिकता के अधानुकरण के कारण धार्मिक भावना लोकाचार, लोक विश्वासों रीतिरिवाज, संस्कारों, तथा लोक संस्कृति पर कुठारा घात हो रहा है, पारम्परिक गीतों को बुन्देली गीतों में परिवर्तित करने का प्रयास किया जा रहा है किन्तु में इनके दर्शन बुन्देली लोक में होते है।

इन धार्मिक लोकगीतों के सांगीतिक दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इनमें कई रागों का आभास , छाया या राग दर्शन होंते है जैसे पीलू , पहाड़ी, दुर्गा , देश, विलावल, खमाज, झिंझोटी, तिलकामोद, भैरवी, सांरग आदि। उदाहरण के लिये मा गा रे गा – रे स इस स्वर संगति के आगे या पीछे आये स्वर समूह राग का निर्धारण करते है मा गा रे गा – रे स प़ा नी़ सा रे गा मा तिलककामोद यदि ध म ग जुड़ जाये तो देश ध़ नी़ स रे ग , रे प म ग रे जुड़ा है तो बिलावल और प़ ध़ स रे ग से पहाड़ी नी़ ध़ – स रे म ग इसे झिंझोटी बना देती है इसी तरह अन्य रागों की सम्भावनायें उत्पन्न होती है।

लोकगीतों की पहचान उसकी धुन से होती है धुन का प्रकार लोक गीत का प्रकार बदल देता है एक ही लोकगीत फाग की धुन भजन की धुन गारी की धुन विशेष सुर की रचना धुन के आधार पर ही उसकी पहचान होती है लोक के विंभिन्न अंचलों में लोक गीतों के नामों में परिवर्तन मिलता है जैसे देवी गीतों में अचरी, भगत, जस, वीरोठ, लांगुरियॉ, उमाहे, आदि। सांस्कारिक लोकगीतो के अन्तर्गत गाये जाने वाले कुछ लोकगीत ऐसे भी है जिनमें ताल वाद्यो का प्रयोग नहीं होता है। कुछ में ताली , चुटकी ही बजायी जाती है कुछ लोकगीतों में यह भी नही है। किन्तु उनमें लय स्पष्ट दिखाई देती है इन लोकगीतो में सात शुद्ध स्वर एवं चारों विकृत स्वरों का प्रयोग मिलता है तालों में प्रमुख रूप से तीन तालों की अधिकता है कहरवा दादरा दीपचंदी।

लोक वाद्यो में ढोलक, अलगोझा, कैकट्टिया, चिमटा, झींका, लोटा, तथा घरेलू सामान गगरी, सूप, तुम्बा, तुम्बी, आम की गुठली, वरगद या ताड़ के पत्ते, थाली, ताली, तथा यहॉ तक कि टूटे हुए खड़े के टुकड़े (खपड़िया) का भी प्रयोग कर लिया जाता है

लोक साहित्य किसी व्यक्ति की निजी धरोहर नहीं है। लोकगीत लोकाकी, सम्पदा है लोक द्वारा ही इसको पीढ़ी दर पीढ़ी वर्तमान समय तक सुरक्षित रखना सम्भव हुआ है। यह अपने जन्म से ही लोक कंठ विराजे रहे है पूर्व काल में लेखनी कागज अक्षर ज्ञान का अभाव होने के कारण उनको लिखित रूप नहीं दिया जा सका। मानव ने समूह में रहते हुये अपने हर्ष , विषाद, उल्लास , के क्षण देखने सुनने के बाद उसे शब्दो में बाँधा तथा कंठस्थ किया तथा आगामी पीढ़ी को कंठस्थ करा कर भविष्य की आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने का उपक्रम किया।

वर्तमान समय आज हमारे पास भाषा है लेखनी है, लिपि है, टेपरिकॉडर है जिनके माध्यम से

इन लोकगीतों को अपनी प्राचीन धुनों में परिरक्षित रख सकते है

यद्यपि स्वरलिपि बनाते समय अत्यधिक सावधानी रखी गई है किन्तु फिर भी कंठ की बारीकियों को स्वर लिपि में हूबहू नहीं उतारा जा सकता है। प्रस्तुत शोध कार्य में कैमरा, हारमोनियम, टेपरिकार्डर प्रयोग किया है किन्तु व्यक्तिगत साक्षात्कार, को अधिक महत्व दिया गया है गाँव के बुजुर्ग पुरूष महिलाओ के पास बैठकर वृतान्त सहित लोक गीतों का संग्रह किया गया है। ऐसे लोकगीतों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है जो अभी भी अंधकार में हैं।

अन्त में यह कहना चाहूँगा कि अध्ययन , शोध, व ज्ञान के क्षेत्र में किया गया कार्य अन्तिम नहीं आंशिक है तथा इसी आंशिक सत्य के साथ धार्मिक लोकगीतों के सत्य को समक्ष लाने का प्रयास मात्र है। बुन्देल खण्ड के धार्मिक लोक गीत विषयक यह शोध प्रबन्ध अग्रिम शोध कर्ताओ का शोध सम्बन्धी सम्भावनाओ का मार्ग अवश्य प्रशस्त करेगा ऐसा मेरा विश्वास है ।

संदर्भ–ग्रन्थ

(क) 'संस्कृत वाग्ङमय के ग्रन्थ'

1.	ऋग्वेद	:	संस्कृत संथान, बरेली।
2.	अथर्ववेद	:	चौखग्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1990।
3.	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	:	डॉ0 कपिल देव द्विवेदी, साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद –1974
4.	आश्वलायन गृह्यसूत्र	:	कृष्णदास अकादमी, वाराणसी–1990।
5.	कामसूत्र	:	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी–2
6.	गाथा सप्तशती (हालकृत)	:	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1969।
7.	गीमा	:	गीता प्रेस, गोरखपुर।
8.	जैमिनीय उपनिषद्	:	चौखम्बा संस्कृत सीरज, वाराणसी
9.	नैषधीय चरित	:	चौखम्बा सुरभारतीय–वाराणसी–1983।
10.	पद्म पुराण	:	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी।
11.	पारस्कर गृह्यसूत्र	:	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी।
12.	पालिजात कावलि	:	मा0 खेलाड़ी लाल संकटा प्रसाद संस्कृत पुस्तकालय कचोड़ी गली, वाराणसी –1972।
13.	मनुस्मृति	:	कृष्णदास अकादमी–वाराणसी–1990।
14.	महाभारत	:	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1990।
15.	महाभाष्य	:	वाणी–विलास–प्रकाशन, वाराणसी–वि0 2044।
16.	मेघदूत	:	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1968।
17.	मैत्रायिणी संहिता	:	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1968।
18.	शिवगीता	:	चौखम्बा सुर भारती, वाराणसी–1983।

(ख) 'हिन्दी के ग्रन्थ'

1. (श्री) उमाशंकर–शुक्ल : बुन्देलखण्ड के लोकगीत, इण्डियन प्रेस इलाहाबाद सं02010।
2. (डॉ0)उदय नारायण तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं0 2026।
3. (श्री) उमेश जोशी : भारतीय संगीत का इतिहास, मानस सरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिराजाबाद , आगरा 1984।

4. (डॉ0) कुन्दनलाल उप्रेति : लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़–1771।

5. (डॉ0)कुलदीप : लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, प्रगति–प्रकाशन, आगरा–3।

6. (डॉ0) कृष्णदेव उपाध्याय

1. भोजपुरी लोकगीत : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं0 2008।

2. लोक साहित्य की भूमिका : साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद।

3. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत : साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद।

7. (डॉ0)कृष्णलाल हंस : बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग–1976।

8. (श्री) केशव चन्द्र मिश्र : चन्देल अग्रवाल : चन्देल और उनका राजत्व काल, नागरी –प्रचारिणी सभा, काशी–सं0 2011।

9. (डॉ0)कैलाश चन्द्र अग्रवाल : लोक साहित्य विधाएं एवं दिशाएं, चिन्मय प्रकाशन, 16/36 डी0 मोती लाल नेहरू रोड, आगरा 1986।

10. गोस्वामी तुलसीदास : श्री रामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर–1995।

11. (श्री) गौरी शंकर द्विवेदी : बुन्देल वैभव, श्री रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी 'रमेश' बुन्देल वैभव ग्रन्थमाल, टीकमगढ़, (बुन्देलखण्ड) सं0 1990।

12. (श्री) चिन्तामणि उपाध्यायः मालवी लोकगीत, म0 प्रकाशन, जयपुर–1964।

13. (श्री) जगन्नाथ सेठ : सूरदास विविध सन्दर्भो में, बड़ा बाजार, कुमार सभा, कलकत्ता–1979।

14. (श्री) त्रिलोचन पाण्डेय : लोक साहित्य का अध्ययन, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग –प्रयाग।

15. (डॉ0) दुर्गा पाठकः छत्तीसगढ़ी एवं बुन्देली लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, सही प्रकाशन, शाहजहांपुर।

16. (श्री) देवेन्द्र सत्यार्थी : धरती गाती हैं, सन 1948।

17. (डॉ0) धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, लोक–भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

18. (डॉ0) नान्य भूपाल प्रणीतम् : भरत भाष्य प्रथम खण्ड, इंदिरा कला संगीत विश्व विद्यालय खैरागढ़ (म0 प्र0) 1961।

19. (श्री) पार्श्व देव : संगीत समय सार, कुन्दन भारती, दिल्ली–1977।

20. (श्री) बलभद्र तिवारी।

1. बुन्देली काव्य परम्परा : बुन्देली पीठ, हिन्दी विभाग, सागर (म0 प्र0)

2. बुन्देली लोक काव्य भाषा : बुन्देली पीठ, हिन्दी विभाग, सागर (म0 प्र0)

3. बुन्देली समाज और संस्कृति : प्रमोद प्रकाशन, 218 ए, जंगपुरा–दिल्ली।

21. (श्री) बटुक नाथ शर्मा : पालिजातकावलि, मा0 खेलाड़ी लाल, संकटा प्रसाद, कचौड़ी गली–वाराणसी–1972।

22. नाट्य शास्त्र का 28 वां अध्याय, ब्रहस्पति पब्लिकेशन्स, साहित्य संगीत संगम, डी/4–सी, दिल्ली–1986।

23. (श्री) भोलानाथ तिवारी :

1. भाषा–विज्ञान, किताब–महल, इलाहाबाद, सन् 1974।

2. भाषा विज्ञान कोष, ज्ञान मण्डल लि0 वाराणसी–2020 वि0।

24. (श्री) मदन गोपाल गुप्त : मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली–1968।

25. (श्री) मतंग मुनि : वृहद्देशी, सम्पादक–बालकृष्ण गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस (उ0प्र0) 1976।

26. (श्री)मनोहर भालचन्द्रराव : ताल वाद्य शास्त्र, शर्मा पुस्तक सदन, पाटनकर बाजार, ग्वालियर (म0 प्र0)

27. (श्री)महावीर अग्रवाल :'लोकसंस्कृति, आयाम एवं परिप्रेक्ष्य', शंकर प्रकाश, दुर्ग (म0प्र0)

28. (श्री)माणिक बुआ ठाकुरदास : राग–दर्शन, कृष्णा ब्रदर्स, महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर (राज0) 1987।

29. (श्री) मोती लाल त्रिपाठी : बुन्देलखण्ड–दर्शन,शारदा साहित्य कुटीर, 86 पुरानी नझाई, झांसी–1980।

30. (डॉ0)मोती लाल चौरसिया : बुन्देली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली–1989।

31. (डॉ0)वासुदेव शरण अग्रवाल : 'पृथिवी पुत्र' राम प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा–1960।

32. (डॉ0)वासुदेव शास्त्री : संगीत–शास्त्र, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग (उ0 प्र0)1958।

33. (डॉ0) विद्या चौहान : 'लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', प्रगति प्रकाशन आगरा–1972।

34. (डॉ0) विनोद तिवारी :

1. लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, साहित्य वाणी, इलाहाबाद–1987।

2.बुन्देली बघेली लोकगीतों का सामाजिक, काव्यात्मक तुलनात्मक अध्ययन, साहित्य वाणी , इलाहाबाद , 1979।

35. (डॉ0) रवीन्द्र नाथ मुखर्जी : भारतीय समाज व संस्कृति,विवेक–प्रकाशन, दिल्ली -1992।

36. राजा नवाब अली : मारिफुन्नगमात, संगीत–कार्यालय, हाथरस–1974।

37. (डॉ0) रामनरेश त्रिपाठी :

1. कविता–कौमुदी, भाग–5, नवनीत प्रकाशन, प्रा0 लि0 बम्बई।

2. ग्राम गीत, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली–1952।

38. (डॉ0) (आचार्य) रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं0 –2017।

39. (श्री) रामचरण मित्र : बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–1969।

40. (डॉ0) राम स्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही', बुन्देली लोकसाहित्य, रंजना प्रकाशन, आगरा–1976।

41. (श्री) राहुल सांकृत्यायनः हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं0 2017।

42. (श्री) लक्ष्मी नारायण गर्ग : निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस–1978।

43. (डॉ0) लालमणि मिश्र : भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन बी/45–47 कनाट प्लेस, नई दिल्ली–1973।

44.(श्री) शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपें : भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज वाराणसी–सं0 2026।

45. शारंगदेव : संगीत–रत्नाकर (हि0 अनु0), सं0 लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस–1975।

46. (श्री) श्सिहाय चतुर्वेदी : लोकगीत, म0 प्र0 शासन, साहित्य परिषद, सूचना तथा प्रकाशन, संचालनायन7सन 1959।

47. (डॉ0) श्याम परमार :

1. भारतीय लोक साहित्य, राजकमल, प्रकाशन–बम्बई।

2. लोकधर्मी नाट्य–परम्परा, हिन्दी प्रचारक,पुस्तकालय ज्ञानवापी, वाराणसी–1959।

48. (डॉ0) श्याम सुन्दर बादल : बुन्देली फाग साहित्य, हिन्दी साहित्य प्रकाशन, ह ।रपुर–1964।

49. (डॉ0) श्यामा चरण दुबे : छत्तीसगढ़ी लोकगीत का परिचय, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली सन् 1940।

50. (श्री) श्री कृष्णदास : लोकगीतो की सामाजिक व्याख्या, प्रयाग, 1956।

51. (श्री) श्रीपद वन्द्योपाध्याय : सितार–मार्ग, पाप्युलर प्रकाशन, बम्बई, चतुर्थ सं0 1967।

52. (डॉ0) सत्या गुप्ता : खड़ी बोली का लोक साहित्य, राजकमल, प्रकाशन, दिल्ली–1960।

53. (डॉ0) सत्येन्द्र :

1. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा–1949।

2. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–1960।

3. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ0 शिवलाल अग्रवाल कं0 प्रा0 लि0, नई दिल्ली–1962।

54. (डॉ0) सरजार्ज अब्राहम ग्रियर्सन : भारत का भाषा सर्वेक्षण, 1959।

55. (डॉ0) एस0 एम0 असगर अली कादरी : मूर्तिकला का विकास, सन् 1954।

56. (डॉ0) सुनन्दा पाठक : हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली– 1989।

57. (श्री) सूर्य किरण पारीक : राजस्थानी लोकगीत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग–1969।

58. (डॉ0) स्वतंत्र शर्मा : भारतीय संगीत का वैज्ञानिक विश्लेषण, टी0 एन0 भार्गव एण्ड स स, 1131 कटरा, इलाहाबाद –1986।

59. (डॉ0) हरदेव बाहरी : ग्रामीण हिन्दी बोलियां, किताब महल प्रकाशन, प्रा0 लि0 इलाहाबाद–1966।

60. (डॉ0) हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा0 लि0 बम्बई– 1962।

61. (डॉ0) हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव :राग–परिचय, संगीत–सदन प्रकाशन साउथ–मलाका, इलाहाबाद–1984,85,93,।

62. (डॉ0) वीणा श्रीवास्तव : बुन्देलखण्डी लोकगीतों में संगीतिक तत्व राधा पब्लिकेशनन्स नई दिल्ली।

63. (डॉ0) नर्मदा प्रसाद गुप्त :

1. बुन्देली संस्कृति और साहित्य : सं0 कपिल तिवारी प्रियंका आफसेट भोपाल प्रथम संस्करण 2001।

2. बुन्देली लोक साहित्य परम्परा और इतिहास : सं0 कपिल तिवारी आदिवासी लोक कला परिषद भोपाल का प्रकाशन।

3. बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास : प्रथम संस्करण 1995 प्रकाशक राधा कृष्ण प्रकाशन लि0 2/38 अंसारी रोड दरिया गंज नई दिल्ली।

(ग) 'आंग्ल भाषा के ग्रन्थ'

1. 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका' खण्ड–10

'हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर'–डॉ0 ए0 बी0 कीथ, लन्दन–1948।

2. 'इनसाइक्लोपीडिया आफफ सोशल सांइरोज', खण्ड–5

3.सेन्सेज ऑफ इण्डिया–1971 उ0 प्र0, फोक सांग एण्ड फोक म्यूजिक ऑफ उ0 प्र0–डॉ0 डी0 एम0 सिन्हा।

4. 'साइक्लौजी एण्ड फोकलोर'–आर0 आर0 मैरट।

5. 'शार्ट हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर'–हार विट्ज–1907।

6. 'द ग्रोथ आफ लिटरेचर'– चैडविक्स ब्रदर्स –1936।

7. 'द फोक एलीमेंट इन कल्चर'–वी0 के0 सरकार कलकत्ता–1917।

(घ) 'कोश–ग्रन्थ'

1. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, डब्ल्यू, डब्ल्यू थामस, लन्दन–1946

2. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइसेज, वाल्यूम–5, मैकमिलन के न्यूयार्क सं0 सं0 1931।

3. हिन्दी विश्वकोश : सं0 नगेन्द्र नाथ वसु, विश्वकोष कुटीर, कलकत्ता–1929वि0।

4. हिन्दी साहित्य–कोष : सं0 डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल प्रा0 लि0 वाराणसी सं0 2015।

5. 'स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर माइथालॉजी एण्ड लीजेण्ड' न्यूर्याक, 1950 (सं0 मेरियालीश)

(ङ) 'पत्र–पत्रिकाएं'

1. ओरछा गजेटियर

2. 'ईसरी' पत्रिका : सं0 कान्तिकुमार जैन, बुन्देली पीठ, सागर वि0 वि0 सागर (म0 प्र0) अंक 1 से 121।

3. 'ईसुरी की फागें : सं0 (डॉ0) कृष्णानन्द गूप्त, चेतना प्रकाशन, झांसी–1965।

4. 'चौमासा' : सं0 कपिल तिवारी, मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद, भोपाल (म0प्र0)

5. 'छायानट' उत्तर प्रदेश संगीत अकादमी, लखनऊ।

6. जर्नल आफ अमेरिकन फोकलोर, सैम्यूयल पी0 बेयर्ड, वाल्यूम–66, 1953।

7. लोक कला दर्पण राष्ट्रीय लोक कला महोत्सव स्मारिका सं0–अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' सन 2001।

8. झांसी महोत्सव स्मारिका 1996 सम्पादक श्री सत्यनारायण श्रीवास्तव भावना प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिसर्स झांसी

9. रमणी सम्पादक कु0 जनक सचदेव, मुद्रक जनक सचदेव 2999/ए रणजीत नगर नई दिल्ली।

10. बुन्देलखण्ड का लोक जीवन सर्वेक्षण रिर्पोट, संस्कृति विभाग उत्तर प्रदेश, प्रकाशक रोहित नन्दन निर्देशक संस्कृति विभाग उत्तर प्रदेश

11. बुन्देली वानी स्मारिका संस्कृति अंक सम्पादक रामनारायण शर्मा

12. दैनिक जागरण कानपुर

13. दैनिक कर्मयुग प्रकाश उरई

14. 'मधुकर': सं0 (श्री) बनारसी दास चंतुर्वेदी कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ (म0 प्र0) 1940–44

15. 'मामुलिया' : सं0 नर्मदा प्रसाद गुप्त, बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर।

16. 'लोकावार्ता : संव श्री कृष्णानन्द गुप्त लोकवार्ता परिषद टीकमगढ़, (मध्य भारत)।

17. 'संगीत' (लोकसंगीत अंक) : सं0 लक्ष्मी नारायण गर्ग : संगीत कार्यालय हाथरस (उ0 प्र0) जनवरी 1966, वर्ष 32, अंकर1।

18. सम्मेलन–पत्रिका (लो0 सं0 वि0) : सं0 श्री राम नाथ सुमन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, शक 1917, सन 1965।

(च) 'लेख

श्री कमलाकर तिवारी, 'गांडीव, (रविवारी विशेषांक) 29 अगस्त, 1967।

1. (डॉ0) वासुदेव शरण अग्रवाल : आजकल नवम्बर–1951।
2. (डॉ0) रामनेरश त्रिपाठी : जनपद खण्ड–1
3. (डॉ0) हजारी प्रसाद द्विवेदी : जनपद खण्ड–1 अंक–1 अक्टूबर –1952।
4. (डॉ0) डब्ल्यू वाई0 पैरी : 'द ग्रोथ ऑव सिविलाइजेशन' –1973।